मन्त्र-चेतना
धर्म एवं राजनीति : वैकल्पिक चिन्तन

श्री ईशावास्यम् आश्रम

श्री गंगोत्री-धाम, हिमालय

की ओर से

भारत के सभी ब्रह्मनिष्ठ महद्पुरुषों के

श्री चरणों में सादर, सप्रेम, सश्रद्धा वन्दन

सौजन्य से

तपस्वी क्लासिस

शीयापुरा, रावपुरा

बड़ौदा - ३९० ००१

की

शुभकामनाएँ

।। ओऽम् नमो भगवते विष्णु-स्वामिने नमः ।।

श्री सतुआ बाबा आश्रम, काशी

विष्णु के अवतार स्वरूप श्री भगवान् विष्णु-स्वामी-सम्प्रदाय के मतानुयायी आदि सतुआ बाबा श्री रणछोड़ दास जी महाराज का प्रादुर्भाव काठियावाड़ के रतनपुर गांव में हुआ ।

काशी आकर उन्होंने मणिकर्णिका तीर्थ काशी को अपनी साधना स्थली बनाया ।

श्री सतुआ बाबा आश्रम मणिकर्णिका घाट काशी में

- *खिचड़ी एवं सतुआ प्रसाद अहर्निश वितरण होता है ।*
- *अभ्यागत सन्त महापुरुषों को आवास भोजन ।*
- *धर्मशाला • नित्य सत्संग-कीर्तन • सदाव्रत*

शिष्य परम्परा

१. श्री मोहन दास जी
२. श्री भोला दास जी
३. श्री दामोदर दास जी
४. श्री नरोत्तम दास जी

वर्तमान में

महामण्डलेश्वर

श्री महन्त जमुना दास जी

'सतुआ बाबा'

अध्यक्ष

अखिल भारतीय रामानन्द सम्प्रदाय
अखिल भारतीय सन्त-समिति पूर्वी क्षेत्र
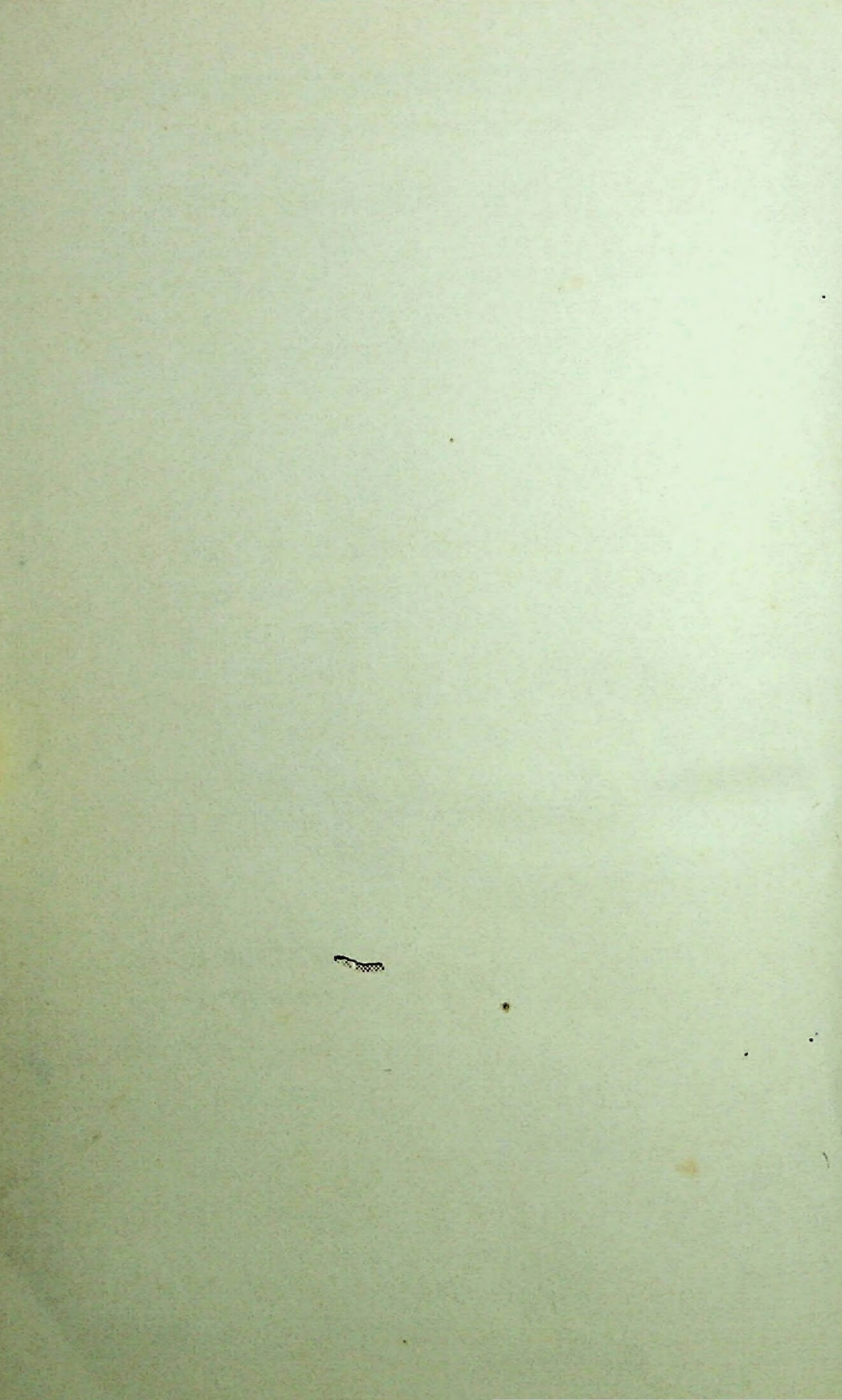
सन्त-चेतना

धर्म एवं राजनीति : वैकल्पिक चिन्तन

सम्पादक

स्वामी मुक्तानन्द सरस्वती

अखिल भारतीय सन्त-समिति

प्रकाशकीय

शास्त्र, धर्म का निर्देश करते हैं । अधर्म का प्रभाव बढ़ने पर समयानुकूल शास्त्रानुसार दण्ड विधान की व्यवस्था दी जाती है । दण्ड विधान को शस्त्रों की भी आवश्यकता पड़ सकती है । लेकिन कभी-कभी अधर्म की शक्तियाँ शस्त्रों पर नियंत्रण तथा शास्त्र की भी उपेक्षा कर, दण्ड विधान की व्यवस्था धर्म के प्रतिकूल करने लगती हैं । ऐसी स्थिति में साधारण जन को प्रतीत होता है कि धर्म का लोप हो रहा है ।

सन्तों और महापुरुषों का अनुभव है कि धर्म सनातन है । वह कभी लुप्त नहीं हो सकता । जगन्नियन्ता यह आश्वासन देते हैं कि जब-जब धर्म की ग्लानि तथा अधर्म का प्रभाव बढ़ता है, तब-तब मैं अवतरित होता हूँ—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।।

वर्तमान काल में अधर्मियों ने शस्त्र संगृहीत कर, शास्त्रों की भी उपेक्षा करके दंड विधान की व्यवस्था को धर्म सम्मत न्याय (Natural Justice) के विरुद्ध बना लिया है । यही अधर्म व्यवस्था है । इस अधर्म व्यवस्था के साक्षी बनकर सन्त नहीं रह सकते । अखिल भारतीय सन्त समिति के रूप में संगठित होकर सन्तों ने प्रथम चेतावनी देने हेतु 'सन्त-चेतना' प्रकाशित करने का निर्णय लिया है, वह आपके हाथों में है ।

अनेक सन्तों की रचनाएँ इस छोटे से ग्रंथ में हैं । अखिल भारतीय सन्त समिति के महामंत्री स्वामी मुक्तानंद सरस्वती ने इस ग्रन्थ का सम्पादन करके न केवल सन्तों के दायित्व एवं उनके स्वरूप का स्मरण कराया है, वरन् अधर्म-व्यवस्था के वैकल्पिक रूप का भी दिशा-निर्देश किया है ।

ग्रंथ-प्रकाशन में स्वामी विष्णुदेवानंद त्यागी, स्वामी हंसदास जी पटियाला एवं विश्वधर्म शांति सम्मेलन के मंत्री तथा 'आचार्य कुल' पत्रिका के सम्पादक श्री शरद कुमार साधक का विशेष योगदान मिला है । विश्वविद्यालय प्रकाशन के श्री पुरुषोत्तम दास मोदी के अथक श्रम से मुद्रण कार्य सुलभ और आकर्षक बना है । पूरे सन्त-समाज की ओर से मैं सबके प्रति शुभकामना प्रकट करता हूँ ।

स्वामी वासुदेवाचार्य

अध्यक्ष

अखिल भारतीय सन्त समिति
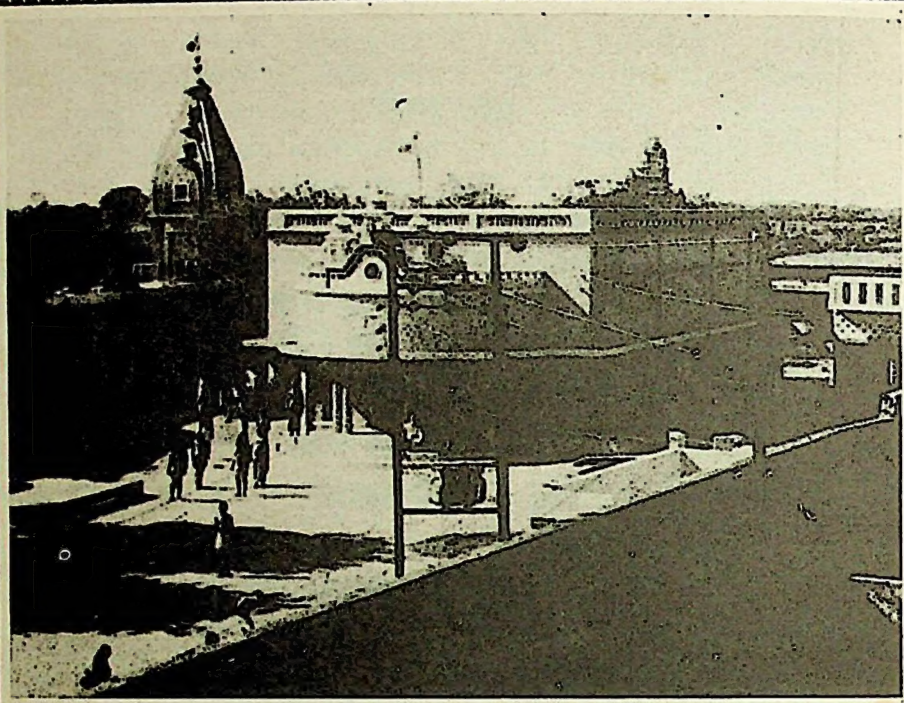
सम्पादकीय

सन्त होते हैं सर्वतन्त्र स्वतन्त्र वृत्ति वाले । किसी संस्थागत तन्त्र में बंधना न उनका स्वभाव होता है और न उनको शोभा ही देता है । फिर अखिल भारतीय सन्त-समिति किसलिए ? यह समिति संस्था नहीं है, संगठन है ।

संस्था और संगठन

संस्था और संगठन में बुनियादी अन्तर होता है । संस्था में ऊपर से नीचे तक पदाधिकारियों की श्रेणी होती है, एक तन्त्र होता है । सर्वोच्च पदाधिकारी से अधिक प्रतिभाशाली व्यक्तियों के लिये संस्था में गुंजाइश नहीं होती, क्योंकि वहाँ तन्त्र संचालन सर्वोच्च पदाधिकारी के द्वारा ही होता है ।

संगठन में तन्त्र संचालन नहीं होता । पदाधिकारी, संचालन नहीं करते, संयोजन करते हैं । संगठन का प्रत्येक सदस्य संगठन के उद्देश्यों का कार्यान्वयन करने के लिए स्वतन्त्र होता है । उसको ऊपर से आदेश की प्रतीक्षा नहीं रहती । इसलिए संगठन में प्रतिभाशाली व्यक्तियों का समावेश हर स्तर पर सम्भव होता है ।

संस्था के लिए उसके द्वारा संचालित प्रवृत्ति, संस्था का निहित स्वार्थ बन जाती है, लेकिन संगठन के द्वारा प्रवृत्ति नहीं चलाई जाती । समाज उपयोगी प्रवृत्तियों में लगने के लिए लोगों को प्रेरित किया जाता है । एक ही दिशा में प्रवृत्ति चलाने वाली संस्थाएँ भी अपना-अपना अस्तित्व अलग-अलग रखती हैं । परन्तु संगठन के द्वारा समान उद्देश्य वाली सभी संस्थाओं को मुक्त रूप से पोषण और संरक्षण दिया जाता है ।

निर्भय, निर्वैर, निष्पक्ष

अखिल भारतीय-सन्त समिति का तात्कालिक उद्देश्य, हिन्दू-राष्ट्र भारत की स्थापना के लिए अनुकूल वातावरण बनाना है । अतः जितनी भी संस्थाएँ भारत में इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए कार्य कर रही हैं, उन सबको पोषण और संरक्षण देना सन्त-समिति का पहला कर्तव्य है । सन्त-समिति न किसी संस्था की पिछलग्गू है, न किसी के तन्त्र में बंधी है । इसका प्रत्येक सदस्य तथा पदाधिकारी स्व-अनुशासन से व्यापक संयोजन के अन्तर्गत कार्य करने के लिये प्रतिबद्ध है । यह प्रतिबद्धता व्यक्तिगत स्वार्थों से ऊपर उठकर समष्टि के लिए होना अनिवार्य है ।

अखिल भारतीय सन्त-समिति के द्वारा समय-समय पर सर्व-सम्मति से शास्त्र-सम्मत कुछ आचार मर्यादाओं की घोषणा की जायेगी । इन आचार मर्यादाओं का पालन हरेक सदस्य के लिए अनिवार्य होगा । इन आचार मर्यादाओं का उद्देश्य मनुष्य को निर्भय, निर्वैर, निष्पक्ष, निर्विकार और निरंजन बनने की प्रेरणा देने का होगा ।

हिन्दू विरोधी संविधान

सभी सम्प्रदाय और गुरु-पंथों के सन्तों, आचार्यों, तथा जगद्गुरुओं को एक मंच पर उपस्थित करने के प्रयास चल रहे हैं । सफलता भी मिल रही है । भारत सरकार की वर्तमान नीतियां हिन्दू समाज विरोधी तथा पंथ सम्प्रदायों के बीच फूट डालने वाली हैं । अल्पसंख्यकों को सुविधा देने के नाम पर हिन्दू समाज के १२७ गुरु-पंथों को लालच देकर यह घोषित करने के लिए मजबूर किया जा रहा है कि वे 'हिन्दू नहीं हैं ।' रामकृष्ण-मिशन, हिन्दू समाज का ही अंग है, लेकिन अल्पसंख्यक की सुविधाएँ प्राप्त करने के लिए न्यायालय में उसे कहना पड़ा कि 'वह हिन्दू नहीं है ।'

मजहबी आधार पर पाकिस्तान बनाने के बाद भी मुस्लिम-तुष्टीकरण की नीति अपनाकर हिन्दू समाज को दबाया जा रहा है । प्रस्तुत ग्रन्थ में भारतीय-संविधान की इन त्रुटियों का विशद विश्लेषण किया गया है ।

हिन्दू मठ-मन्दिर

हिन्दू मठ-मन्दिरों पर भारत सरकार की कुदृष्टि पड़ चुकी है । अतीत में आतताई लुटेरों ने मठ-मन्दिरों की सम्पत्ति लूटी और मठ-मन्दिरों को ध्वस्त किया था । लेकिन वर्तमान भारत सरकार मठ-मन्दिरों की सम्पत्ति हड़पने के लिए उनका अधिग्रहण कर रही है । अनेक प्रदेशों में ऐसे कानून बनाये गये हैं कि मठ-मन्दिरों पर सरकारी अधिकारियों का नियन्त्रण हो गया है । सरकारी अधिकारी मठ-मन्दिरों के धार्मिक क्रिया कलापों में तो व्यवधान पैदा करते ही हैं, साथ ही मठ-मन्दिरों को असामाजिक तत्त्वों का अड्डा भी बना देते हैं । समिति इस प्रकार की नीतियों का खुलकर विरोध करती है ।

वैकल्पिक अभियान

भारत की राजनीति, अर्थनीति, शिक्षानीति तथा अन्य सभी नीतियों एवं वर्तमान भारतीय संविधान ने भारत के उज्ज्वल अतीत के उच्च मूल्यों की उपेक्षा की है । पाश्चात्य-संस्कृति की भोगवादी जीवन पद्धति को अपनाकर भारतमाता तथा देशवासियों के साथ विश्वासघात किया है । इस ग्रन्थ में वर्तमान नीतियों के वैकल्पिक स्वरूप पर विचार प्रस्तुत किये गये हैं ।

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के विषय में भी सन्त-समिति सजग है । वर्तमान विदेशी-व्यापारिक हमले को विफल करने की दिशा में लोक-मत जागृत करना सन्त-समिति के कार्यों का प्रमुख अंग है ।

भारत में हिन्दू-मुस्लिम समस्या तथा विदेशी आक्रमणकारी लुटेरों और जालिमों के स्मारकों को परिवर्तित करने की योजना भी सन्त-समिति के कार्यक्रमों में शामिल है ।

भारत में अधिकांश मुगल शासकों ने भारतवासियों को लालच देकर तथा जबरदस्ती मुसलमान बनाया था । अधिकांश मुसलमानों के पूर्वज हिन्दू ही थे । सन्त-चेतना द्वारा उनको अपने पूर्वजों की याद दिलाकर मातृभूमि के प्रति कृतज्ञ भाव पैदा कराया जा रहा है ।

भारत आजाद होने के बाद आततताई अंग्रेजों की मूर्तियाँ तथा स्मारक भारत-भूमि से हटा दिये गये थे । लेकिन मुगलकाल के अवशेषों को सुरक्षित रखने का कानून भारत-सरकार ने बनाया है । सन्त-समिति इसका विरोध करती है । भारत में जो भी मुगलकाल के स्मारक हैं, उनको ध्वस्त करने अथवा रूप परिवर्तित करने के लिये सन्त-समिति लोक जागरण अभियान चला रही है, ताकि वैकल्पिक व्यवस्था कायम हो सके । सन्त-चेतना उसी अभियान की एक सशक्त कड़ी है ।

श्रीराम जन्म-भूमि

भारत-सरकार ने ईसाई तथा इस्लाम को साम्प्रदायिक आधार पर राजनीतिक संरक्षण दिया हुआ है । इससे दो नुकसान हुए हैं—

१. इन दोनों सम्प्रदायों के लिए इनकी कट्टरता निहित स्वार्थ बनकर इनको राष्ट्रीय धारा से काट देती है ।

२. अन्य सम्प्रदायों में भी साम्प्रदायिक आधार पर संरक्षण की मांग को प्रोत्साहन मिलता है ।

परिणाम होता है साम्प्रदायिक नफरत तथा अलगाववाद । सन्त-समिति इन दोनों के खिलाफ लोक-चेतना अभियान चला रही है ।

श्री अयोध्या जी में श्रीराम जन्मभूमि पुनर्निर्माण आन्दोलन सन्तों की एवं हिन्दू समाज की अस्मिता रक्षण का प्रतीक है, क्योंकि जिस दिन से बाबर के नाम पर मीरबाकी ने श्रीरामजी के मन्दिर के स्थान पर मस्जिद बनाने का प्रयत्न प्रारम्भ किया था, श्री अयोध्या जी के सभी सन्त-सम्प्रदायों ने उसी दिन से विरोध प्रारम्भ किया था । दूसरे किन्हीं मन्दिरों के संरक्षण को लेकर इतना लम्बा संघर्ष नहीं चला । श्रीराम जन्मभूमि पुनर्निर्माण मुख्य रूप से सन्तों द्वारा प्रारम्भ किया गया आन्दोलन है । विश्व हिन्दू-परिषद, बजरंगदल तथा अन्य हिन्दू संगठनों ने इस कार्य में सन्तों को पूरा सहयोग दिया है । श्रीराम-जन्मभूमि का निर्माण करने का अवसर प्राप्त करने की होड़ सबमें लगी हुई है । सन्त समाज ही वास्तव में श्रीरामजी के मन्दिर-निर्माण का अधिकारी है । सरकार के द्वारा खड़ी की गई अड़चनों को दूर करके श्रीराम-मन्दिर पुनर्निर्माण कार्य में जो भी सन्तों को सहयोग देगा; उसको सन्तों का नैतिक समर्थन प्राप्त होगा ।

शाकाहार व गोरक्षा

हिन्दू समाज ने शाकाहारी भोजन को उत्तम माना है । गाय को माता का स्थान दिया है । भारत-सरकार इन दोनों बिन्दुओं पर हिन्दू-विरोधी रुख अपनाये हुए है । मछली, मुर्गी, सूअर, खरगोश आदि के पालन को प्रोत्साहन देकर अण्डा-मांस का सरकारी प्रचार होता है । गोमांस तथा गोचर्म के व्यापार के लिए गोहत्या भी जोरों पर चालू है । गाय की उपयोगिता तथा शाकाहार ही सर्वोत्तम भोजन है, यह भी सन्त-समिति के लोक-शिक्षण का प्रमुख बिन्दु है ।

हिन्दू संस्कार-शिक्षण

आज सारे भारत में मनुष्येतर जीव-जन्तुओं तथा खाद्यान्नों की नसल सुधारने के लिए बहुत प्रयोग हो रहे हैं । लेकिन उत्तम कोटि के संस्कारों से युक्त मनुष्य का निर्माण कैसे हो ? इसकी चिन्ता किसी को नहीं है । उत्तम संस्कारवान मनुष्य-निर्माण करने का चिन्तन हिन्दू जीवन-दर्शन में उपस्थित है । गर्भाधान से लगाकर श्राद्ध-संस्कार तक का शास्त्र-सम्मत विधान हिन्दू समाज में उपलब्ध है, उसकी उपेक्षा हो रही है। हिन्दू समाज की काल-गणना, देवनागरी-लिपि, संस्कृत-भाषा, वेद, उपनिषद्, पुराण, गीता, रामायण, एवं धर्माचार्यों द्वारा निर्मित साहित्य सभी आधुनिक समस्याओं का समाधान मानवीय दृष्टिकोण से प्रस्तुत करने में सक्षम हैं । लेकिन सरकारी नीतियों के कारण हिन्दू-संस्कारों के प्रति एक उपेक्षा भाव पैदा किया गया है । आधुनिक शिक्षित व्यक्ति तो पूरी तरह से पाश्चात्य सभ्यता के रंग में रंग कर हिन्दू जीवन-पद्धति को आधुनिकता विरोधी मानने लगा है । अखिल भारतीय सन्त-समिति हिन्दू संस्कार-शिक्षण के लिए सक्रिय है । सन्त-चेतना उसका श्रीगणेश है ।

प्रथम हुंकार

आधुनिकता में रचे-पचे बुद्धिजीवियों में संत-चेतना के अध्ययन से हिन्दू जीवन-पद्धति के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न होगी, राजनीतिक हिन्दुओं को राजधर्म की दिशा का बोध होगा, युवा पीढ़ी को वैकल्पिक जीवन-दर्शन का संदेश मिलेगा, श्रद्धावान, आस्थावान उपेक्षित हिन्दू समाज की आस्थाएँ दृढ़ होंगी । भोगवादी, राज्यतन्त्र से रक्षित अधर्म नीतियों एवं व्यवस्थाओं को सन्त-चेतना का प्रकाशन खुली चुनौती देता हुआ दिखाई देगा ।

सन्त-चेतना प्रथम हुंकार है, जो प्रकृति के साथ बलात्कार करनेवाली भोगपरायण, तथा पर्यावरण को दूषित करनेवाली अधर्म-व्यवस्था को अपना पसारा समेटने की चेतावनी दे रही है ।

काशी

गुरु-पूर्णिमा, वि० सं० २०५०

३. जुलाई, १९९३

स्वामी मुक्तानन्द सरस्वती

निन्दन्तु नीतिनिपुणाः यदि वा स्तुवन्तु,
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ।
अद्यैव वा मरणस्तु युगान्तरे वा,
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ।।

नीति कुशल व्यक्ति, धीर जनों की निन्दा करें या प्रशंसा, उनको अपार धन मिल जावे अथवा जो कुछ उनके पास है वह भी सम्पूर्ण चला जावे, मृत्यु सर पर खड़ी हो या अमृत्व प्राप्त होता हो, तो भी धीर जन (सज्जन, तेजस्वी, साधु, सन्त) न्याय संगत मार्ग से पग भर भी विचलित नहीं होते ।

श्रीमद्जगद्गुरु शंकराचार्य
गोवर्धन पीठाधीश्वर
स्वामी निश्चलानन्द सरस्वतीजी महाराज.

श्री अयोध्याजी में अखिल भारतीय सन्त समिति अयोध्या शाखा के सन्तों को सम्बोधित करते हुये ।

श्री अयोध्याजी में अखिल भारतीय सन्त समिति

कार्यकारिणी समिति की बैठक

युगपुरुष स्वामी परमानन्दजी सम्बोधन करते हुए

स्वामी रामानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्दजी, स्वामी ज्ञानानन्दजी,
स्वामी शान्तानन्द वेदपाठी, स्वामी गीतानन्दजी,
आचार्य अविचलदासजी, केदार स्वामीजी

महन्त रामकृष्ण दास महात्यागी, महन्त नृत्यगोपालदासजी, म० म० स्वामी यमुनादासजी
(सतुआ बाबा)

अखिल भारतीय सन्त कार्यकारिणी बैठक के दृश्य

अखिल भारतीय सन्त समाज श्री अयोध्याजी की बैठक में

महन्त नृत्यगोपाल दासजी द्वारा सम्बोधन

आचार्य वाचस्पतिजी द्वारा सम्बोधन

स्वामी हंसदासजी महाराज
क्षेत्रीय मन्त्री
अ० भा० सं० समिति, उत्तरी क्षेत्र

स्वामी सर्वदानन्दजी महाराज
विरक्त मंडल
अ० भा० सं० समिति, श्रीकाशीजी

स्वामी ओंकारानन्द गिरिजी
सदस्य बदरी, आदिबदरी समिति

आ० म० मं०
स्वामी सच्चिदानन्द हरिनिर्मल साक्षी

←
स्वामी विवेकानन्दजी महाराज,
वृन्दावन

→
युगपुरुष स्वामी परमानन्दजी
महाराज

←
स्वामी रामदासजी महाराज
करमसद

←
स्वामी अमरानन्दजी महाराज,
बकौली, दिल्ली

→
स्वामी शान्तानन्दजी वेदपाठी,
वृन्दावन
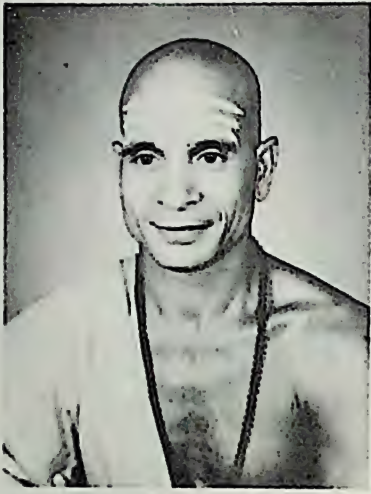
स्वामी महेशानन्द सरस्वती, वृन्दावन

स्वामी प्रज्ञानानन्दजी सरस्वती
मन्त्री
अ० भा० सं० समिति, श्री काशीजी

स्वामी गिरीशानन्दजी,दिल्ली
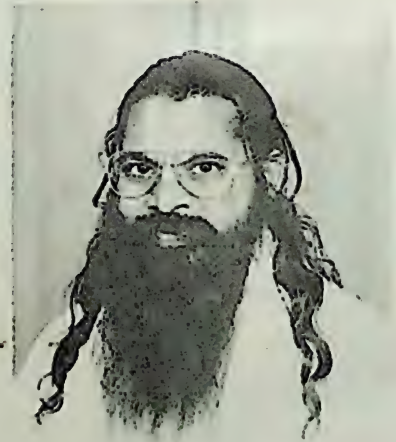
सन्त रामशरण दासजी महाराज
श्री काशीजी

अनुक्रम

अथमङ्गलाचरणम्

ॐ श्रीसद्गुरु देवाय, नमः सच्चित्सुखात्मने ।
तपसा ब्रह्मचर्येण विद्ययाऽमृतमश्नुते ।।१।।
अखिल भारतीया या सन्त समितिराद्रिता ।
सर्वमान्या क्रियाशीला भारतीयैर्महात्मभिः ।।२।।
तस्या-स्तत्त्वावधाने या, श्री सन्तचेतना कृतिः ।
जयतु स्मारिका सैव, सन्तवाणी विभूषिता ।।३।।
धर्मस्य राजनीतेश्च वैकल्पिकं सुचिन्तनम् ।
स्मारिकायां विशेषेण बुद्धिगम्यं भविष्यति ।।४।।
सत्यं सनातनो धर्मो, हिन्दू नाम्नैव शोभते ।
अखण्डो भारतोवर्षो, हिन्दूराष्ट्रो न संशयः ।।५।।
सर्वसन्त-सुपूज्यानां, सत्यकामो हरेरितः ।
पूर्णोऽयं पूर्णरूपेण, कार्यः श्रीपरमात्मना ।।६।।
समाधिं तु परित्यज्य, विश्वदुःखापहारिणा
दैत्यवधाय दत्तानि, स्वस्यास्थीनि दधीचिना ।।७।।
इदानीं धर्महीनानां जनानां हितहेतवे ।
महात्मानस्तु सर्वेऽपि लोकसेवासु तत्परः ।।८।।
सत्य प्रेमानुरागैश्च, सुमर्यादित-सेवया
पूर्वाक्रामक-चिह्नानि ध्वंसनीयानि सर्वथा ।।९।।
राग-द्वेष विहीनं च, भेदभावविवर्जितम्
शास्त्रमर्यादितं सर्वं, कर्म लोकोपकारकम् ।।१०।।
श्रीराममन्दिरं शीघ्रं, शीघ्रं श्रीकृष्णमन्दिरम्
श्रीविश्वनाथमन्दिरं मे, यथास्थानं विनिर्मितम् ।।११।।
जन्म भूमावयोध्यायां, मथुरायां तथैव च ।
ज्ञानवापीस्थले काश्यां, भव्यं भव्यं यथा भवेत् ।।१२।।
शासनारूढ सर्वेषु, राजनीतिज्ञ बुद्धिषु ।
प्रेरणा च भवेदाशु, तदर्थं प्रार्थये हरिम् ।।१३।।
नो चेत् ते राजनीतिज्ञाः कार्यं सम्पादयन्ति तत् ।
हिन्दू-धार्मिक-लोकैस्तु त्याज्या निर्वाचने तदा ।।१४।।
धार्मिका भारतीया ये, निर्वाचिता तथा यथा ।
राज्ये केन्द्रे च सर्वत्र, हिन्दूधर्मः सुरक्षितः ।।१५।।
हिन्दूसद्धर्म रक्षाऽस्तु, विधर्मिणः ये पराजिताः ।
गोरक्षा भारते वर्षे, हरिः सर्वं विधास्यति ।।१६।।

अखण्ड विश्वकल्याणं केन्द्रं सर्व हितेरतम् ।
आश्रमः सच्चिदानन्दो वाराणसी सुमण्डले ।।

—विद्यावारिधि डॉ० स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज
(संस्थापक : अखिल विश्वकल्याण केन्द्र, वाराणसी)

उद्बोधन

सन्त-चेतना

सत्परमात्मा में परिनिष्ठित महानुभाव 'सन्त' हैं । आधिभौतिक, आध्यात्मिक और आधिदैविक त्रिविध चेतना के स्रोत 'सन्त' हैं ।

समाज में धर्म नियन्त्रित, धर्म सापेक्ष, पक्षपात विहीन, शासन तन्त्र की प्रस्थापना के द्वारा सन्त आधिभौतिकी चेतना का सञ्चारित करते हैं । युक्त आहार-विहार-सदाचार-संयम-स्वधर्मनिष्ठा-देवाराधन-भगवच्छरणागति और स्वरूपनिष्ठा के द्वारा सन्त आध्यात्मिकी और आधिदैविकी चेतना को उद्दीप्त करते हैं ।

संसार और शरीर से अनासक्त सत्सम्प्रदायानुसार योग परिधान और योगपट्ट से समलंकृत सन्त अपने अभ्युदय और निःश्रेयस के साथ ही सबके अभ्युदय और निःश्रेयस का पथ प्रशस्त करते हैं ।

लौकिकी, वैदिकी मर्यादा का उल्लंघन कर धन, मान और काम के वशीभूत उसके सेवन में संलग्न रहते हुए, दूसरों के उत्पीड़न में निमग्न रहने वाले, द्वैत प्रपञ्च में ही रचे-पचे, देहेन्द्रियादि को असन्तुलित रखनेवाले, वेदविमुख और हरि-गुरु निन्दक, जगत् के हित का क्षय करने वाले 'असन्त' हैं ।

'क्षयाय जगतोऽहिताः' (श्रीमद्भगवद्गीता १६ । ६)

इसके विपरित लौकिकी-वैदिकी मर्यादा का पालन करते हुए अर्थ-काम और मान को स्वीकार करने वाले, समबुद्धि का समादर करते हुए द्वैधीभाव का छेदन करने वाले, देहेन्द्रियादि को संयमित रखने वाले, वेद मार्गस्थ, हरि-गुरु प्रशंसक, सर्वभूतों के हित में रंत महानुभाव 'सन्त' हैं ।

'लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः । छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूत हिते रताः ।।

(श्रीमद्भगवद्गीता ५ । २५)

'सन्नियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः । ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः ।।

(श्रीमद्भगवद्गीता १२ । ४)

सन्तों की चेतना प्रत्येक युग में जागरूक रही है। जय-विजय, नहुष, बेन, उच्छृंखल यदुकुल कुमार, यवन तथा अंग्रेजों को शापित और प्रताड़ित कर सन्तों ने चारों युगों में अपनी उज्ज्वल कीर्ति स्थापित की है ।

स्वतन्त्र भारत में भी सर्वभूत हृदय, सद्गुरुदेव श्री स्वामी करपात्री जी महाराज सरीखे सन्तों ने ज़िस चेतना को प्रसारित किया है, वह सहृदय विज्ञ महापुरुषों से तिरोहित नहीं है ।

देश में व्याप्त अराजकता को दूर कर भारत की अखण्डता और सनातन हिन्दू राष्ट्र की स्थापना वर्तमान सन्त-चेतना के 'केन्द्र बिन्दु' हैं ।

अनन्त श्री समलंकृत जगद्गुरुशंकराचार्य गोवर्धन पीठाधीश्वर
स्वामी निश्चलानन्द सरस्वती जी महाराज

वृन्दावन २८-५-९३

भगवान् आद्य शंकराचार्य का प्रादुर्भाव एवं मठ परम्परा

ज्योतिष्पीठाधीश्वर जगद्गुरु शङ्कराचार्य
श्री स्वामी वासुदेवानन्द सरस्वती जी महाराज

नारायण-समारम्भान्शंकराचार्य मध्यमाम् ।
अस्मदाचार्य-पर्यन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम् ।।

आचार्य वन्दना

नारायणं पद्मभवं वसिष्ठं शक्तिं च तत्पुत्रपराशरंच ।
व्यासं शुकं गौडपदं महान्तं गोविन्दयोगीन्द्रमथास्य शिष्यम् ।।१।।
श्री शङ्कराचार्यमथास्य पद्म-पादंच हस्तामलकंच शिष्यम् ।
तं त्रोटकं वार्तिककारमन्यानस्मद् गुरून् सन्ततमानतोऽस्मि ।।२।।

आद्य शंकराचार्य से पूर्व का भारत

आज से लगभग ढाई हजार वर्ष पूर्व भारतवर्ष में सनातनधर्म के वास्तविक सिद्धान्तों को दबाने वाले वेद-विरुद्ध प्रचारकों का बोलबाला हो गया था । केवल बुद्धिवाद एवं विलासिता के आधार पर मनमाने सिद्धान्त समाज का नियमन कर रहे थे । समाज में भयंकर दोषों की प्रचुरता हो रही थी और वैदिक संस्कृति लुप्त सी हो गई थी । धार्मिकता की ज्योति पाखण्ड एवं दम्भ की आँधी से बुझने के किनारे आकर अपनी अंतिम साँसें गिन रही थी । उस पावन ज्योति को बुझने से बचाने के लिए भगवान् चंद्रमौलि शंकर ने इस पृथ्वीतल पर दक्षिण भारत में केरल प्रान्त स्थित कालड़ी ग्राम में आचार्य शिवगुरु के यहाँ आचार्य शंकर के रूप में अवतरित होकर संपूर्ण विश्व में वैदिक धर्म का शंखनाद किया । उपनिषदों की दिव्यवाणी देश भर में गुञ्जित होने लगी । गीता का विशुद्ध एवं निर्मलज्ञान अपने वास्तविक स्वरूप में जनता के सामने प्रकट हुआ । वैदिक धर्म का अद्‌भुत उत्साह देश के कोने-कोने में व्याप्त हो गया । धर्म के इतिहास में नवीन युग का प्रारम्भ हुआ । इस युगान्तर को उपस्थित करने वाले श्री आचार्य शंकर भारत के ही नहीं, विश्व के अर्चनीय एवं वन्दनीय हैं ।

भगवान् आद्य शंकराचार्य का अवतार काल

आचार्य शंकर का प्रादुर्भाव आज (संवत् २०५०) से २४६३ वर्ष पहले हुआ था । इसके निम्नलिखित प्रमाण हैं—

१. बदरिकाश्रम में कई लेखों एवं प्रमाणों से यह सिद्ध है कि भगवान् आद्य शंकराचार्य ने बद्रीनाथ के वर्तमान मंदिर का आज से २४५२ वर्ष पूर्व जीर्णोद्धार किया था और भगवान् बद्रीविशाल की प्रतिमा नारद कुण्ड से निकाल कर उसकी पुनः प्रतिष्ठा इस मंदिर में की थी ।

२. टेहरी राज्य के दीवान रतुड़ी महोदय ने अपने गढ़वाल के इतिहास में लिखा है २६४१ कलिगत वर्ष में बद्रीनाथ मंदिर का जीर्णोद्धार हुआ था । यह काल उपर्युक्तकाल से ठीक मिलता है ।

३. शारदा पीठ की वंशानुक्रमणिका में उल्लेख है कि आचार्य शंकर का जन्म कलिगत २६३१ वर्ष की वैशाख कृष्ण पञ्चमी को हुआ था । बड़ौदा राज्य के दफ्तर में भी यही उल्लेख पाया जाता है ।

४. कालिदासकृत शंकर दिग्विजय में निम्नलिखित श्लोक पाया जाता है—

गत्वैकादश वार्षिको बदरिकारण्ये सुपुण्याश्रमे,
पञ्चाब्दान्तरकुण्ठयानिजंधिया भाष्याणि यः षोडशः ।
निर्माय प्रथमाञ्चकार बदरीनारायणार्चां तथा;
श्री ज्योतिर्मठमाबबन्ध सगुरुः श्री शंकरो वंद्यते ।।

अर्थात् उन भगवान् शंकराचार्य की हम वन्दना करते हैं, जो ग्यारह वर्ष की आयु में पवित्र आश्रमों वाले बदरिकारण्य में गये थे । वहाँ पाँच वर्ष तपश्चर्या करते हुए आप ने बद्रीनारायण की पूजा को पुनः प्रारम्भ करवाया । सोलह उपनिषदों पर भाष्य लिखे तथा श्री ज्योतिर्मठ की स्थापना की । यह उक्ति उपर्युक्त प्रमाणों को पुष्ट करती है । भगवान् शंकराचार्य कलिगत २६३१वें वर्ष में जन्म लेकर ग्यारह वर्ष की अवस्था में (कलिगत २६४२ में) बदरिकाश्रम गये । वहाँ बद्रीनाथ मन्दिर का जीर्णोद्धार किया और ज्योतिर्मठ की स्थापना की । उसके बाद अन्य मठ स्थापित हुए । स्थापना काल—

१. ज्योतिर्मठ श्री बद्रिकाश्रम (हिमालय) कार्तिक शुक्ल पञ्चमी युधिष्ठिर सं० २६४६ ।

२. शारदामठ श्री द्वारिकाधाम (गुजरात) कार्तिक शुक्ल पञ्चमी युधिष्ठिर सं० २६४८ ।

३. शृंगेरीमठ श्री कालडी (तामिलनाडु) फाल्गुन शुक्ल नवमी युधिष्ठिर सं० २६४६ ।

४. गोवर्धनमठ श्री जगन्नाथपुरी (उड़ीसा) वैशाख शुक्ल नवमी युधिष्ठिर सं० २६५५ ।

सभी मठों के आचार्य भगवान् आद्य शंकराचार्य के प्रतीक एवं शंकरस्वरूप माने जाते हैं । भगवान् शंकराचार्य ने बदरीनाथ मंदिर के उद्धार के साथ ही श्री ज्योतिर्मठ का निर्माण किया था । बदरीनाथ में शीतकाल में लगभग ६ मास बर्फ पड़ता है, ऐसी अवस्था में वहाँ कोई भी प्राणी नहीं रह सकता, इसी कारण कार्तिक से वैशाख तक बदरीनाथ मंदिर बंद कर दिया जाता है । वहाँ के सभी पूजक आदि कर्मचारी ज्योतिर्मठ में चले आते हैं । यहीं भगवान् बदरीनाथ की चल प्रतिमा ले आयी जाती है और ६ महीने ज्योतिर्मठ में ही पूजा होती है । यही व्यवस्था करने के लिए भगवान् शंकराचार्य ने ज्योतिर्मठ की स्थापना की थी ।

इसी ज्योतिर्मठ में आचार्यपाद ने पाँच वर्षों तक निवासकर प्रस्थानत्रयी पर भाष्य लिखा, ज्योतिरीश्वर भगवान् की स्थापना की । आचार्य शंकर की गुफा, अमर सहतूत, जिसके नीचे बैठकर ध्यान साधना किया करते थे, आज भी विद्यमान है ।

भगवान् आद्य शंकराचार्य ने वैदिक संस्कृति की धारा को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए चारों दिशाओं में चार मठों को धर्मप्रचार का केन्द्र बनाया, जिसमें ज्योतिर्मठ प्रथम है । इस पीठ के प्रथम आचार्य श्री त्रोटकाचार्य भगवान् थे ।

विक्रमी संवत् १८३३ तक ज्योतिर्मठ पर ४२ पीठाधीश्वर पीठाधिपति रहे । इसके बाद १६५ वर्ष तक यह पीठ रिक्त रही । वि० सं० १९९८ में आचार्य ब्रह्मानन्द सरस्वती जी महाराज ने ज्योतिष्पीठाधीश्वर का पद संभाला । ❒

सद्भावपूर्ण सन्देश

श्रीमज्जगद्गुरु शंकराचार्य गोवर्धनपीठाधीश्वर
श्री स्वामी निश्चलानन्द सरस्वती जी महाराज

यह निर्विवाद सत्य है कि मुस्लिम शासन काल में हिन्दुओं के मठ-मन्दिरों को ध्वस्त और भ्रष्ट किया गया था । हर तरह से हिन्दु संस्कृति को मिटाने का प्रयास किया गया । अरब राष्ट्र, पाकिस्तान और बंगला देश में हिन्दुओं को जो अधिकार प्राप्त हैं, भारत में मुसलमानों को भी यदि वही अधिकार दिये जावें तो विश्व का कोई भी न्यायप्रिय विचारक इसे अन्याय नहीं कह सकता । लेकिन भारत में मुसलमानों को हिन्दुओं से अधिक अधिकार दिये गये हैं । फिर भी भारत के मुसलमान हिन्दुओं से नफ़रत करते हैं । भारत में ही हमारे पूज्य अवतारों के स्थलों पर मस्जिदें प्रतिष्ठित हों, ऐसी बात नहीं, मक्का में भी श्री मक्केश्वर महादेव के स्थल पर ही मस्जिद प्रतिष्ठित है । ऐसी स्थिति में मुसलमान अपने कृत्यों पर पश्चाताप कर भारत में पारसियों के समान हिलमिल कर रहें, इतनी सी अपेक्षा है । हमारे गिने-चुने अत्यन्त महत्त्वपूर्ण उपासना स्थलों पर विवादास्पद ढाँचे को हटाकर मन्दिर बनने दें, यह उनका मानवोचित पवित्र दायित्व है । ध्यान रहे, भारत में अधिकांश मुसलमान वही हैं, जिनके पूर्वज ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि पवित्र कुल में उत्पन्न सनातन धर्मी हिन्दू थे । क्योंकि अब वे परम्परा से गोमांस सेवन आदि के कारण वर्णाश्रम धर्म की मुख्य धारा से बहुत सुदूर हो गये हैं, अतः उन्हें वर्णाश्रमी न बनाकर अत्यन्त सहृदयतापूर्वक 'हिन्दू' बनाने के लिए हम समुत्सुक हैं । ऐसे हिन्दू आपस में ही रोटी-बेटी की मर्यादा निर्धारित कर अपने नाम के आगे 'इन्दु' लगा सकते हैं, जैसे कि पुरुष हों तो 'भारतेन्दु' आदि और स्त्री हों तो 'सावित्रीन्दु' आदि । जिन मुसलमानों के पूर्वज कितने वर्ष पूर्व और किस देश के हिन्दू थे, इसका पता लगा पाना कठिन है, ऐसे मुसलमानों को इतना ध्यान रखना आवश्यक है कि भारतीय इतिहास के अनुसार विश्वामित्र के सैनिकों की चपेट से अपनी रक्षा के लिए महर्षि वशिष्ठ की नन्दिनी नामक गाय ने अपने शरीर से यवनादि जातियाँ उत्पन्न की थीं, ऐसी स्थिति में गोमांसभक्षण का परित्याग कर यज्ञ भूमि भारतवर्ष से गोहत्या के काले कलङ्क को मिटाकर हिन्दुओं के साथ हिलमिलकर रहने की भावना प्रत्येक भारतीय मुसलमान के हृदय में होनी चाहिए । साथ ही नेताओं की भावुकता और भूल से हुए देशविभाजन को दुर्भाग्यपूर्ण समझकर अखण्ड भारत का स्वप्न साकार करना चाहिए । ❑

अखिल भारतीय सन्त-समिति के अध्यक्ष का उद्घोष

हिन्दू राष्ट्र भारत की पुनर्स्थापना

श्रीमज्जगद्गुरु रामानुजाचार्य
श्री :स्वामी वासुदेवाचार्य विद्याभाष्कर जी महाराज

प्रथम चरण—सन्त-चेतना (संस्कृति दर्शन) का प्रकाशन
प्रकृति, समाज और व्यक्ति के बीच परिपूर्ण सन्तुलन की
आचार-संहिता प्रकट होगी

हिन्दू राष्ट्र भारत की पुनर्स्थापना से

पर्यावरण सम्बन्धी सभी प्रश्नों और समस्याओं के समाधान के लिए
हिन्दू राष्ट्र भारत की पुनर्स्थापना आवश्यक
एकांगिता, कट्टरवाद, साम्प्रदायिक उन्माद, अलगाववाद, अभाव
अज्ञान और असुरक्षा से मुक्ति पाने का
एक मात्र उपाय

हिन्दू राष्ट्र भारत की पुनर्स्थापना

भारत की एकता, अखण्डता स्थापित करके भाई चारा
साम्प्रदायिक सद्भाव एवं सबको रोजी-रोटी देने की
सम्यक् व्यवस्था करने का नाम है

हिन्दू राष्ट्र भारत

पूजा स्थल, पूजा पद्धति, गुरु परम्पराओं की स्वतन्त्रता,
एक ही बगीचे में अलग-अलग रंग के और सुगन्ध
के फूलों को अपनी तरह विकसित होने और खिलने
का परिपूर्ण अवसर मिलेगा

हिन्दू राष्ट्र भारत में

किसी के प्रति नफ़रत नहीं, किसी की उपेक्षा नहीं, किसी का तुष्टीकरण नहीं
सम ष्टे की सुख शान्ति के सभी विचारों का परिपूर्ण आदर
लेकिन
समाज विरोधी, प्रकृति के प्रति कृतघ्नता, अनाचार, समाज और
व्यक्ति के प्रति नफ़रत के विचारों तथा आचारों की भोगवादी,
स्वार्थी और प्रभुत्त्ववादी व्यवस्थाओं का उन्मूलन किया जायेगा

हिन्दू राष्ट्र भारत में

क्योंकि इसकी मूल मान्यता है
धर्म की जय हो, अधर्म का नाश हो, प्राणियों में सद्भावना हो,
विश्व का कल्याण हो, गो माता की जय हो, गो हत्या बन्द हो !

धर्म चेतना के एकादश सूत्र

१. प्रातःकाल राम-कृष्ण की जन्म भूमि पृथ्वी माता के लिये क्षमा प्रार्थना करना—

समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमण्डले
विष्णुपत्निनमस्तुम्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे ।

यह श्लोक बोलकर पृथ्वी माता से उसके ऊपर पैरों से चलने के लिए क्षमा याचना करना ।

२. माता पिता तथा गुरु के लिए प्रणाम करना—

प्रातःकाल उठिकै रघुनाथा ।
मात-पिता गुरु नावहिं माथा ।।

३. अपने घर में एक धर्म पात्र रखना । उसके सामने धर्म-पात्र ऐसा लिखें । एक ओर जय श्री राम तथा दूसरी ओर जय श्री कृष्ण, पीछे की ओर जय श्री काशी विश्वनाथ लिखें । भले ही ५ पैसे का सिक्का हो, अपने सभी बालकों के हाथ से उस धर्म पात्र में डलवायें । पैसा छोड़ते समय बालक तथा स्वयं कहें कि हम हिन्दू धर्म के लिए समर्पित हैं ।

४. नित्य ईश्वर प्रार्थना करना ।

५. रामायण आदि किसी भी धर्मग्रन्थ को घर में रखना तथा उसका पाठ करना ।

६. घर में तुलसी का पौधा लगाना ।

७. गाय के घी का दीपक जलाना ।

८. शिखा धारण करना ।

९. गो माता की मैं रक्षा करूँगा, ऐसा संकल्प लेना ।

१०. गंगा माता का आदर, धर्म उत्सवों का आयोजन, तीर्थ यात्रादि करना ।

११. अपने घर की बाहरी दीवार पर अपनी-अपनी श्रद्धा-निष्ठा के अनुसार भगवान् का कोई नाम लिखना ।

(प्रचारक—अखिल भारतीय सन्त-समिति)

ये एकादश संकल्प लेने वाले (धर्म समाज के सदस्य) अपना नाम पता सन्त-समिति कार्यालय में भेजें—

सोऽहम् आश्रम, परिक्रमा मार्ग, वृन्दावन (उ० प्र०)

निर्भय जीवन विहार !

श्री शिवाजी महाराज

भस्म कर चिन्ता सदा भगवान् का चिन्तन करे
निज हाथ से जो प्रेम से वैराग्य का पोषण करे
बस एक आशा एक भाषा
लोक संग्रह की जिसे
भगवान् माथे पर सदा
संसार में भय क्या उसे ?
मोह ममता मान जिसने सर्वथा छोड़े यहाँ
गुणरत्न की माला पिरोई प्रेम-धागे में यहाँ
जो आत्मरत, विश्वास है
इस विश्व का गहरा जिसे,
भगवान् माथे पर सदा
संसार में भय क्या उसे ?
वह नम्रता की नम्रता हो प्राप्त अभिलाषा यही,
हो साध्य सेवा इस घड़ी, है कल्पना जिसकी सही;
जन-जन जागता जा रहा
नित सजग रहकर नेम से
भगवान् माथे पर सदा
संसार में भय क्या उसे ?
जो सद्विचारों से पगे चुन वचन बोले तौलकर
दे दग्धजन को शान्ति सुखप्रद वचन जो प्रिय बोलकर
उल्लास जो जन में जगाता
नित नया, निज ज्ञान से;
भगवान् माथे पर सदा
संसार में भय क्या उसे ?
सन्तोष देता सज्जनों को साम्ययोगी भाव से
सहता सदा जो दुःसह दुःखों को तटस्थ प्रभाव से
रुकता नहीं, सन्मार्ग पर
जाता सदा जो वेग से
भगवान् माथे पर सदा
संसार में भय क्या उसे ?

(मूल मराठी से, अनुवादक—मदालसा)

हिन्द के हर पुत्र का ध्येय और कार्य

मैं भारत की भक्ति करता हूँ, क्योंकि मेरे पास जो कुछ भी है, वह सब उसी का दिया है । मेरा पूरा विश्वास है उसके पास सारी दुनिया के लिए एक सन्देश है ।

भारत अपने मूल में कर्मभूमि है । इस भूमि को समानता की भावना के साथ आज़ादी के रास्ते ले जाने का हम सबको जी तोड़ श्रम करना होगा ।

मेरे लिए देश-प्रेम और मानवप्रेम में कोई भेद नहीं है । दोनों एक ही हैं । मैं देश-प्रेमी हूँ, क्योंकि मैं मानव-प्रेमी हूँ ।

मैं भारत का उत्थान इसलिए चाहता हूँ कि सारी दुनिया उससे लाभ उठा सके ।

मैं विश्वास करता हूँ तथा उस विश्वास में सुख और गर्व का अनुभव करता हूँ कि शायद मुक्ति के प्यासे जगत् को सही रास्ता दिखाने का श्रेय भारत की प्राचीन भूमि को ही मिलेगा ।

राष्ट्रवादी हुए बिना कोई अन्तर्-राष्ट्रीयवादी नहीं हो सकता । अन्तर्-राष्ट्रीयवाद तभी संभव है जब राष्ट्रवाद सिद्ध हो चुके—यानी जब विभिन्न देशों के निवासी अपना संगठन कर लें और हिलमिल कर एकतापूर्वक काम करने का सामर्थ्य प्राप्त कर लें ।

भारतीय राष्ट्रवाद ने एक नया रास्ता लिया है । वह अपना संगठन या अपने लिए आत्म-प्रकाशन का पूरा अवकाश विशाल मानव-जाति के लाभ के लिए, उसकी सेवा के लिए ही चाहता है । इसीलिए भारतीय राष्ट्रवादी राष्ट्रधर्म की बात कहते हैं ।

सेवा की जड़ प्रेम में निहित है और सच्चा प्रेम समुद्र की तरह निस्सीम है ।

सच्ची लोकशाही तो नीचे से हरएक गाँव के लोगों द्वारा चलायी जानी चाहिए ।

सच तो यह है कि एकमात्र अपने कर्त्तव्य के पालन का अधिकार ही ऐसा अधिकार है, जिसमें सब उचित अधिकारों का समावेश होता है ।

स्वराज्य एक पवित्र शब्द है, वह एक वैदिक शब्द है, जिसका अर्थ आत्मशासन और आत्मसंयम है । स्वराज्य से मेरा अभिप्राय है लोक-सम्मति के अनुसार होनेवाला भारतवर्ष का शासन ।

मेरी आशा देश के नवयुवकों पर है । सबसे बड़ी बात तो यह है कि उन्हें ईश्वर की खोज करनी चाहिए । ईश्वर की खोज का, उसके ध्यान और दर्शन का अर्थ यह है कि जिस तरह बालक बिना किसी प्रदर्शन की आवश्यकता के अपनी माँ के प्रेम को महसूस करता है, उसी तरह हम भी यह महसूस करें कि ईश्वर हमारे हृदय में विराजमान है ।

हिन्द का असल जमाना सतयुगी था और फिर से ऐसा होगा । हिन्द के हरएक पुत्र के लिए एक ही देश, एक ही प्रेम, एक ही हेतु एवं एक ही कार्य है—हिन्दी भाइयों की सेवा । यही ज़िन्दगी का ध्येय और यही मेरा आधार है ।

—महात्मा गांधी

सन्तों की भूमिका एवं लक्षण

विरक्त शिरोमणि परमहंस श्री स्वामी वामदेव जी महाराज

सन्तों की पहचान

सन्तों महन्तों की भारत के निर्माण में क्या भूमिका है ? यदि इस पर विचार करें तो पहले संत के आन्तरिक स्वरूप पर विचार करना होगा । सन्त शब्द साधु शब्द का पर्याय है । भगवान् श्री कृष्ण गीता में कहते हैं कि 'सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते' गीता १७-२६ । सत् शब्द का ही रूप सन्त शब्द है । भगवान् कहते हैं कि संत शब्द साधु भाव में भी प्रयुक्त होता है ।

हम किसी को साधु कहें या सन्त कहें, एक ही बात है । इसी अर्थ में ग्रन्थों में महत् शब्द का भी प्रयोग हुआ है । श्री शंकराचार्य जी महाराज का एक लघुकाय ग्रन्थ प्रश्नोत्तरी है, उसमें प्रश्न किया है कि 'के सन्ति सन्तः ? अर्थात् संत कौन हैं ? उत्तर दिया कि 'अखिलवीतरागा अपास्तमोहाः शिव तत्त्व-निष्ठाः' जिनका संसार में कहीं भी राग नहीं है तथा जो शिव तत्त्व में निष्ठा वाले हैं, वे सन्त हैं । भागवत में कहा है—

प्रसंगमजरं पाशमात्मनः कवयो विदुः ।
स एव साधुषु कृतः मोक्षद्वारमपावृतम् ।।

भा० ३, २५-२०

जीवात्मा का पदार्थों के साथ विशेष सम्बन्ध रहना, कभी जर्जर न होने वाला बन्धन है । यदि यही संग साधुओं में कर लिया जाय तो खुला मोक्ष का द्वार है ।

साधु कौन है ? जब यह प्रश्न सामने आया तो कहा—

तितिक्षवः कारुणिकाः सुहृदः सर्वदेहिनाम् ।
अजातशत्रवः शान्ताः साधवः साधुभूषणाः ।।
मय्यनन्यभावेन भक्तिं कुर्वन्ति ये दृढाम् ।
मत्कृतेत्यक्तकर्माणस्त्यक्तस्वजन बान्धवाः ।।
मदाश्रयाः कथामृष्टा शृण्वन्ति कथयन्ति च ।
तपन्ति विविधास्तापा नैतान्मद्गतचेतसः ।।
त एते साधवः साध्वि सर्वसंगविवर्जिताः ।
संगस्तेष्वथते प्रार्थ्यः संगदोषहरा हिते ।।

भा० ३-२५-२१-२४

तितिक्षु करुणाशील सर्वप्राणियों के सुहृद, शत्रुता से रहित, शान्त पुरुष साधु हैं । यही नहीं, वे साधुओं में भूषण (श्रेष्ठ) हैं । ऐसे गुणों से युक्त साधु पुरुषों में यह गुण कैसे आवग, तो कहते हैं—जो मुझमें अनन्यभाव से दृढ़ भक्ति करते हैं, मेरे लिए जिन्होंने सर्वकर्म तथा

अपने बन्धुजनों को भी त्याग दिया है, मेरी ही कथा सुनते तथा कहते हैं । मेरे में चित्त लगा रहने से तीनों ताप नहीं तपाते हैं, वे ही संसार से संग (राग) रहित साधु पुरुष हैं ।

कपिल भगवान् कहते हैं, हे मात ! ऐसे साधुओं का ही संग करना चाहिए । क्यों कि ऐसे साधु पुरुष ही संसार की आसक्ति रूप दोष को हर लेते हैं । भाग० २१-२४ ।

भगवान् ऋषभ देव जी महाराज कहते हैं—

महत्सेवां द्वारमाहुर्विमुक्तेस्तमोद्वारं योषितां सङ्गिसंगम् ।
महान्तस्ते समचित्ताः प्रशान्ता विमन्यवः सुहृदः साधवो ये ।।

भा० ५-५-२ ।

महान् पुरुष की सेवा (संग) को विद्वान् पुरुष मुक्ति का द्वार कहते हैं । स्त्रियों के संग को तम (नरक) का द्वार कहते हैं । जब प्रश्न हुआ कि महत्पुरुष किसे कहते हैं, तो भगवान् ऋषभदेव जी ने कहा कि समचित्त शान्त, क्रोध रहित, सबका भला चाहनेवाले साधु पुरुषों को ही महत्पुरुष कहते हैं । भाव यह है कि साधु, सन्त तथा महत्पुरुष के एक ही लक्षण हैं अतः भले ही साधु कहें, सन्त कहें या महत्पुरुष कहें, एक ही बात है । एक ही अर्थ है । सत् शब्द के स्थान में सन्त शब्द तथा महत् शब्द के स्थान में महन्त शब्द का प्रयोग लोक में होता है ।

भारत देश का भारत नाम भी एक सन्त के नाम से ही पड़ा है । श्री मद्भागवत पुराण में कहा गया है कि भगवान् ऋषभदेव जी के अनेक पुत्रों में से ज्येष्ठ पुत्र भरतजी थे । वे परम सन्त थे । 'स्वतनयज्येष्ठं परमभागवतं भगवज्जनपरायणं भरतं धरणिपालनायाभिच्य प्रवव्राज' । शुकदेव जी कहते हैं कि अपने पुत्रों में ज्येष्ठ भगवान् के परम भक्त, भक्तजनों के परायण भरत का पृथ्वी पालन के लिये राज्याभिषेक करके विरक्त हो ऋषभदेव जी राज्य त्याग कर वन को चले गये । भागवत में कहा है—"अजनाभं नामैतद्वर्ष भारतमिति यत् आरभ्यव्यपदिशन्ति ।" भा० ५-७-३ । इस देश का नाम अजनाभवर्ष था । भरत जी राजा हुए, उसके पश्चात् इसे भारतवर्ष कहने लगे । भक्तों के संग रहनेवाले भरत जी का मन भक्ति की पराकाष्ठा को प्राप्त था ।

जाति, वेष, वर्ण, आश्रमातीत साधना

आज कल सन्त तथा साधु शब्द, वेष विशेष धारण करने वालों में रूढ़ हो गया है तथा महत् शब्द के स्थान में महन्त शब्द भी नागाओं के अखाड़ों के अध्यक्षों में रूढ़ हो गया है । सन्त या साधु के लक्षण में वेष तथा अखाड़ाधिपति होना प्रविष्ट नहीं है, न जाति का ही प्रवेश है । अतः संत के लक्षण जिनमें घटते हैं, वे भले ही राजा हों, किसी भी जाति के हों, सन्यासी उदासी, मठाधीश हों, वे सन्त हैं । तुलसीदासजी ने सन्त के लक्षण बताये हैं—

सन्तन के लच्छन रघुवीरा ।
कहहुँ नाथ भवभंजन भीरा ।।
सुनि मुनि सन्तन के गुन कहहूँ ।
जिनते मैं उनके वश रहहूँ ।।
षट विकारज़ित अनघअकामा ।
अचल अकिंचन सुचि सुखधामा ।।

अमित बोध अनीहमितभोगी ।
सत्य सार कवि कोविद जोगी ।।
सावधान मानद मद हीना ।
धीर धर्म गति परम प्रवीना ।।

इत्यादि लक्षण कह कर उपसंहार किया—

सुनि मुनि साधुन के गुनजेते ।
कहिन सकहिं सारद श्रुति तेते ।

भाव यह है कि साधु, सन्त तथा महान् पुरुष के लक्षण में जाति वेष वर्ण आश्रम का प्रवेश नहीं है । अतः कबीर भी सन्त कहाये । तुकाराम, तुलसीदास, रसखान, रहीम आदि अनेक सन्त प्रसिद्ध हैं । यह भी आवश्यक नहीं कि किसी महापुरुष ने धर्म की रक्षा हेतु युद्ध किया तो वह महापुरुष नहीं । यह भी आवश्यक नहीं कि कोई युद्ध करे, तब ही महापुरुष कहलाये । प्रह्लाद, ध्रुव, राम, अम्बरीष, महाराज प्रियव्रत, भरत, युधिष्ठिर, नानकादि गुरु जन सर्व महापुरुष हुए हैं । इसी प्रकार कोई साधु सन्यासी तभी सन्त कहलावे, जब कि वह किसी धार्मिक आन्दोलन में सम्मिलित हो, ऐसा नहीं । यदि उनमें सन्त के लक्षण हैं तथा भगवान् के भजन में अपना पूरा समय लगाते हैं तो उनका हमारे आन्दोलन की सफलता के लिए शुभ संकल्प ही पर्याप्त है । परन्तु यह भी न समझ लिया जाय कि जो साधु-सन्यासी इस आन्दोलन से जुड़े हैं, वे सन्त नहीं रहे । क्यों कि साधु, सन्त तथा महापुरुष का अन्तः स्वरूप लक्षणों के अनुसार निर्णीत होता है । बाह्य क्रिया उसकी शारीरिक स्थिति के अनुसार धर्म के लिए होती है । जैसे आजकल श्रीराम जन्म भूमि आन्दोलन में अनेक साधु सन्त निष्काम भाव से सक्रिय होकर जुड़े हैं ।

एकता तथा अखण्डता में योग

प्रश्न उठता है कि इन महापुरुषों, साधु सन्तों का, देश की एकता तथा अखण्डत्ता में क्या सहयोग रहा ? इस प्रश्न को इस प्रकार समझना होगा कि वैदिक संस्कृति या आर्य संस्कृति या भारतीय संस्कृति या हिन्दू संस्कृति कहो, उसकी यह विशेषता रही है कि वह पुनर्जन्म मानती है । पुनर्जन्म का आधार धर्म-अधर्म स्वीकार करती है । धर्म, अधर्म के आधार पर ही जीवन में सुख-दुःख का भोग स्वीकार करती है । धर्म-अधर्म का निर्णय वेदों से मानती है । उसकी शाखाओं ने भी मूल रूप में प्रतिपाद्य अहिंसा, सत्यादि धार्मिक सिद्धान्तों पर ही धर्म-अधर्म का निर्णय माना है । धार्मिक विचारों का पालन करने से समाज में सामंजस्य तथा संतोष रहता है । जनता का जीवन परस्पर सहयोगी बन, शांति से व्यतीत होता है । शांति के वातावरण में अपने-अपने कर्मकाण्ड को सुचारु रूप से पालन करते हुए मनुष्य जीवन का लाभ उठाते हैं । मनुष्य का नैतिक स्तर ऊँचा रहता है । श्रेष्ठ विचारों का जनता में प्रवाह चलता है । एक दूसरे के सम्मान की भावना बनती है । भोगवाद से जो विकृतियां आती हैं, उनके लिए धार्मिक वातावरण में कोई स्थान नहीं रहता है । अतः शांति, सन्तोष, स्वतन्त्रता, श्रेष्ठ विचार, सादाजीवनादि की जननी उपरोक्त संस्कृति की रक्षा से देश की एकता तथा अखण्डता अक्षुण्ण रहती है । महापुरुषों ने देश की अखण्डता को अश्वमेध तथा राजसूययज्ञों के माध्यम से रखा और अपने चरित्र बल से भी । प्रह्लाद जी से लेकर युधिष्ठिर

तक अनेक राजा महाराजाओं का देश की अखण्डता में योगदान रहा । भारतीय संस्कृति हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक, पश्चिमी समुद्र से लेकर पूर्वी समुद्र पर्यन्त, इस देश की एकता को अक्षुण्ण बनाती रही है । उसकी रक्षा में भी महपुरुषों का योगदान रहा है । साधु-सन्त तथा विद्वानों ने भी संस्कृति के अनुसार चारित्रिक जीवन निर्माण कर, इस संस्कृति के प्रचार-प्रसार से देश की एकता में विशिष्ट योगदान दिया है । भोगवाद की कुछ विकृति आने पर राजाओं में अहं तथा भेद आया, देश की अखण्डता को झटका लगा तो चन्द्रगुप्त को माध्यम बनाकर, चाणक्यमुनि ने देश की अखण्डता कायम की तथा देश की एकता के लिए धर्म को राजनीति के मूल में स्थापित किया । अतएव उनके सूत्र हैं—१. सुखस्य मूलं धर्मः २. धर्मस्यमूलमर्थः ३. अर्थस्यमूलं राज्यम् अर्थात् प्रजा के सुख का कारण धर्म है । धर्म का कारण अर्थ-व्यवस्था है । अर्थ-व्यवस्था का कारण जितेन्द्रिय शासन-व्यवस्था है । उसके पश्चात् यवन काल आया ।

अहं तथा भेद भाव के कारण शक्ति हीन राजाओं के हाथ से देश का शासन निकल गया । अत्याचार हुए, संस्कृति को नष्ट करने के उपाय हुए । उस समय भी श्री नानकदेव जी आदि गुरुओं, महाराणाप्रताप, शिवाजी आदि महापुरुषों, तुलसीदास जी, समर्थ गुरु रामदास जी आदि सन्तों ने देश की एकता तथा सम्मान के लिए अपना योगदान दिया । तत्पश्चात् अंग्रेज आये । उनके द्वारा देश का शोषण तथा संस्कृति का विनाश होता देख कर बालगंगाधर तिलक आदि महापुरुषों तथा महात्मा गांधी, स्वामी श्रद्धानन्दादि महात्माओं ने देशवासियों को खड़ा कर दिया । कांग्रेस संस्था के द्वारा स्वतंत्रता संग्राम का संचालन किया गया । उसमें सफलता मिली । अंग्रेजों ने भारत का शासन भारतीयों के हाथों में सौंप दिया ।

देश की पावन संस्कृति की रक्षा की ओर कांग्रेसी नेताओं ने कोई ध्यान नहीं दिया । त्याग की उपेक्षा कर भोगवाद को प्रोत्साहन दिया गया । मुसलमानों का तुष्टिकरण किया गया । अत्याचारियों तथा बर्बर आक्रान्ताओं के स्मारकों को सुरक्षित रखा गया । शासनकर्त्ता देश की एकता तथा अखण्डता की दुहाई देते रहे । लेकिन नीतियों तथा संविधान ने देश में अनेकता तथा खण्डता को जन्म दिया । माँस, मदिरा का प्रचार किया । युवा-पीढ़ी विलासी बन गयी । देश पर कभी न उतरने वाला ऋण लद गया । सत्ता में बैठे बहुत से बड़े नेताओं ने देश का धन विदेशों में जमा कर दिया । देश की अर्थव्यवस्था नष्ट हो गई । शासन व्यवस्था भी विकृत हो गयी । जनता में राग-द्वेष तथा कलह और अशान्ति इत्यादि विकृतियाँ आ गईं । इन सर्व विकृतियों की मूल राजनीति में परिवर्तन लाने हेतु श्री राम जन्म-भूमि मन्दिर आन्दोलन चल रहा है । उसमें भी साधु-सन्तों का पूरा सक्रिय योगदान है । जो साधु सन्त इसमें सक्रिय नहीं हैं, वे भगवत्परायण महापुरुष भी भावना से इस आन्दोलन में हमारे साथ हैं । विरोध के बिना आन्दोलन शिथिल हो जाता है । आन्दोलन शिथिल न हो, इसके लिए बहुसंख्यक राजनैतिक दल भी विरोध करके हमारे आन्दोलन को पूर्ण सहयोग दे रहे हैं । इस प्रकार देश की एकता तथा अखण्डता की विकृति के सुधार तथा स्थापना में साधु सन्तों का सहयोग है ही, पूरे देश का भी सहयोग है । □

वचनामृत

श्री स्वामी रामानन्द सरस्वती जी महाराज

१. सहता है वह साधु है ।
२. साधु को असंग रहना चाहिए और गृहस्थों को सन्तों का सत्संग करना चाहिए ।
३. मन निग्रह के लिए वैराग्यरूपी बाँध और अभ्यासरूपी नहर खोदनी चाहिए ।
४. साधु को हर ग्रास (निवाला) मुंह में लेते समय ईश्वर को यज्ञ में हवन करके भोजन करा रहे हैं, ऐसा चिन्तन-मनन करना चाहिए ।
५. ज्ञान समुद्र है और उसमें अनन्त विचाररूपी लहरें उठती हैं तथा उसी में विलीन हो जाती हैं ।
६. अहंता ही दुःख का कारण है । कोई वस्तु अथवा व्यक्ति दुःख नहीं दे सकता ।
७. साधक बाह्य साधनों से जब तक निराश नहीं होता और समर्पित बुद्धि से ईश्वर के पास नहीं रोता, तब तक उसे पारमार्थिक शक्ति का अनुभव नहीं होता ।
८. आध्यात्मिक बीस तक गिनती

   १-२-३-४ = मत करो समय बेकार ।

   ५-६-७-८ = नित्य करो रामायण पाठ ।

   ९-१०-११-१२ = सन्त वही जिसने मन मारा ।

   १३-१४-१५-१६ = मुख से बोलो बम-बम भोला ।

   १७-१८-१९-२० = घट भीतर देखो जगदीश ।
९. गूढ़ार्थ ।

   पाप करे बिनु गति नहीं, पाप करत दिन रात ।
   पाप करे ते हरि मिले, पाप करो दिन रात ।।
   (पा = पकरे = हरि चरण पकड़ना)
१०. ईश्वर से कभी भी जगत् सम्बन्धी वस्तु अथवा पैसा नहीं माँगना चाहिए ।
११. भूत एवं भविष्य की चिन्ता मत करो । वर्तमान में हमेशा सावधान रहो ।
१२. विश्व में किसी बात की तृप्ति नहीं है, त्याग ही साधु का आभूषण है ।
१३. व्यष्टि को समष्टि में कैसे लीन करोगे ?

घट कहाँ से बना	पृथ्वी से
पृथ्वी बनी	जल से
जल बना	अग्नि से
अग्नि बनी	वायु से
वायु बना	आकाश से

इसलिए इस घट शरीर को चेतन आकाशवत् समष्टि में विलीन करो । ☐

महावीर का जीवन दर्शन

महावीर स्वामी ने अपने राजसी जीवन में और उसके चारों ओर जो अनंत वैभव की रंगीनी देखी, उससे यह अनुभव किया कि आवश्यकता से अधिक संग्रह करना पाप है, सामाजिक अपराध है, आत्म-वञ्चना है । आनन्द का रास्ता है अपनी इच्छाओं को कम करना । आवश्यकता से अधिक संग्रह न करना; क्योंकि हमारे पास जो अनावश्यक संग्रह है, उसकी उपयोगिता कहीं और है । कहीं ऐसा प्राणीवर्ग है, जो उस सामग्री से वंचित है, जो उसके अभाव में संतृप्त है, आकुल है । अतः अनावश्यक सामग्री संगृहीत कर रखना उचित नहीं । इस विचार को महावीर स्वामी का अपरिग्रह-दर्शन कहा गया है । आज के संकट के काल में जो संग्रह-वृत्ति (होर्डिंग हेबिट्स) और तद्‌जनित व्यावसायिक लाभ-वृत्ति पनपी है, उसके परिणामस्वरूप जो अनीति और भ्रष्टाचार फैला है, उससे मुक्त हम तब तक नहीं हो सकते, जब तक कि अपरिग्रह-दर्शन के इस पहलू को हम आत्मसात् न कर लें ।

अपरिग्रह-दर्शन

इसका दार्शनिक पहलू इतना ही है कि व्यक्ति अपने स्वजनों तक ही न सोचें, परिवार के सदस्यों के हितों की ही रक्षा न करे, वरन् उसका दृष्टिकोण समस्त मानवता के हित की ओर अग्रसर हो । आज प्रशासन और अन्य क्षेत्रों में जो अनैतिकता बढ़ रही है, उसके मूल में 'अपनों के प्रति ममता' का भाव ही विशेषरूप से प्रेरक कारण है । इसका अर्थ यह नहीं कि व्यक्ति पारिवारिक दायित्व से मुक्त हो जाये; इसका ध्वनित अर्थ केवल इतना ही है कि व्यक्ति 'स्व' के दायरे से निकल कर 'पर' तक पहुँचे । स्वार्थ की संकीर्ण सीमा को लाँघ कर परार्थ के विस्तृत क्षेत्र में आये । संतों के जीवन की यही साधना है । महापुरुष इसी जीवन-पद्धति पर आगे बढ़ते हैं । क्या महावीर, क्या बुद्ध सभी इस व्यामोह से परे हट कर आत्मजयी बने । जो जिस अनुपात में इस अनासक्त भाव को आत्मसात् कर सकता है, वह उसी अनुपात में लोक सम्मान का अधिकारी होता है ।

न शोषण होने दें, न शोषण करें

महावीर की विचारधारा का सीधा अर्थ यह है कि हम अपने जीवन को इतना संयमित और तपोमय बनायें कि दूसरों का लेशमात्र भी शोषण न हो, साथ ही स्वयं में हम इतनी शक्ति, पुरुषार्थ और क्षमता भी अर्जित कर लें कि दूसरा हमारा शोषण न कर सके ।

प्रश्न है ऐसे जीवन को कैसे जीया जाये ? जीवन में शील और शक्ति का यह संगम कैसे हो ? इसके लिए महावीर ने 'जीवनव्रत-साधना' का दो वर्गीय प्रारूप प्रस्तुत किया है ।

प्रथम वर्ग, जो पूर्णतया इन व्रतों की साधना करता है, वह श्रमण है, मुनि है, संत है ।

दूसरा वर्ग जो अंशतः इन व्रतों को अपनाता है, वह श्रावक है, गृहस्थ है, संसारी है ।

श्रमण अहिंसा आदि पंच महाव्रत स्वीकार करते हैं और श्रावक बारह व्रत लेते हैं । इन बारह व्रतों की तीन श्रेणियाँ हैं : पाँच अणुव्रत, चार शिक्षा व्रत व तीन गुण व्रत । अणुव्रतों में श्रावक स्थूल हिंसा, झूठ; चोरी का त्याग करता है तथा ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का व्रत लेता है । व्यक्ति तथा समाज के जीवन-यापन के लिए वह आवश्यक सूक्ष्म हिंसा का त्याग नहीं करता, जबकि श्रमण इसका भी त्याग करता है, पर उसे भी यथाशक्ति सीमित करने का प्रयत्न करता है । इन व्रतों में समाजवादी समाज-रचना के सभी आवश्यक तत्त्व विद्यमान हैं ।

पाँच अणुव्रत

१. प्रथम अणुव्रत में निरपराध प्राणी को मारना निषिद्ध है किन्तु अपराधी को दंड देने की छूट है ।

२. दूसरे अणुव्रत में धन, सम्पत्ति, परिवार आदि के विषय में दूसरे को धोखा देने के लिए असत्य बोलना निषिद्ध है ।

३. तीसरे व्रत में व्यवहार शुद्धि पर बल दिया गया है । व्यापार करते समय अच्छी वस्तु दिखा कर घटिया दे देना, दूध में पानी आदि मिला देना, झूठा नाप, तोल आदि निषिद्ध है । इस व्रत में चोरी करना तो वर्जित है ही, किन्तु चोर को किसी प्रकार की सहायता देना या चुरायी हुई वस्तु को खरीदना भी वर्जित है ।

४. चौथा व्रत स्वदारा-संतोष है, जो एक ओर काम-भावना पर नियमन है तो दूसरी ओर पारिवारिक संगठन का अनिवार्य तत्त्व है ।

५. पांचवें अणुव्रत में श्रावक स्वेच्छापूर्वक धन-संपत्ति, नौकर-चाकर आदि की मर्यादा करता है ।

तीन गुणव्रत

६. तीन गुणव्रतों में प्रवृत्ति के क्षेत्र को सीमित करने पर बल दिया गया है । शोषण व हिंसात्मक प्रवृत्तियों के क्षेत्र को मर्यादित एवं उत्तरोत्तर संकुचित करते जाना ही इन गुणव्रतों का उद्देश्य है । छठा व्रत्त इसी का विधान करता है ।

७. सातवें व्रत में योग्य वस्तुओं के उपभोग को सीमित करने का आदेश है ।

८. आठवें में अनर्थ अर्थात् निरर्थक प्रवृत्तियों को रोकने का विधान है ।

चार शिक्षा व्रत

चार शिक्षा व्रतों में आत्मा के परिष्कार के लिए कुछ अनुष्ठानों का विधान है । नवाँ सामयिक व्रत (समता की आराधना), दसवाँ संयम, ग्यारहवाँ तपस्या और बारहवाँ अतिथि का आदर करने पर बल देता है ।

इन बारह व्रतों की साधना के अलावा श्रावक के लिए पन्द्रह कर्मादान भी वर्जित हैं अर्थात् उसे ऐसे व्यापार नहीं करने चाहिए, जिनमें हिंसा की मात्रा अधिक हो, या जो

समाज-विरोधी तत्त्वों का पोषण करते हों । उदाहरणतः चोरों-डाकुओं, या वेश्याओं को नियुक्त कर उन्हें अपनी आय का साधन नहीं बनाना चाहिए ।

इस व्रत-विधान को देख कर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि महावीर स्वामी ने एक नवीन और आदर्श समाज-रचना का मार्ग प्रस्तुत किया, जिसका आधार आध्यात्मिक जीवन जीना है ।

ईश्वर के सम्बन्ध में जो जैन-विचारधारा है, वह भी आज की जनतंत्रात्मक और आत्मस्वातंत्र्य की विचारधारा के अनुकूल है । महावीर के समय का समाज बहुदेवोपासना और व्यर्थ के भाग्यवादी कर्मकाण्डों से बँधा हुआ था । महावीर स्वामी ने भाग्यवादी व्यवस्था से उत्पन्न आलस्य और प्रमाद को सब कुछ मानने का तीव्रता के साथ खंडन कर इस बात पर जोर दिया कि व्यक्ति स्वयं अपने भाग्य का निर्माता है । उसके जीवन को नियंत्रित करते हैं उसके द्वारा किये गये कार्य । इसे उन्होंने 'कर्म' कह कर पुकारा । हर व्यक्ति स्वयं कृत कर्मों के अच्छे या बुरे फल भोगता है । इस विचार ने नैराश्यपूर्ण असहाय जीवन में आशा, आस्था और पुरुषार्थ का आलोक बिखेरा और व्यक्ति स्वयं अपने पैरों पर खड़ा होकर कर्मठ बना ।

ईश्वर के सम्बन्ध में जो दूसरी मौलिक मान्यता जैनदर्शन की है, वह भी कम महत्त्व की नहीं । ईश्वर सर्वव्यापक, अनेक अनन्त रूपों में प्रकट है । प्रत्येक साधक अपनी आत्मा को जीतकर, चरम साधना के द्वारा ईश्वरत्व की अवस्था को प्राप्त कर सकता है । मानव-जीवन की सर्वोच्च उत्थान-रेखा ही ईश्वरत्व की प्राप्ति है । इस विचारधारा ने समाज में व्याप्त पाखंड, अंधश्रद्धा और भ्रष्ट कर्मकाण्डों को दूर कर स्वस्थ जीवन-साधना या आत्म-साधना का मार्ग प्रशस्त किया । उन्होंने जीवन की सरलता, शुद्धता और मन की दृढ़ता को आध्यात्मिकता का लक्षण माना । इन गुणों का हरएक में विकास हो सकता है । यह सबके लिए सुगम है । शुद्रों और पतित समझी जानेवाली नारी-जाति का समुद्धार करके भी महावीर ने समाज-देह को पुष्ट किया । आध्यात्मिक उत्थान की चरम सीमा को स्पर्श करने का मार्ग भी उन्होंने सबके लिए खोल दिया, चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, चाहे वह शूद्र हो, या और कोई ।

महावीर ने जनतंत्र से भी बढ़कर प्राणीतंत्र की विचारधारा दी । जनतंत्र में मानवन्याय को ही महत्त्व दिया गया है । कल्याणकारी राज्य का विस्तार मानव के लिए है, समस्त प्राणियों के लिए नहीं । मानव-हित को ध्यान में रख कर जनतंत्र में अन्य प्राणियों के वध की छूट है, पर महावीर के शासन में मानव और अन्य प्राणी में कोई अन्तर नहीं । सबकी आत्मा समान है । इसीलिए महावीर की अहिंसा अधिक सूक्ष्म और विस्तृत है, महावीर की करुणा अधिक तरल और व्यापक है । वह प्राणीमात्र के हित की संवाहिका है । जीव-जगत् के प्रति इतनी एकात्मता और कहाँ मिलती है ? □

('तीर्थंकर' से)

मानव : एक चिन्तन

चीनी मनीषी लाओत्से कहते हैं, 'जो दूसरों को जानता है वह विद्वान् है, जो अपने को जानता है, वह ज्ञानी है' । आधुनिक युग में शिक्षा के सार्वत्रिक प्रसार तथा विज्ञान के विकास के कारण विद्वानों की संख्या खूब बढ़ती जा रही है । लेकिन 'ज्ञानी' नजर नहीं आ रहे हैं । सितारों की सैर करनेवाला इन्सान दुनिया को जानता है, लेकिन अपने को नहीं पहचानता । नोबेल पुरस्कार विजेता विख्यात फ्रान्सीसी वैज्ञानिक डाक्टर अलेक्सिस करेल कहते हैं कि "इस ज्ञान-विज्ञान-संपन्न युग में मानव आज भी अज्ञात है । अपने बारे में अज्ञान के कारण ही इस युग की अनेकविध समस्याएँ पैदा हुई हैं ।"

अपने को जानें

अपनी बहुचर्चित कृति 'मानव, जो अज्ञात है' (मैन दी अननोन) में डॉ० करेल कहते हैं कि परमाणु के गर्भ में प्रवेश आसान है, रासायनिक द्रव्यों की बनावट जानना आसान है, लेकिन मानव को समझना मुश्किल है । भौतिकी और रसायनशास्त्र के अद्‌भुत विकास के कारण हमने सारी सृष्टि पर विजय पा ली है, लेकिन अपने पर नहीं । बात यह है कि आधुनिक तकनीकी सभ्यता का निर्माण 'मानव' को जाने बगैर हुआ है, इसलिए यह सभ्यता हमारे विकास के लिए अनुकूल नहीं है । आज जिस दुनिया को मानव ने बनाया है, उसमें वह खुद 'पराया' बन गया है । इस भूल को तभी सुधारा जा सकता है, जब हम 'मानव-विज्ञान' को विकसित करेंगे और उस खोज में प्राप्त तथ्यों के अनुसार नयी समाज रचना करेंगे ।

समग्र चिन्तन आवश्यक

विज्ञान टुकड़ों में चिन्तन करता है । मानव के शरीर के तज्ञ भी, शरीर के एक-एक हिस्से के विशेषज्ञ होते हैं । अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, अध्यात्म आदि का भी अलग-अलग विशेषज्ञों के द्वारा अध्ययन चलता है । 'समग्र मानव' को जानने की ओर किसी का ध्यान ही नहीं है । शरीर के कोषाणु, रक्त, मांस से लेकर चेतना तक सब चीजों के समुच्चय से मानव बनता है । वह परिस्थिति से बनता भी है और परिस्थिति को बनाता भी है । उसकी चेतना, स्थल-काल के चार आयामों से सीमित मस्तिष्क में भी है और स्थूल आयामों से परे उसके बाहर भी है । इस प्रकार मानव आधुनिक विज्ञान को समग्रता की ओर ले जाना चाहता है । लेकिन आज की भौतिक परिस्थिति इसके विपरीत चल रही है । समस्याओं के समाधान हेतु समग्र चिन्तन आवश्यक है ।

अद्‌भुत कृति, मानव शरीर

मानव का शरीर एक अद्‌भुत कृति है । यह शरीर एक मजबूत किला है, चमड़ी की दीवार उसकी रक्षा करती है । बाहर के कीटाणुओं को भीतर घुसने नहीं देती । पाँच इन्द्रियों

के द्वारा बाह्य विश्व के साथ शरीर का सम्पर्क होता है । यह शरीर जिन अनगिनत कोषाणुओं से बना है, वह कोषाणु भी अपने में एक दुनिया ही है । गुर्दा और फेफड़े की, विलक्षण क्षमता के साथ चलनेवाला कार्य देखकर वैज्ञानिक स्तंभित हो जाते हैं । प्रजनन-इन्द्रियों का मानव की शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक क्रियाओं से संबंध है । इस अद्भुत कृति को आज का वैज्ञानिक अलग-अलग विभागों में विभाजित करके देखता है । इसीलिए पूरे वातावरण में समग्रता का अभाव है । स्थूल शरीर के साथ मन का विचार आज का विज्ञान अब करने लगा है ।

मानव केवल शरीर नहीं

मानव के मन से अधिक शक्तिशाली कोई चीज नहीं है । लेकिन दुर्भाग्य से वैज्ञानिक उसकी ओर ध्यान नहीं देते हैं । पाँच इन्द्रियों के अलावा, अन्य साधनों से भी मानव को ज्ञान हो सकता है, यह साबित हुआ है । टेलीपैथी, भाव सम्बन्ध (क्लराव्हायन्स) आदि सत्य एवं सूक्ष्म क्रियाएँ हैं । मानव की मानसिक, बौद्धिक, नैतिक, कलात्मक और आध्यात्मिक क्रियाओं का ठीक से अध्ययन होना चाहिए । मानव केवल शरीर नहीं है । कला, संस्कृति, धर्म, नीति आदि का सभ्यता की दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान है । सृजनात्मक आनन्द के निर्माण का तथा चेतना को शरीर से मुक्त कर दूसरों के साथ, विश्व के साथ एकाकार करने का महान् कार्य कला के द्वारा होता है ।

शरीर-श्रम की महिमा

मानव-शरीर, परस्पर विरोधी तत्त्वों का समुच्चय है । वह हर क्षण बदलता भी है और कायम भी रहता है। उसमें विकास और क्षय साथ-साथ होता रहता है । उसके अन्दर निरन्तर अगणित क्रियाएँ भी चलती रहती हैं, और पूर्ण शान्ति भी रहती है । मुलायम, क्षणभंगुर तत्त्वों से बना हुआ यह शरीर फौलाद से भी ज्यादा मजबूत है । उसकी मजबूती का कारण एक क्रिया है, जिसे स्थिति-अनुकूलन की शक्ति कहते हैं । सभी शारीरिक क्रियाओं में यह शक्ति निहित रहती है । शरीर में यह शक्ति नहीं होती, तो कोई क्षतिपूर्ति कभी नहीं होती । बाहर से विजातीय कीटाणुओं का हमला होते ही सारा शरीर प्रतिकार के लिए तैयार हो जाता है । दुश्मन की फ़ौज अन्दर घुसते ही शरीर विरोधी नीति अपनाता है । बीमारी आती है और कुछ समय बाद शरीर पूर्ववत् ठीक हो जाता है । इसीलिए उपयुक्त भोजन और शरीरश्रम से, शरीर मजबूत बनता है, मन और बुद्धि का विकास होता है ।

व्यक्ति की उपेक्षा न हो

व्यक्ति विश्व के साथ जुड़ा हुआ भी है और विश्व से अलग भी है । संभवतः मनोविज्ञान की अपेक्षा तत्त्वज्ञान (मेटाफिजिक्स) मानव को जानने में अधिक मददगार साबित होगा । इलेक्ट्रोमैग्नेटिक वेव्हज् (इलेक्ट्रोचुंबक तरंग) की तरह मन के विचार भी इधर से उधर पहुँचते हैं । व्यक्ति शरीर से सीमित भी है और उस सीमा से परे भी है । वह अतीत और अनागत दोनों से जुड़ा हुआ है । जन्म से पूर्व भी वह माता-पिता के शरीर के कोषाणुओं में वास करता है । इन्हीं कोषाणुओं से शरीर बनता है । शरीर विज्ञान, मनोविज्ञान, समाजविज्ञान

आदि सब शास्त्रों के समुच्चय से 'व्यक्ति' कुछ अधिक है । 'व्यक्ति' की उपेक्षा और मनुष्यों का सामान्यीकरण (स्टेन्डर्डाइजेशन) आधुनिक सभ्यता की भयंकर भूलें हैं ।

कसूर हमारा है

कसूर विज्ञान का या तकनीकी का नहीं, कसूर हमारा है । हमने अपने को, अपने शरीर को, मन को, आत्मा को नहीं जाना । हमने प्रकृति के नियमों का उल्लंघन किया, जिसकी सजा सभ्यता संस्कृति के पतन के रूप में आज हम भुगत रहे हैं । सौभाग्य से विज्ञान की नयी खोजें हमें अपने को जानने में सहायता कर रही हैं । विज्ञान जगत् में परिवर्तन लाया है और अब वही विज्ञान हमें शक्ति दे रहा है ।

मानव के इतिहास में पहली बार ऐसा मौका आया है, जब कि एक गिरनेवाली सभ्यता के पास अपने को बचाने का ज्ञान और शक्ति भी मौजूद है, जो विज्ञान की देन है । विज्ञान के विकास ने मानव सृष्टि के बीच की दूरियों को कम करके एक-दूसरे को बहुत नज़दीक ला दिया है । भावनात्मक दृष्टि से भी मानवों के बीच की दूरी समाप्त हो, यह जरूरी है । जिस तरह विज्ञान-चिन्तन से प्रकृति में मौलिक आयामों का विकास हुआ है, उसी तरह से मानव-चित्त के चिन्तन का भी विकास होना जरूरी है । विज्ञान ने अणु विस्फोट के द्वारा अद्भुत कर्म-शक्ति की खोज की है, लेकिन यह कर्मशक्ति सृजन में लगे । इसकी दिशा तभी सुनिश्चित हो सकेगी, जब मानव-चित का विकास धर्म की दिशा में होगा ।

(चीन देशानां कथानकों से)

सन्तों से निवेदन

समाज से अधर्म मिटाना बहुत ही जरूरी है । अधर्म, ढोंग, पाखण्ड से समाज डूब जाता है । सन्त यदि खामोश बैठ जायं तो उन्हें देखकर दूसरे भी हाथपर हाथ धर कर बैठने लगेंगे । सन्त ज्ञानी हैं, अपने आन्तरिक सुख में तल्लीन रहकर शान्त रहेंगे, परन्तु दूसरा मनुष्य भीतर से रोता हुआ भी कर्म शून्य हो जायगा । एक अन्तरतृप्त होकर तटस्थ बैठा है, तो दूसरा कुढ़ता हुआ तटस्थ बैठा है, ऐसी भयंकर स्थिति है । इससे पाखण्ड बढ़ेगा । अतः सारे शिखर पर पहुँच कर भी साधन का पल्ला बड़ी सतर्कता से पकड़े रहें, आमरण स्वधर्माचरण करते रहें । माता बच्चों के गुड्डा-गुड़ियों के खेल में शरीक न हो तो आनन्द नहीं आयेगा ।

ईसा मसीह का संदेश

एक मशहूर ईसाई पादरी श्री सादिए जी० स्तावे कहते हैं कि 'ईसा शाकाहारी थे' । श्री स्तावे, रेवरंड जी० जे० औसेले की एक किताब का निर्देश करते हैं—'दी गॉस्पेल ऑफ दी होली ट्वेल्वह' (पवित्र बारह शिष्यों का सुसमाचार) और लिखते हैं कि मूल पुस्तक 'दी गॉस्पेल' को एसेने समाज ने आज तक सँभाल कर रखा और उसमें कोई बिगाड़ नहीं होने दिया । निसिया के चर्च-अधिकारियों ने 'सुधार करने हेतु' जो समिति या अधिकारी नियुक्त किये थे, उसका स्पर्श भी इस किताब को नहीं हुआ है । ईसा की उस शिक्षा को औसेले ने प्रस्तुत किया है । स्तावे के लेख में औसेले की इस पुस्तक से प्रेरणादायी उद्धरण लिये गये हैं । एक उद्धरण विशेष महत्त्वपूर्ण है—

"इन सुधार करनेवालों ने यदि कुछ किया हो तो वह यह कि उन्होंने पूरी फिक्र के साथ प्रभु ईसा की शिक्षा के कुछ हिस्से धर्मशास्त्र से निकाल बाहर कर दिये । ऐसे हिस्से जिसका अनुसरण वे नहीं करना चाहते थे । उदाहरणार्थ, मांस खाने और शराब पीने के विरुद्ध दी हुई आज्ञाएँ इत्यादि । मांसाशन के विरोध में जो दलीलें दी हों या ऐसे कई प्रसंग बयान किये हों, जहाँ प्रभु ईसा ने जानवरों के साथ बुरा बरताव करने से मना किया हो, सब उस ग्रन्थ में से निकाल दिये गये । 'पवित्र बारह शिष्यों का सुसमाचार' में ईसा को बचपन से ही पक्षियों जानवरों का प्रेमी बतलाया गया है । अपने बचपन में ही ईसा ने जाल में से बारह चिड़ियाँ मुक्त करा दीं । एक सिंह को बचा लिया, जिसका पीछा पत्थरों और बरछियों के साथ लोग कर रहे थे । उसने उन शिकारियों को धमकाया और कहा कि कई पीढ़ियों की क्रूरताओं ने सिंह को मानव का दुश्मन बना दिया है । इस लेख में शिष्यों को दी हुई ईसा की महान् सिखावन की कुछ बातें उद्धृत की गयी हैं, "तुम्हारे सामने जो परोसा है, उसे खाओ । परन्तु उन चीजों का स्पर्श न करो, जो किसी का प्राण ले कर बनी हों । क्योंकि वे तुम्हारे लिए निषिद्ध हैं ।"

"विचारवान, कोमल हृदय, करुणावान और दयालु बनो : केवल अपनी जाति के प्रति ही नहीं, बल्कि उन सब जानवरों के प्रति भी, जिनकी फिक्र करना तुम्हारा काम है । क्योंकि तुम उनके देवता हो और अपनी गरज के वक्त वे तुम्हारी ओर ताकते हैं ।"

"यज्ञ और रक्त-मांस पर होने वाले त्यौहारों को बंद करने के लिए मेरा अवतार है ।"

यह ग्रन्थ ईसा के एक चमत्कार का वर्णन करता है, जिसमें रोटी, फल और पानी भरी सुराही का जिक्र है, न कि रोटी और मछलियों का, जैसा कि आज के प्रचलित बाइबिल में पाया जाता है ।

इस ग्रन्थ में बयान है कि ईसा अपने शिष्य ज्युडास को फटकारते हैं, जबकि वह अंतिम भोजन के लिए बकरा काटने को ले आता है । ईसा तब पैगंबर जेरेमिया का प्राणियों को

बलि देने के विरोध में उद्धरण पेश करते हैं । ईसा अपने शिष्यों को कहते हैं, "मैं केवल वृक्ष के फल और अनाज का ही आहार लेता हूँ और वे ही मेरे मांस और रक्त में परिवर्तित होते हैं। जो मेरे अनुयायी हैं या मुझमें विश्वास करनेवाले लोग हैं, वे ये ही चीजें या इसी तरह की चीजें खायें ।"

बाइबिल के पहले प्रकरण के अंत में मनुष्यजाति के मूल आहार के विषय में जो वर्णन आया है, उसके बिलकुल समान यह बात है । दस आज्ञाओं में से छठी आज्ञा, 'तुम हत्या नहीं करोगे' इसी संदेश को बताती है, और पैगंबर इसाश्याह ने भी इसी नीति को प्रचारित किया । प्राणियों को कष्ट न पहुँचाने और उनसे प्रेम करने की परंपरा को सेंट फ्रैंसिस ऑफ असीसी और दूसरे संतों ने कायम रखा ।

दुर्भाग्य की बात है कि आज की ईसाईयत ने न केवल इस अच्छी परंपरा को नष्ट किया है, बल्कि दूसरी एक परंपरा को भी हमेशा के लिए विदा कर दिया है । नये इकरार (न्यू टेस्टामेंट) के ईसा के शिष्यों की कृति, प्रकरण के चौथे अध्याय में ईसाइयों के सामूहिक-स्वामित्व (कॉमन ओनरशिप) का वर्णन आया है । उसमें वस्तुओं पर अपना-अपना अलग स्वामित्व न रख कर सबका एक ही स्वामित्व रखने की बात बतायी है । "हरएक को उसकी गरज के मुआफिक वस्तुएँ दी जायँ और हरएक अपनी शक्ति के अनुसार काम करे" की दृष्टि उसमें स्पष्ट बतायी है । परन्तु उस आचरण को ईसाइयों ने आगे चल कर बिलकुल छोड़ दिया । इंग्लैण्ड के चर्च के ३९ नियमों में ३८वाँ नियम कहने लगा—

"ईसाइयों का धन और वस्तु सबके स्वामित्व की नहीं है। हरएक का उस पर अपना-अपना अलग अधिकार है । अनबाप्टिस्ट (जो चर्च से दीक्षित नहीं हैं) लोग इस तरह की कुछ बातें किया करते हैं, परन्तु वे निरर्थक हैं । हाँ, जिस किसी मनुष्य के पास उसके अपने कब्जे में कोई संपत्ति हो तो उसमें से वह उदारता से अपनी शक्ति के अनुसार गरीबों को दान अवश्य किया करे ।"

पोप पायस ९वें इससे भी आगे बढ़े और उन्होंने राजाओं, सम्राटों के राज्य करने के अधिकार को धर्म का एक हिस्सा ही ठहरा दिया ।

ऐसे ही लोगों के लिए ईसा मसीह ने कह रखा है—

"मुझे जो प्रभु-प्रभु कहते हैं, वे स्वर्ग के राज्य में प्रवेश नहीं कर पायेंगे, परन्तु वे प्रवेश करेंगे, जो मेरे परमपिता की आज्ञा का पालन करते हैं ।"

—*'कॉमन लाईफ'* इंग्लैण्ड से

तुम ईश्वर के मंदिर

क्या तुम नहीं जानते कि तुम ईश्वर का मंदिर हो और ईश्वर की आत्मा तुममें बास करती है ? यदि कोई ईश्वर के मंदिर को नष्ट करेगा, तो ईश्वर उसका नाश करेगा; क्योंकि ईश्वर का मंदिर पवित्र है और वह मंदिर तुम हो ।

—*ख्रिस्त-धर्म-सार*

भावरूप, नाम जप

(सन्तों महापुरुषों के चरणों में बैठकर जो कुछ सुना समझा, वह विचारार्थ प्रस्तुत है ।)

—सम्पादक

जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरत देखी तिन तैसी

दुनिया में बहुत से देश हैं । वहाँ की बोलियां और भाषाएं भी अलग-अलग हैं । ईश्वर की भक्ति के लिए सभी अपनी-अपनी भाषाओं में ईश्वर का गुणगान करते हैं । ईश्वर के गुणगान के लिए बहुत से शब्दों का प्रयोग होता है । ये शब्द भाववाचक और गुणवाचक होते हैं । ईश्वर के लिए इन शब्दों का उच्चारण करते समय भक्त अपने अन्दर उन गुणों को प्राप्त करने का संकल्प करता है । इसलिए भक्ति में नाम जप की महिमा है ।

नाम जप के लिए भारत में विष्णुसहस्त्रनाम का जप सदियों से होता चला आ रहा है । आद्य शंकराचार्य जी महाराज ने भक्तों के लिए विष्णुसहस्त्रनाम की खास सिफारिश की है । यह नाम-माला संस्कृत भाषा में है । दुनिया की अन्य भाषाओं तथा पंथों में भगवान् के जितने नाम प्रचलित हैं, लगभग उन सबके समानार्थी शब्द विष्णुसहस्त्रनाम में मिलते हैं । इसलिए कहा जा सकता है कि यह नाममाला एकता और समन्वय की प्रेरणा देती है ।

विष्णुसहस्त्रनाम की प्रस्तावना में भगवान् व्यास ने लिखा है—'यानि नामानि गौणानि विख्यातानि' अर्थात् जो विख्यात और अविख्यात नाम हैं, वे हम यहाँ दे रहे हैं । आगे भगवान् के नामों को गिनाते हुए कहते हैं, 'शब्दातिगः शब्दसहः' अर्थात् भगवान् कैसे हैं, शब्दों के उस पार हैं । इसका अर्थ यह है कि विष्णुसहस्त्रनाम ने शब्द भेद को मिटाकर भाव की प्रधानता को महत्त्व दिया है । नाम के पीछे भाव प्रधान है । भगवान् भाव के वश में रहते हैं । कहा भी है—

'जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरत देखी तिन तैसी'

विष्णुसहस्त्रनाम की विशेषता

विष्णुसहस्त्रनाम संसार के सब पंथों की तरफ़ समान दृष्टि से देखता है । इसमें सब नामों का समन्वय है ।

विष्णु के सहस्त्रनाम हैं, इसलिए वैष्णवों को तो इससे पूर्ण समाधान होता ही है, शिव स्थाणु जैसे शंकर के नाम भी इसमें आते हैं तो शैवों का समाधान हो गया । सिद्धार्थ गौतम बुद्ध का नाम है, तो बौद्धों का और वर्धमान महावीर का नाम होने से जैनों का समाधान होना चाहिए ।

स्कंद यानी कार्तिकस्वामी, इनका भी एक स्वतन्त्र पंथ है । सूर्य का तो विष्णुसहस्त्रनाम में अनेक तरह से अनेक बार नाम आता ही है । इस तरह से सूर्य के पुजारियों का समाधान

हो जाता है । अग्नि, विनायक गणपति आदि अनेक नाम इसमें आ जाते हैं । इस प्रकार अनेक पंथों का समन्वय इससे हो सकता है ।

आज भारत का संबन्ध सिर्फ जैन, बौद्ध आदि से ही नहीं : पारसी, यहूदी, ईसाई, मुसलमान इत्यादि से भी है । प्रश्न उठता है कि उनका सम्बन्ध विष्णुसहस्रनाम में बताना क्या शक्य होगा ? विष्णुसहस्रनाम दुनिया भर के विचारों का समन्वय करता है, शब्दशः नहीं अर्थतः । कोई यह अपेक्षा करता हो कि विष्णुसहस्रनाम में अंग्रेजी फारसी या अरबी के शब्द हों, तो वह अपेक्षा ठीक नहीं होगी । विष्णुसहस्रनाम प्राचीन ग्रन्थ है, एक द्रष्टा-ग्रन्थ है, अर्थतः सब पंथों का सम्प्रदायों का सार उसमें है।

इस्लाम पन्थ के नाम

इस्लाम क्या कहता है ? 'अल्लाहुनुरुस्समावाति बल अरद' अर्थात् अल्लाह प्रकाश है आसमान का । विष्णुसहस्रनाम में 'प्रकाशात्मा प्रतापनः' (प्रकाश देनेवाला, तपाने वाला) कहा है । 'अल्लाहुनुरुस्समावाति' से वे जो कहना चाहते हैं, वही 'प्रकाशात्मा प्रतापनः' में मिलेगा ।

'अल्मलिकु'—अर्थात् भगवान् मालिक है । विष्णुसहस्रनाम में है 'लोकस्वामी त्रिलोकधृक्' तीन लोकों को धारण करने वाला, तीनों लोकों का स्वामी । 'अल्मलिकु' का ही यह अर्थ है । अर्थतः दोनों शब्द एक ही हैं । अब कोई यह अपेक्षा करे कि अल्मलिक शब्द ही विष्णुसहस्रनाम में आना चाहिए, तो उसे महामूर्ख का खिताब देना होगा ।

कुरान में और एक नाम है, 'कुद्दुसु' यानी शुभ, पवित्र और 'सलाम' यानी शांति । विष्णुसहस्रनाम में है, 'शुभांगः शांतिदः ।' इसमें कुद्दुसु भी आ गया और सलाम भी आ गया । इस्लाम का एक अत्यन्त प्रसिद्ध नाम 'गफ्फार' है । 'गफ्फार' यानी 'क्षमिणांवरः' यानी अत्यंत क्षमा करने वाला । मामूली क्षमा नहीं, अत्यंत क्षमा । 'गफ्फार' का संस्कृत तर्जुमा करना ही हो तो 'क्षमिणांवरः' ही होगा । यह विष्णुसहस्रनाम का शब्द है । इस्लाम में भगवान् के ६६ नाम माने गये हैं । अर्थतः विचार किया जाये, तो उनमें से बहुत सारे नाम विष्णुसहस्रनाम में मिल जायेंगे ।

ईसाई पन्थ के नाम

अब क्रिश्चियनिटी को लीजिये । इस में 'ट्रिनिटी' (त्रि-तत्व) की कल्पना है । वह विष्णुसहस्रनाम में भी है । ईसाई मानते हैं कि विश्व में 'ट्रिनिटी' है—ईसामसीह, 'पवित्र आत्मा' और 'परमात्मा' । वही विष्णुसहस्र नाम में है, 'पूतात्मा परमात्मा च मुक्तानांपरमागतिः' । ईसाइयों की ट्रिनिटी इसमें आ जाती है ।

यहूदीपंथ के नाम

यहूदियों का शब्द है 'यवृह' यानी अत्यंत बलशाली, समर्थ । 'महाबुद्धिः महावीर्यः महाशक्ति महाद्युतिः' इन सब में यवृह का अर्थ आ जाता है । यवृह और शक्ति एक ही है ।

पारसी पंथ के नाम

पारसियों का शब्द है 'मज्द' । 'मज्द' जो होता है, वह महान् होता है । महत् का मज्द बना । यह फारसी रूप है । वेद में 'महत्' शब्द आया है—'महत् देवानां असुरत्वमेकम्' सब देवों में एक परमेश्वर महान् है । असुर यानी राक्षस नहीं, असुर यानी परमेश्वर ।

पारसियों के नाम हैं, 'अहुरा मज्दा' महान् परमेश्वर । विष्णुसहस्रनाम में है, 'गुणभृन् निर्गुणो महान्' सब गुणों को धारण करनेवाला, उन गुणों से परे, महान् । यह वर्णन किसी भी पारसी और यहूदी को सुनाया जाये, तो वे उसे सहज स्वीकार करेंगे ।

संस्कृत भाषा की सामर्थ्य

ये मिसालें इसलिए दी कि विष्णुसहस्रनाम में सब सम्प्रदायों, पंथों का समन्वय करने की पूर्ण सामर्थ्य है । तरह-तरह के अर्थ इसमें से निकल सकते हैं ।

संस्कृत में यह सामर्थ्य है । संस्कृत भाषा, शब्दों से जितना रस खींचा जा सकता है, उतना खींच लेती है । जिस कृष्ण मन्त्र का हम जप करते हैं, उसमें कृष् (खींचना) धातु है । इसी प्रकार राम नाम का हम जप करते हैं । वह राम नाम यानी सबके हृदय में रमने वाला, सत्यस्वरूप, अधिष्ठानरूप परमात्मा । हरि यानी दुःखों का हरण करनेवाला, कल्याणमय । प्रेममय कृष्ण, सत्यमय राम, करुणामय हरि । इस प्रकार गुणों के आधार पर अर्थ करेंगे, तो ठीक अर्थ हुआ, ऐसा कहा जायेगा ।

भगवान् भाव रूप है

भगवान् के गुण कितने हैं ? लाख भी हैं, कोटि भी हैं, अनंत भी हैं । तुलसीदास लिखते हैं, राम कैसा है ? 'राम अनंत अनंत गुण अमित कथा विस्तार' । रामदास स्वामी ने लिखा है—चौबीसनामी । सहस्रनामी । अनंतनामी । अनामी । ब्राह्मण संध्या करते हैं, उसमें भगवान् के चौबीस नाम आते हैं । विष्णुसहस्रनाम में हजार नाम हैं । लेकिन उस परम पिता परमेश्वर के नाम विष्णुसहस्रनाम में ही सीमित हैं, ऐसा तो है नहीं, इसलिए अनंतनामी कहा । आखिर में कहा अनामी । उसको कोई भी नाम लागू ही नहीं होता । वह कैसा है ? वह सब नामों से परे हैं । शब्द के उस पार हैं ।

महाराज ज्ञानदेव ने लिखा है—

स्तुति ते तुझी निंदा, स्तुति जोगा नव्हेसि गोविंदा

अर्थात् हम तेरी स्तुति करते हैं, पर वास्तव में वह तेरी निंदा होती है । क्योंकि हम अपने शब्दों में तुम्हारा वर्णन करते हैं, तुम्हें शब्दों में बांधना चाहते हैं, और तुम शब्दों से परे हो । परन्तु हमारा जो कुछ उच्चारण है, उसे भगवान् सहन कर लेते हैं । शब्द में तो वे आ नहीं सकते, परन्तु हम लाते हैं । शब्द में आना यानी नीचे उतरना । फिर भी वे सहन करते हैं । भगवान् तो उसे सहन कर लेते हैं परन्तु हम तो शब्दों पर ही लड़ते रहते हैं । शब्दों पर लड़ना तो भगवान् के अस्तित्व को ही चुनौती है । शब्दों पर लड़ना नास्तिकता है । विष्णुसहस्रनाम ने शब्द भेद को मिटाकर भाव की, ध्यान की प्रधानता को महत्त्व दिया है । नाम के पीछे जो भाव है, ध्यान है । उसकी प्रधानता बताने के लिए गुरुनानक कहते हैं—

जिनी नामु धिआइआ गए मसकति घालि
नानक ते मुख उजले केती छूटी नालि ।।

जिन्होंने भगवान् के नाम का ध्यान किया, वे अपनी साधना पूर्ण कर गये । नानक कहते हैं कि उनके मुख उज्ज्वल हुए और उनकी संगति में कितनी ही जनता मुक्त हुई । □

धर्म जिज्ञासा

श्री स्वामी ज्ञानानन्द जी महाराज

मनुष्य इस धरती पर जब आंखें खोलता है, तभी से उसके मन में तरह-तरह के विचार उठने लगते हैं । जैसे-जैसे वह बड़ा होता है, उसका विचार गम्भीर होने लगता है । कुछ सहज सवाल हर साधारण मनुष्य के चित्त में उठते हैं । मैं कौन हूँ ? कैसे पैदा हुआ ? इस जन्म से पहले कहाँ था ? ईश्वर कौन है ? ईश्वर ने मुझे क्यों पैदा किया ? मेरे जीवन का लक्ष्य क्या है ? सत्य क्या है ? असत्य क्या है ? प्रेम क्या है ? कर्त्तव्य क्या है ? ऐसे एक नहीं, अनेक सवाल हमारे मन में उठते हैं । यह हमारे मन की भूख है । लोक, परलोक, ईश्वर, जन्म-मृत्यु, सत्य-असत्य, इसके अलावा व्यक्ति के कर्त्तव्य । समाज में व्यक्ति का आचार व्यवहार कैसा हो आदि-आदि ।

देश काल, पात्र के सन्दर्भ में इन प्रश्नों का समाधान-कारक उत्तर समय-समय पर विभिन्न भाषाओं में महापुरुष देते आये हैं, जिसको धर्म के नाम से जाना जाता है । यही धर्म मनुष्य समाज को निर्देश करता है कि वह एक दूसरे के साथ, प्रकृति तथा अदृश्य शक्तियों के साथ कैसे व्यवहार करे ? क्या सम्बन्ध रखे ? धर्माचरण कैसा हो ?

मनीषियों ने धर्म के दो विभाग किये हैं—

१. यम, अर्थात् मूलभूत शाश्वततत्त्व अर्थात् धर्मविचार ।

२. नियम, अर्थात् देश, काल, पात्र के अनुसार शाश्वततत्त्वों को आचरण में लाने वाली आचारसंहिता ।

यम, भीतरी चीज है, और नियम बाहरी आचरण है । इस प्रकार विचार और आचार दोनों को लेकर धर्म बनता है ।

विचार भीतरी चीज है—आचार बाहरी चीज है ।

विचार सूक्ष्म होता है । आचार स्थूल होता है ।

आचार में धर्म के नाम पर की जाने वाली तरह-तरह की क्रियाएँ होती हैं जैसे—पूजा, उपासना, आराधना की अनेक पद्धतियाँ—जप, तप, तीर्थ-व्रत, तिथि-त्योहार, रीति-रिवाज, खान-पान, विवाह-शादी तथा गर्भाधान से मृत्यु तक की विभिन्न अवस्थाओ के कायदे कानून ।

विचार में धर्म की मूल आधार-शिला धर्म की बुनियादी बातें, चित्त-शुद्धि तथा जीवन का दिशा संकेत होता है ।

आचार के द्वारा बाहरी पवित्रता तथा उसके नियम अर्थात् कर्मकांड पर जोर दिया जाता है, जबकि विचार के द्वारा धर्म के मूल तत्त्व पर जोर दिया जाता है ।

अलगाव धर्म नहीं है

कर्मकाण्ड तथा विचार दोनों का उद्देश्य चित्त शुद्धि ही होता है, क्योंकि चित्त की शुद्धि से ही मनुष्य जीवन सफल और सुखी होता है । यह जो भीतरी चीज है, झगड़े उसके कारण नहीं होते । झगड़े तो बाहरी रूप को लेकर होते हैं । क्योंकि भीतरी रूप तो सबका एक ही है ।

अलग-अलग सम्प्रदाय धर्म के बाहरी रूप को लेकर बनते हैं ।

धर्म के नाम पर कर्मकाण्ड के अलग-अलग नियम होते हैं ।

धर्म के नाम पर अलग-अलग प्रतीक होते हैं ।

यह अलगाव क्यों है ? इसको समझने के लिये छः अन्धे और एक हाथी की कहानी से मदद मिल सकती है ।

एक था हाथी । छः अन्धे उसे देखने आये । सबने अपने-अपने हाथ से टटोल कर उसे देखा । एक अन्धे का हाथ उसकी सूँड़ पर लगा—उसने कहा—हाथी लाठी की तरह है । दूसरे का हाथ उसके दांत पर लगा—उसने कहा—हाथी मूली की तरह है । तीसरे का हाथ उसके पैर पर लगा—उसने कहा—हाथी खम्भे की तरह है । चौथे का हाथ उसके कान पर लगा—उसने कहा हाथी सूप की तरह है । पांचवें का हाथ उसके पेट पर लगा—उसने कहा—हाथी नगाड़े जैसा है । छठे का हाथ उसकी पूंछ पर लगा—उसने कहा—हाथी झाडू की तरह है । इस प्रकार जिसने जो अनुभव किया, वैसा ही कहना शुरू कर दिया, और आपस में झगड़ने लगे । उनको झगड़ते देख कर एक आँखों वाला उधर से आया । उसने कहा—तुम लोग बेकार झगड़ते हो । वास्तव में तो जो तुमने महसूस किया है, वे सब एक ही हाथी के विभिन्न अंग हैं ।

यही हाल धर्म का है । एक कहता है—राम जपेगा तभी तरेगा । दूसरा कहता है—अल्लाह और पैगम्बर पर ईमान लायेगा तभी तरेगा । तीसरा कहता है—प्रभु ईशू की शरण लिए बिना उद्धार नहीं होगा । चौथा कहता है—'बुद्धं शरणं गच्छामि' ही ठीक है । पांचवां कहता है—मूर्ति-पूजा और मन्दिर में श्रद्धा रखने से ही भवसागर पार होगा । छठा कहता है—अहुरमज्द पर ही विश्वास रख । सातवां कहता है—एंक ओंकार ही सब कुछ है आदि-आदि ।

इस पर से सवाल उठता है कि फिर धर्म है क्या चीज ?

इस प्रश्न का उत्तर सब अपनी-अपनी तरह से देते हैं । पुजारी, महन्त, पादरी और मुल्ला धर्म की व्याख्या अपनी-अपनी तरह से करते हैं । धर्मोपदेशक, दार्शनिक, गुरु और अध्यापक धर्म की व्याख्या दूसरी तरह से करते हैं । विचारक, वैज्ञानिक, समाज शास्त्री और राजनेता धर्म की व्याख्या अलग-अलग तरह से करते हैं । कहने का तात्पर्य यह है कि

जिसने सत्य को जिस रूप में देखा, वह उसकी व्याख्या उसी के अनुसार करता है । अतः धर्म को समझने के लिए कहना होगा—'एकं सद् विप्राः बहुधा वदन्ति'—एक ही सत्य को विद्वानों ने अनेक तरह से कहा है ।

धर्म की व्यापकता

धर्म शब्द बहुत व्यापक है । उसको परिभाषित करने वाला दूसरी भाषा में ठीक-ठीक शब्द मिलना कठिन है । अंग्रेजी में धर्म को 'रिलीजन' कहते हैं । रिलीजन लैटिन भाषा का शब्द है । उसका अर्थ होता है—फिर से बांधना या सम्बन्ध जोड़ना । प्रभु ईशुमसीह ने सबको जोड़ने का, फिर से बांधने का काम किया ।

हज़रत मुहम्मद ने इस्लाम कहा—यह शब्द अरबी के सल्म शब्द से बना है, उसका अर्थ होता है—शान्ति ।

वेद में धर्म शब्द का अर्थ सबको धारण करने वाला बताया है ।

वैशेषिक दर्शन में कहा—यतो अभ्युदय निश्रेयस्सिद्धिः स धर्मः ।

अर्थात्—जिससे कल्याणकारक अभ्युदय सिद्ध होता है, वह धर्म है । अभ्युदय या विकास हानिकारक भी हो सकता है । अतः कहा गया है कि वही विकास धर्म है जो मानव समाज, प्रकृति और व्यक्ति के लिए कल्याणकारक सिद्ध हो । जो विकास मानव समाज, प्रकृति और व्यक्ति के बीच असन्तुलन पैदा करे, हानिकारक हो, वह विकास अधर्म है । यह समझने की जरूरत है कि हानिकारक और कल्याणकारक विकास की क्या पहचान है ? इस पहचान के लिए धर्म के दस लक्षण गिनाये गये हैं—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः,
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम् ।।

धैर्य, क्षमा, दमन, चोरी न करना, भीतरी बाहरी सफाई, इन्द्रियों का निग्रह, बुद्धि, विद्या, सत्य और क्रोध न करना । सभी पंथ सम्प्रदायों को अभिप्रेत धर्म का अर्थ करीब-करीब इन दस लक्षणों में आ जाता है । कहा गया है—

परहित सरिस धर्म नहिं भाई, परपीड़ा सम नहिं अधमाई, ।
धरम न दूसर सत्य समाना, आगम निगम पुरान बखाना ।।

कहने का तात्पर्य यह है कि धर्म बहुत व्यापक शब्द है । उसके भीतर वे सब गुण आ जाते हैं, जो हर मनुष्य में होने चाहिए । इसलिए धर्म का अर्थ है—हर प्राणी से प्रेम करना—ऐसा आचरण करना जिससे अपना भी कल्याण हो और दूसरों का भी कल्याण हो ।

धर्म का अर्थ है—जीवन में ईमानदारी बरतना, चोरी न करना, किसी को सताना नहीं, किसी को धोखा नहीं देना ।

धर्म का अर्थ है—संयम से अपने पर काबू रखना, दूसरों को क्षमा करना, सब पर दया करना, खुद कष्ट उठाकर भी दूसरों को सुख पहुँचाना ।

पंथों की न्यारी-न्यारी शोभा

धर्म का आचरण करने के लिए देश, काल, पात्र के अनुसार बहुत से सम्प्रदाय हैं, पंथ हैं। सबकी न्यारी-न्यारी शोभा है। सबके न्यारे-न्यारे रास्ते हैं। यह निरालापन बहुत बढ़िया है। जरूरत इस बात की है कि इस निरालेपन का हम आनन्द लें तो इस मस्ती में डूबकर हमारा रोम-रोम पुकारने लगेगा—

जिधर देखता हूँ उधर तू ही तू है,
कि हर शय में जलवा तेरा हूबहू है।

ईश्वर का जलवा देखने के लिए उसकी बनाई सृष्टि से, जड़-चेतन से प्रेम करना होगा। यही है धर्म का असली रूप।

जो व्यक्ति परायी-पीर, दूसरे का दुःख-दर्द समझता है, वही धर्मात्मा है। दूसरे का दुःख-दर्द समझने का अर्थ है—अन्याय और दुःख देने वाली धर्म-विरोधी परिस्थिति का डटकर मुकाबला करना। सम्प्रदाय और पंथों के नाम पर अगर हम अलग-अलग हो जायेंगे तो धर्म-विरोधी परिस्थिति का मुकाबला नहीं कर सकेंगे। धर्म-विरोधी परिस्थिति अर्थात् राज्यतन्त्र हमारे सम्प्रदायों और पन्थों को अलग-अलग करने के षड्यन्त्र रचता रहता है। भारत के राज्य-तन्त्र ने धर्म-निरपेक्षता के नाम पर सम्प्रदायवाद को तो बढ़ाया ही है, साथ ही राज्य व्यवस्था को पूरी तरह धर्मविरोधी, नीतिविहीन बना दिया है। इस नीति-विहीन राज्य-तन्त्र को समाप्त करने के लिये धर्म-चेतना आवश्यक है। धर्म-चेतना का अर्थ यह नहीं है कि हम सम्प्रदाय और पंथों के नाम पर प्रचलित ऊपरी आचार पर ही जोर देते रहें। हमें तो धर्म के भीतरी तत्त्व को समझना होगा। कहना होगा—

'यमानि सेवे नित्यम्-न नित्यम् नियमानि बुधाः ।'

अर्थात् धर्म के मूलभूत तत्त्व का आग्रह पूर्वक आचरण करेंगे, मगर धर्म के नाम पर प्रचलित कर्मकाण्डों के सम्बन्ध में हम पूरी तरह से बुद्धिपूर्वक उदारता बरतेंगे।

सब मतों और पंथों की साधना करके रामकृष्ण परमहंस इसी नतीजे पर पहुँचे कि सारे मज़हब एक हैं। सारे पन्थ एक हैं। सारे रास्ते ईश्वर की ओर, धर्म की ओर ले जाने के लिए ही बनाये गये हैं।

पूजा-पाठ, जप-तप, व्रत-अनुष्ठान, रोजा-नमाज, तस्वीह-माला, ज्ञान व ध्यान आदि मनुष्य को एक ही ठिकाने पर अर्थात् धर्म के लक्ष्य पर पहुँचने के रास्ते हैं।

ये जो अलग-अलग रास्ते हैं वे उसी प्रकार हैं जैसे—

एक ही पेड़ की बहुत सारी शाखाएँ
एक ही फूल की बहुत सारी पंखुड़ियाँ
एक ही गुलदस्ते में अनेक तरह के फूल
किसी का रंग कैसा, किसी का रंग कैसा

यही रंग-बिरंगापन मनुष्य के जीवन की निशानी तथा धर्म की शोभा है।

कोई राम कहता है तो कोई ओऽकार की रट लगाता है। खुदा, ईशु सत्श्री अकाल,

अल्लाह, उसी के अलग-अलग नाम हैं । कोई भी नाम लो । अहुरमज्द, जय जिनेन्द्र और बुद्ध, यहोवा आदि कहना भी एक ही लक्ष्य की सिद्धि का मार्ग है ।

इसी प्रकार—

किसी को भक्ति रुचती है, किसी को ज्ञान, किसी को कर्म में, किसी को साधना में आनन्द आता है तो किसी को प्रार्थना में ।

कोई भगवान् के किसी गुण का चिन्तन करता है कोई किसी दूसरे गुण का ।

परन्तु—

सबकी इच्छा धर्म पर आचरण करके एक ही शक्ति को प्राप्त करने की होती है ।

ऊपर से अलग-अलग होने पर भी तत्त्व एक ही है ।

सभी पन्थों और सम्प्रदायों में प्रेम की शिक्षा दी गई है ।

सभी पंथ और सम्प्रदाय सत्य और ईमानदारी पर जोर देते हैं ।

सभी सम्प्रदायों में करुणा और रहम का उपदेश दिया गया है ।

सभी पंथ, सम्प्रदाय क्षमा और सन्तोष पर बल देते हैं ।

साधु, सन्त, पैगम्बर, ऋषि, औलिया, मुनि, ज्ञानी और भक्त सभी युग-युग से धर्म-चेतना का सन्देश देते आये हैं । जो सन्देश अब तक आ चुका है, उससे आगे और सन्देश आते रहेंगे तथा धर्म-पुरुषों का अवतरण होता रहेगा । इसी सन्दर्भ में भीष्मपितामह ने शरशैय्या पर लेटे हुए जो धर्मोपदेश किया, उसमें कहा है—

श्रुत धर्म इति ह्येकेनेत्याहुर परे जनाः ।
न च तत्प्रत्यसूयामो न हि सर्वे विधीयते ।।

श्रुत अर्थात् वेदों में जिस धर्म का प्रतिपादन किया गया है, वही धर्म है, ऐसा कुछ लोग कहते हैं । लेकिन वेदों में सभी बातों का विधान नहीं है, अतः वेदों के बाद भी ज्ञान की खोज होती रहेगी और संसार के ज्ञान में वृद्धि भी होगी ।

धर्म की सच्ची शक्ति

महाभारत के शान्ति पर्व में भीष्म पितामह ने धर्म के सम्बन्ध में कुछ मूलभूत तत्त्वों का उल्लेख किया है—

प्रभवार्थाय भूतानां धर्मं प्रवचनं कृतम् ।
यः स्यात् प्रभवसंयुक्तः स धर्म इति निश्चयः ।।

प्राणियों के कल्याणमय विकास के लिए धर्म वचन कहे जाते हैं । अतः जिससे प्राणियों का कल्याणमय विकास हो, वही धर्म है ।

धारणाद् धर्ममित्याहुर्धर्मेण विधृताः प्रजाः ।
यः स्याद् धारणसंयुक्तः स धर्म इति निश्चयः ।

सारे संसार अर्थात् प्रजा को धर्म ने धारण कर रक्खा है । अतः जिससे प्रजा का धारण और पोषण होता है, निश्चय ही वह धर्म है ।

धर्म के विषय में कहा गया है कि वही धर्म है, जो प्राणिमात्र के कल्याणमय उत्थान तथा पोषण के लिए हो, लेकिन यह सब मनुष्य के संकल्प पर ही निर्भर है ।

धर्ममूलः सदैवार्थः कामोऽर्थफलमुच्यते,
संकल्पमूलास्ते सर्वे संकल्पो विषयात्मकः ।
अपध्यानमलो धर्मो मलोऽर्थस्य निगूहनम्,
सम्प्रमोदमलः कामो भूयः स्वगुणवर्जितः ।।

सब कुछ संकल्प पर ही आधारित है । अब यदि संकल्प विषय प्रधान अर्थात् भोग विलास मूलक हो गया तो धर्म का उपयोग केवल अर्थ प्राप्ति के लिए होगा तथा अर्थ से काम की, भोग विलास की प्राप्ति होगी । इस प्रकार जब धर्म का उपयोग धन प्राप्ति के लिये होगा तो वह धर्म नहीं रहेगा क्योंकि धर्म से धन की प्राप्ति तो धर्म का मल है, विष्ठा है । इसी प्रकार भोग-विलास की इच्छा पूर्ति के लिए होगा, तो वह धर्म नहीं रहेगा । भोग-विलास का जीवन भी काम शक्ति का मल है ।

कहने का तात्पर्य यह है कि धर्म, अर्थ, काम—ये तीन शक्तियाँ हैं । इन तीनों शक्तियों का उपयोग करनेवाली संकल्प शक्ति यदि कल्याण कारक अभ्युत्थान की है तो उसका परिणाम सच्चे धर्म की स्थापना में होगा । सच्चे धर्म की शक्ति से जो धन की प्राप्ति होगी, वह समाज का अभाव दूर करेगा । साथ ही जो धन अभाव दूर करने में लगेगा, उससे जो काम की शक्ति प्राप्त होगी, वह समाज में से अन्याय के निराकरण के लिए पुरुषार्थ करेगी । इस प्रकार धर्म, अर्थ, काम का यह त्रिवर्ग कल्याणकारक भी हो सकता है और सर्वनाश का कारण भी हो सकता है ।

वर्तमान काल में धर्म की शक्ति का, धन प्राप्ति के लिए, अर्थ की शक्ति का, धन संग्रह के लिए और काम की शक्ति का, भोग-विलास के लिए ही प्रयोग किया जा रहा है । परिणाम स्वरूप सारे संसार में अधर्म फैल रहा है और संसार सर्वनाश की ओर अग्रसर हो रहा है । क्लेश, दुःख, अज्ञान, अभाव और अन्याय सर्वत्र फैल रहा है । क्योंकि जब धर्म की शक्ति का उपयोग धन प्राप्ति के लिए किया जायेगा तो अज्ञान फैलाकर ही वह सम्भव है । अर्थ की शक्ति का उपयोग धन संग्रह में होगा तो समाज में स्वाभाविक रूप से अभाव फैलेगा ही । संग्रहीत धन काम शक्ति के साथ मिलकर जब वैभवपूर्ण भोग विलासी जीवन की ओर अग्रसर होगा तो उसका स्वाभाविक परिणाम अन्याय आयेगा ही । अतः अज्ञान, अभाव और अन्याय का उन्मूलन करने के लिए धर्म की सच्ची शक्ति को उजागर करना जरूरी है ।

यह शक्ति धर्म-जिज्ञासा का सही समाधान होने से ही प्राप्त हो सकेगी । ☐

रास्ते अनेक मंजिल एक

श्री स्वामी विवेकानन्द जी महाराज

सब रास्ते एक ही मंजिल को पहुँचाते हैं, यह हिन्दू सिद्धान्त अगर सत्य है, तो फिर दूसरे लोगों को उसका भान है या नहीं, इसका कोई महत्त्व नहीं है । इस मान्यता वालों को इतना विशाल हृदय वाला बनना होगा कि विज्ञान की चुनौतियों का समाधान आध्यात्मिक आधार पर किया जा सके । अगर इसमें दृढ़ श्रद्धा है, तो औरों की धर्मान्धता को समत्व बुद्धि से देखना मुश्किल नहीं होना चाहिए । अज्ञानता के कारण जब श्रद्धा और भक्ति संवेदना रहित हो जाती है तो वह धर्मान्धता कहलाती है । वह आपस में भेद पैदा करती है । लेकिन अज्ञानता के हटते ही श्रद्धा-भक्ति संवेदनशील होकर एक आध्यात्मिकशक्ति बन जाती है । जो अपना असर फैलाती रहेगी ।

ऐतिहासिक कारण

हम भारतवासियों का यह विशेष सौभाग्य है कि हमारे पुरखों ने इस सत्य को देखा । दूसरे देशों के धर्म-पुरुष इस सत्य को नहीं देख पाये । यदि देख पाये भी हों तो उनके अनुयायियों ने इसकी उपेक्षा की है । इस फर्क के लिए कोई ऐतिहासिक कारण होना चाहिए । भारत के लोगों ने दीर्घकाल तक धर्म की साधना की है, इसलिए वे साफ़-साफ इस सत्य को देख पाये, जब कि औरों को इस तरह से अनुभव का लाभ नहीं मिला । यह विश्लेषण किसी को गलत लग सकता है, लेकिन परिणामों से यही साबित होता है कि भारतीय मनीषियों ने जो साफ और पुरजोर शब्दों में कहा कि सब रास्ते एक ही मंजिल को पहुंचाते हैं, वह विविधता हमारे लिए एक विशेष सौभाग्य की बात है । भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—"किसी भी मार्ग का कोई अनुसरण करें, किसी भी रूप में मुझे भजें, आखिर सब मेरे पास ही पहुँचेंगे" ।

ये यथा मां प्रपद्यन्ते, तान्स्तथैवभजाम्यहम्

कृष्ण ने 'मेरे पास ' क्यों कहा ? क्या 'ईश्वर के पास', ऐसा वे नहीं कह सकते थे ? वे उन लोगों को संबोधित करके बोल रहे थे, जो उनमें विश्वास करते थे । निष्ठा से विश्वास करते थे । अकेले उनमें ही विश्वास करते थे । इसलिए भगवान् उनके मन में बैठा देना चाहते थे कि जिस ध्येय की वे आराधना करते हैं, दूसरे लोग भी उसी ध्येय को पहुँचनेवाले हैं ।

"किसी भी आकार में और किसी भी विधि से लोग मुझे भजें, वे सब मेरे पास ही आ पहुँचेंगे", ऐसा कृष्ण ने कहा । यह बात केवल गीता में ही नहीं आयी है, बल्कि हमारे ऋषियों ने विविध प्रकार से इसी बात को दोहराया है । ईसाइयत और इस्लाम के धर्मगुरुओं ने अपने लोगों को इस तरह नहीं समझाया है । उनके ग्रन्थों में सहिष्णुता, विवेक, उदारता आदि के बारे में भी कहा गया है, फिर भी वे उपासना पद्धति के बारे में अपेक्षित उदार भाव नहीं दिखाते । वैदिकों की यह विशिष्ट विचारसरणी रही है कि किसी को भी धर्मान्तरण करने के लिए बाध्य करने की जरूरत नहीं है । लोग भले ही अपनी-अपनी मान्यताओं और विधियों के अनुसार उपासना करते रहें ।

प्रतीकों का महत्त्व

वैदिकों ने निराकार ब्रह्म की उपासना के साथ-साथ प्रार्थना में मूर्तिपूजा को भी बहुत बड़ा स्थान दिया है । इसे भी समझना जरूरी है, क्योंकि—प्रतिमाओं का और शब्दों का प्रतीकात्मक महत्त्व होता है, क्योंकि शब्दों को सुनने और प्रतिमाओं को देखने से जो छाप पड़ती है, उसे हम नज़रअंदाज नहीं कर सकते । विलियम वर्ड्स्वर्थ का एक वचन समझने लायक है । उन्होंने कहा है कि धार्मिक दर्शनों के विषय गूढ़ और अनंत होते हैं और साधारण बुद्धि के लिए जरा भारी होते हैं । शब्दों और प्रतीकों पर कुछ भार डाल कर उनके सहारे साधारण बुद्धि इन चीजों को ग्रहण कर सकती है । स्थूल को सूक्ष्म का प्रतिनिधि बना कर ही साधारण बुद्धि वाले स्रष्टा के साथ अपना सम्बन्ध स्थापित करने में सरलता का अनुभव करते हैं । इसी भावना से प्रतिमाओं का निर्माण होता है ।

हर बात शब्दों में व्यक्त नहीं हो सकती, इसीलिए प्रतीकों का महत्त्व होता है । अगर आप प्रतिमाओं और प्रतीकों को निकाल डालते हैं, तो बाकी कुछ रहता ही नहीं । लेकिन जब प्रतिमाओं के नाम पर जन साधारण की भावनाओं का शोषण होने लगता है तो निहित स्वार्थी सम्प्रदाय मनमानी करने में काफ़ी सफ़ल हो जाते हैं । इसलिए हमको और ढंग से सोचना चाहिए । हर गुरुपन्थ को अपने तत्त्व , उपासना-क्रम और परंपराओं के अनुसार ही चलना चाहिए । इसके मानी यह नहीं हैं कि किसी परिवर्तन या सुधार का हम विरोध करें । लेकिन यह परिवर्तन या सुधार अंदर से और स्वयंप्रेरित होना चाहिए, न कि संस्था प्रेरित । जब स्वयं-प्रेरित कहा जाता है, तब इसका मतलब यह होता है कि नैसर्गिक कानूनों के अनुसार, न कि किसी संस्था के नियमों के अनुसार या किसी आंदोलन के दबाव के कारण । प्रसंग पड़ने पर औरों की पद्धतियों का भी समान आदर करना चाहिए । ज़िस उपासना-पद्धति में या विधि-विधान में आदमी पला हो, उसके प्रति आकर्षण कम किये बिना दूसरे गुरुपन्थों का आदर करना लोगों को सीखना चाहिए ।

अपेक्षित सजगता

यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि प्रतीकों या उपासना पद्धतियों के नाम पर संगठन खड़े करने से आपसी विभेद पैदा तब होता है, जब इनके नाम पर राजनीतिक सौदे बाजी होने लगती है । इसलिए किसी कल्पना को संस्था का रूप देना, उसको नष्ट कर देना है । संस्था की पकड़ से मुक्त रह कर ही किसी कल्पना या, विचार का विकास हो सकता है, वह फैल सकता है । यह बात भी सही है कि हम शरीर को बिलकुल फेंक नहीं दे सकते, किसी भी कल्पना को कार्यान्वित करने के लिए कुछ आदमियों की जरूरत रहेगी, कुछ भाषा और कुछ संगठन का उपयोग होगा । लेकिन हम सावधान रहें कि कहीं कल्पना संस्था का रूप न ले बैठे और वह व्यक्ति पर हावी न हो जावे ।

दुर्भाग्य से आज जो थोड़ी बहुत मात्रा में सहिष्णुता दिखायी दे रही है, वह अपनी आस्थाओं के प्रति बढ़ती उदासीनता और निष्ठा शून्यता का परिणाम है । ऐसी सहिष्णुता में से कोई शक्ति प्रकट नहीं होती । हमको धर्मनिष्ठा में नवजीवन डालना है और आदर की भावना का भी विकास करना है । आज के जमाने में अपने माने हुए धर्म में सच्ची श्रद्धा रखने वाला व्यक्ति मिलना कठिन बात है । एकांतिक धार्मिक 'मान्यताओं से भी हमें निराश नहीं होना चाहिए । किसी भी परिस्थिति में हमें उदासीनता को प्रोत्साहन नहीं देना है । क्योंकि रास्ते अनेक हैं, मंजिल एक—एकं सद् विप्राः बहुधा वदन्ति । ☐

धर्म-मार्ग की बाधाएँ और उनका निराकरण

हमारे जीवन में धर्म का क्या स्थान है, हमें कैसा धर्म चाहिए और सदाचार तथा नैतिकता क्यों आवश्यक है, जैसे बुनियादी प्रश्नों पर विख्यात मनीषी लियो टॉल्स्टाय के विचार । —संपादक

मनुष्य जाति को अस्तित्त्व में आये असंख्य वर्ष हो गये हैं । इन असंख्य वर्षों के अन्दर इसने पीढ़ी-दर-पीढ़ी जिस प्रकार अनेक व्यावहारिक आविष्कार किये और उनका विकास किया, उसी प्रकार आध्यात्मिक सिद्धान्तों से उत्पन्न होनेवाले व्यवहार-नियमों का आविष्कार और विकास भी मनुष्य-जाति ने किया है । अगर अंधे लोग इन बातों को नहीं देख सकते तो यह साबित नहीं होता कि वे बातें विद्यमान नहीं हैं ।

आचरण करने योग्य धर्म

सब लोगों के समान रूप से आचरण करने योग्य धर्म इस समय मौजूद है । यह कोई ऐसा सम्प्रदाय नहीं है जिसकी अपनी कुछ विशेषताएं और विकृतियाँ हों, बल्कि यह एक ऐसा धर्म है जिसमें ऐसे सिद्धान्तों का समावेश है जो सभी बड़े-बड़े धर्मों में समान रूप से पाये जाते हैं । इन सिद्धान्तों को मनुष्य-जाति के ९० प्रतिशत लोग आज भी अंगीकार किये हुए हैं और मनुष्यों के अबतक पूर्ण रूपेण पाशविक न बन जाने की वजह भी सिर्फ यही है कि तमाम राष्ट्रों के अच्छे-अच्छे लोग अनजान में सही, इस धर्म को मानते और इसका पालन करते रहते हैं । यदि जनता इस धर्म को विवेकपूर्वक अंगीकार नहीं कर रही है तो इसका कारण केवल यह है कि वैज्ञानिकों और पांथिक कर्मकाण्डों की सहायता से उसको मागाजाल में फंसा कर रखा गया है ।

इस सच्चे धर्म के सिद्धान्त मनुष्यों के लिए इतने स्वाभाविक हैं कि ज्योंही वे लोगों के सामने रक्खे जाते हैं, त्योही लोग उन्हें बिल्कुल परिचित और स्वयंसिद्ध सिद्धान्त समझकर स्वीकार कर लेते हैं ।

वे सिद्धान्त इस प्रकार हैं । सब पदार्थों का, चर-अचर सृष्टि का आदिकरण एक सर्वव्यापी परमात्मा है । प्रत्येक मनुष्य के अन्दर उस पूर्ण ब्रह्मज्योति का एक अंश विद्यमान है । भलेबुरे कर्मों द्वारा मनुष्य अपनी इस ईश्वरीय ज्योति के अंश को स्वयं बढ़ा या घटा सकता है । ईश्वरीय ज्योति के इस अंश का विकास करने के लिए मनुष्य को चाहिए कि वह अपनी वासनाओं का दमन करे और अपने अन्दर प्रेमभाव, अहिंसा-वृत्ति की वृद्धि करे । इस उद्देश्य को सिद्ध करने का व्यावहारिक तरीका यह है कि हम दूसरे लोगों के प्रति वैसा ईश्वरीय व्यवहार करें जैसा हम दूसरे लोगों से अपने लिए चाहते हैं । महात्मा बुद्ध के सिद्धान्तों को मानने वाला समाज यद्यपि ईश्वर को नहीं मानता और उसने ईश्वर की कोई व्याख्या नहीं की है, तथापि वह एक ऐसे पदार्थ को अवश्य मानता है, जिसके साथ मनुष्य का तादात्म्य सम्बन्ध

है, और जिसमें निर्वाण प्राप्ति के पश्चात मनुष्य विलीन हो जाता है । अतएव जिसके साथ मनुष्य का तादात्म्य-संबंध है और निर्वाण-प्राप्ति के पश्चात् जिसमें मनुष्य विलीन हो जाता है, वह वस्तुतः वही आदि-कारण है जिसको ईश्वर के नाम से संबोधित किया है ।

धर्म बताता है कि मनुष्य का समस्त पदार्थों के मूल स्रोत परमात्मा से क्या सम्बंध है ? मनुष्य-जीवन का क्या उद्देश्य है ? जो कि उस संबंध के फलस्वरूप पैदा होता है । यह धर्म उस उद्देश्य के अनुसार ही मनुष्य के लिए आचरण संबंधी नियम सुलभ करता है और जो सार्वभौम धर्म होता है और जिसके प्रारम्भिक सिद्धांत दूसरे तमाम धर्मों के सिद्धातों से मेल खाते हैं, उसमें धर्म की उपरोक्त सब बातों का समावेश हो जाता है । ऐसा धर्म मनुष्य और ईश्वर के बीच के पारस्परिक सम्बंध की व्याख्या करता है अर्थात् यह बतलाता है कि मनुष्य संपूर्ण तत्त्व का एक अंश है । इस विधि से वह मनुष्य-जीवन का उद्देश्य निश्चित करता है और यह उद्देश्य सिवाय इसके और कुछ नहीं होता कि मनुष्य अपने अन्दर विद्यमान ईश्वरीय अंश की वृद्धि करे । मनुष्य-जीवन का यह उद्देश्य मनुष्य को आचरण संबंधी कुछ आदेश देता है, जिसका सार यह है कि—दूसरों के साथ वैसा ही बर्ताव करो जैसा अपने प्रति दूसरों से करवाना चाहते हो ।

आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्

लोग बहुधा इस बात में शंका किया करते हैं—और स्वयं मैंने भी एक बार ऐसी शंका की थी—कि क्या इस प्रकार का नियम अर्थात् 'आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्'—मनुष्य-जीवन का उसी प्रकार एक अनिवार्य व्यवहार-नियम बन सकता है जिस प्रकार कि उपवास, प्रार्थना, आदि नियम बने हुए हैं ।

'आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्' इस नियम के फलस्वरूप कुछ आदेश बनते हैं । जैसे दूसरों की हत्या न करो, दूसरों की निन्दा न करो, व्यभिचार न करो। बदला न लो, अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए दूसरों की आवश्यकताओं और कठिनाइयों का अनुचित लाभ न उठाओ आदि-आदि । क्यों न इन आदेशों का ठीक उसी प्रकार जोरों से प्रचार किया जाय और क्यों न उनको वैसा ही अनिवार्य और अनुल्लंघनीय करार दिया जाय जैसा कि धर्मशास्त्रों और मूर्तियों की पवित्रता में विश्वास रखना अनिवार्य और अनुल्लंघनीय माना जाता है ? लोगों का यह विश्वास किसी स्पष्ट आतंरिक अनुभूति पर नहीं बल्कि सहज श्रद्धा पर ही निर्भर होता है ।

हमारे जमाने के तमाम लोगों के लिए समान रूप से उपयुक्त सिद्ध होने वाले इस धर्म की सच्चाइयां इतनी सरल, इतनी बुद्धिगम्य और प्रत्येक मनुष्य के हृदय के इतनी निकट हैं कि मनुष्य-जाति की वर्तमान संपूर्ण जीवन-चर्या को बदलने के लिए माता-पिताओं, शासकों और शिक्षकों को सिर्फ एक ही बात करनी चाहिए । वह यह कि वे बालकों और बालिगों को उन सरल और स्पष्ट सिद्धान्तों (सत्यों) की शिक्षा दें जिनका आध्यात्मिक निचोड़ इस बात में है कि प्रत्येक मनुष्य के अन्दर ईश्वर का अंश विद्यमान है और जिनका व्यावहारिक नियम यह है कि प्रत्येक मनुष्य को अपना आचरण इस वाक्य के अनुरूप रखना चाहिए—आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ।

यदि उपरोक्त सत्य एवं उससे पैदा होनेवाले मनुष्य-जीवन संबंधी स्वाभाविक नियमों की लोगों को उसी प्रकार शिक्षा दी जाय, जिस प्रकार आजकल अलौकिक घटनाओं के अर्थ-शून्य किस्से सुनाये जाते हैं और उन किस्सों के आधार पर निर्मित अर्थहीन विधि-विधानों का पालन करने की शिक्षा दी जाती है, तो मनुष्य जाति के अन्दर प्रचलित वर्तमान उद्देश्यहीन कलह और वैमनस्य निश्चय ही समाप्त हो सकते हैं और हम शीघ्र ही संपूर्ण मानव-समाज को कूटनीति-विशारदों, अन्तर्राष्ट्रीय कानून, शांति-परिषदों, अर्थशास्त्र के पंडितों और विभिन्न श्रेणियों के साम्यवादियों की सहायता के बिना ही एक सार्वभौम धर्म द्वारा परिचलित होता हुआ और शांतिमय, संयुक्त और सुखी जीवन व्यतीत करता हुआ देख सकते हैं ।

राज्य व्यवस्थाओं की दुष्टता

जो बात इतनी स्वाभाविक, आवश्यक और संभव है, उसको भी लोग नहीं कर रहे हैं । इसकी खास वजह हमको तो इसके अतिरिक्त और कोई दिखलाई नहीं पड़ती कि दीर्घकाल तक धर्महीन जीवन व्यतीत करते रहने के कारण लोग हिंसा, संगीनों, गोलियों, जेलखानों और फांसी की तख्तियों के द्वारा अपने अस्तित्त्व को स्थापित करने और कायम रखने के इतने अधिक आदी हो गये हैं कि वे मनुष्य-समाज की आधुनिक अधर्म व्यवस्था को न केवल स्वाभाविक, बल्कि एकमात्र उपयोगी व्यवस्था मानने लगे हैं । जो लोग प्रचलित समाज-व्यवस्था से लाभ उठा रहे हैं, केवल उन्हीं की ऐसी धारणा नहीं है, प्रत्युत जो लोग इस अन्यायपूर्ण व्यवस्था के नीचे कुचले जा रहे हैं, वे भी इस मायाजाल के शिकार होकर इतने अधिक मूढ़ बन गये हैं कि वे हिंसा को ही मानव-समाज में सुव्यवस्था स्थापित करने का एकमात्र साधन मानते हैं । किन्तु यह उस सामाजिक व्यवस्था और हिंसा द्वारा सार्वजनिक हितों की रक्षा करने की योजना का ही फल है कि लोगों को अपने कष्टों के कारणों को समझने में सबसे अधिक कठिनाई होती है । और फलस्वरूप उत्तम समाज-व्यवस्था की स्थापना नहीं हो पाती ।

इसके परिणाम समाज के लिए अत्यन्त भयंकर और घातक सिद्ध हो रहे हैं । यदि बुरा और दुष्ट प्रकृति का डाक्टर किसी बीमार के पेट में हलाहल पहुँचा दे तो बीमारी और ज्यादा बढ़ जायगी और उसका उपचार असंभव हो जायगा । ठीक यही दशा हमारे समाज की हो रही है ।

जनता को गुलामी की बेड़ियों में जकड़ कर रखने वाले सत्ताधारी लोग अपने मन में सोचा करते हैं और कहते रहते हैं कि हमारे मरने के बाद दुनिया डूब जावेगी । सेना, फौज के सिपाहियों, पुलिसवालों की सहायता से संगीनों, गोलियों, कैदखानों और फांसी-घरों का भय दिखाकर गुलाम जनता को बड़ी आसानी से विवश कर सकते हैं कि वह दासता और अज्ञान में जकड़ी रहे और शासकों को शोषण करने से न रोके । शासक यही करते हैं और अपने इस कार्य को समाज में सुव्यवस्था कायम रखने का नाम देते हैं, लेकिन सच पूछा जाय तो उत्तम समाज-व्यवस्था स्थापित करने के मार्ग में इससे बढ़कर बाधक और कुछ नहीं है । इस प्रकार उत्तम समाज-व्यवस्था स्थापित होना तो दूर रहा, उल्टे दुष्टता की ही स्थापना होती है । संसार की सभी राज्य व्यवस्थाओं ने दुष्टता का ही पोषण किया है ।

मनुष्य-जीवन का नियम ही कुछ इस प्रकार का है कि उसको सुधारने का केवल एक ही तरीका है। चाहे समाज के जीवन को सुधारना अभीष्ट हो, चाहे व्यक्ति के जीवन को। पूर्णता प्राप्त करने की दृष्टि से हमारे जीवन का आतंरिक नैतिक विकास होना चाहिए। बाहरी दबाव—अर्थात् हिंसा द्वारा मनुष्यों के जीवन को सुधारने के सारे प्रयत्न बुराई को बढ़ाने के अत्यन्त कारगर तरीके साबित होते हैं। इसलिए इस प्रकार के तरीके मनुष्य-जीवन का सुधार नहीं करते। इसके विपरीत बुराई में उत्तरोत्तर वृद्धि ही करते हैं और मनुष्य को अपने जीवन-सुधार के एकमात्र वास्तविक मार्ग से अधिकाधिक दूर ले जाते हैं। आधुनिक विकास ने मानव समाज के सम्मुख पर्यावरण के जटिल प्रश्न खड़े कर दिये हैं।

इन्द्रजाल का घेरा

व्यवस्था और सदाचार के रक्षकों द्वारा कानून के नाम पर हिंसा और अपराधों की मात्रा ज्यों-ज्यों अधिकाधिक और निर्दयतापूर्वक बढ़ती जायगी और ज्यों-ज्यों धर्म के नाम पर फैले हुए झूठे मायाजाल के द्वारा उसका समर्थन होता रहेगा, त्यों-त्यों लोगों की यह धारणा अधिकाधिक दृढ़ होती जायगी कि दूसरे लोगों की सेवा करना और उनसे प्रेम रखना मनुष्य-जीवन का नियम नहीं है, बल्कि मनुष्य-जीवन का नियम तो यह है कि वे परस्पर एक दूसरे से झगड़ते रहें और एक दूसरे को हड़प कर जायं। ज्यों-ज्यों उनका यह विचार दृढ़ होता जायगा जो लोगों को पशुओं की श्रेणी में गिरा देता है, त्यों-त्यों उनके लिए अपने ऊपर फैले हुए मायाजाल को छिन्न-भिन्न करने और अपने जीवन के आधारस्वरूप हमारे जमाने के सच्चे धर्म को—जो सारी मनुष्य जाति के लिए समान है—स्वीकार करने का काम अधिकाधिक मुश्किल होता जायगा।

इस प्रकार चारों ओर एक भयंकर इन्द्रजाल फैला हुआ है। धर्म के अभाव ने हमारे जीवन को पाशविक बना दिया है, जिसका आधार ही हिंसा है। हिंसा पर आधार रखने वाले पाशविक जीवन ने हमारे लिए इस इन्द्रजाल से मुक्ति पाना और सच्चे धर्म को अंगीकार करना अधिकाधिक असंभव बना दिया है और इसलिए मनुष्य उन कार्यों को नहीं करते जो इस युग में अत्यन्त स्वाभाविक, संभव और आवश्यक हैं—अर्थात् अधर्म के मायाजाल और नकलीपन को नष्ट नहीं करते और न सच्चे धर्म को अंगीकार करके उसका प्रसार ही करते हैं।

दुरभिसन्धि

क्या इस लुभावने इन्द्रजाल में से बच निकलने का कोई रास्ता संभव है ? अगर है, तो वह कौन-सा रास्ता है ?

ऊपर से देखने पर तो ऐसा प्रतीत होता है कि जिन सरकारों ने सार्वज़निक हित की दृष्टि से जन-साधारण के जीवन का प्रथ-प्रदर्शन करना अपना कर्त्तव्य समझ रक्खा है, वही हमको इस इन्द्रजाल से छुड़ा देगी, लोगों को यह बात बिल्कुल स्वाभाविक मालूम होती है। और वे सोचते हैं कि जनता के हित-साधन के लिए सरकारें केवल उन्हीं साधनों का इस्तेमाल करना चाहती हैं, जिनसे जनता को कोई नुकसान न पहुँचे और जिनके द्वारा अधिक-से-अधिक अच्छा परिणाम निकल सके; क्योंकि सरकारें लोगों की हित-रक्षा के नाम पर ही अपने अस्तित्व

का समर्थन करती हैं । किन्तु सरकारों ने कभी भी इसे अपना कर्तव्य नहीं समझा । बल्कि, इसके विपरीत, उन्होंने सर्वत्र और सर्वदा अपने युग में प्रचलित झूठे और सत्त्वहीन मज़हबी औपचारिक व्यवस्थाओं का अत्यन्त आसक्तिपूर्वक रक्षा करने का प्रयत्न किया है । लेकिन जिन लोगों ने जनता को सच्चे धर्म के सिद्धान्तों से अवगत कराने का प्रयत्न किया है, उनका हर प्रकार से दमन किया है । वस्तुतः इसके अतिरिक्त और कुछ हो भी नहीं सकता था; क्योंकि सरकारें प्रचलित मजहबी पाखण्ड का भण्डा फोड़ कर और जनता को धर्म की शिक्षा देकर अपने ही हाथों अपने पावों पर कुल्हाड़ी कैसे मारती ? यह तो वैसी ही बात होती जैसी कि आदमी पेड़ की उसी डाली को खुद अपने हाथों काटने की कोशिश करे, जिसपर वह स्वयं बैठा हो ।

परन्तु अगर सरकारें इस कार्य को नहीं करतीं तो यह निश्चित सा है कि जिन विद्वानों ने झूठे माया-जाल से अपने आपको मुक्त कर लिया है और जो यह कहते हैं कि वे जन-साधारण की सेवा करने के इच्छुक हैं; वे अवश्य ही इस कार्य को करेंगे । पर ये लोग भी सरकारों की तरह इस संबंध में बिलकुल अकर्मण्य बने हुए हैं । इसकी पहली वजह यह है कि सरकारें जिस पाखण्ड की रक्षा करती रहती हैं, उस पाखण्ड का भण्डाफोड़ करके ये लोग सत्ताधारियो की नाराजगी मोल लेने और परिणामतः कष्टों और आपदाओं को सहन करने की जोखिम उठाने को तैयार नहीं हैं । क्यों कि सत्ताधारियों और पाखण्डियों की आपसी दुरभिसन्धि है । दूसरी वजह यह है कि ये लोग सबके सब धर्मों को एक दुर्बलतायुक्त भूल समझते हैं और इसलिए जिस मायाजाल का नाश करने की इन लोगों से आशा की जाती है, उस मायाजाल के बदले दूसरी कोई चीज इनके पास जनता को देने के लिए नहीं है ।

दल-दल से बचने का मार्ग

अब रह जाता है वह महान् अशिक्षित जन-समुदाय जो मन्दिरों और मठों के ऐन्द्रजालिक प्रभाव में है और साथ ही सरकारों के दम्भ का भी शिकार है । यह विशाल जन-समाज उस नकली धर्म को ही, जिसको इसने अंगीकार कर रक्खा है, एकमात्र सच्चा धर्म मानता है और उसका खयाल है कि इसके सिवाय न तो कोई दूसरा धर्म है और न हो सकता है । यह बहुसंख्यक जन-समाज अत्यन्त विकट और सतत माया-जाल में फंसा हुआ है । पीढ़ी-दर-पीढ़ी ये लोग उसी अज्ञानाच्छन्न अवस्था में जन्म धारण करते, जीवन व्यतीत करते और मर जाते हैं, जिसमें धर्म-गुरुओं और सरकारों द्वारा ये रहने को बाध्य किये जाते हैं । और अगर ये लोग इस ऐन्द्रजालिक प्रभाव से अपने-आप को मुक्त कर भी लें तो इनके अन्दर अज्ञान की मात्रा इतनी अधिक है कि वे फौरन उन वैज्ञानिकों के चंगुल में फंस जाते हैं जो किसी भी धर्म को नहीं मानते, इन वैज्ञानिकों का प्रभाव धर्म-गुरुओं के प्रभाव की भांति ही निरर्थक और हानिकारक सिद्ध होता है ।

इस प्रकार अधर्म का खण्डन और सद्धर्म का प्रचार जहाँ कुछ लोगों के लिए लाभदायक नहीं, वहाँ लोगों के लिए एक असम्भव कार्य है ।

ऐसा प्रतीत होता है, मानो इस दलदल में से बच निकलने का कोई मार्ग ही नहीं है ।

यह बात वास्तव में सच भी है कि अधार्मिक लोगों के लिए इस विकट परिस्थिति में से निकलने का न तो कोई रास्ता है और न हो ही सकता है । समाज के उच्च वर्ग और शासक-समुदाय के लोग जन-साधारण के कल्याण की कितनी ही चिन्ता क्यों न प्रकट करें, परन्तु वे कभी भी गम्भीरतापूर्वक जनता की अज्ञानपूर्ण और पराधीन अवस्था दूर करने का प्रयत्न नहीं करेंगे; क्योंकि उस अवस्था में ही उच्च वर्ग के लोग जनता पर शासन करते रह सकते हैं । उनका लक्ष्य सांसारिक होता है, इसलिए वे ऐसा नहीं कर सकते । इसी प्रकार गुलामी की बेड़ियों से जकड़ी हुई सर्वसाधारण जनता भी, जिसका उद्देश्य साधारणतः अपनी सांसारिक वासनाओं की तृप्ति करना होता है, झूठी धार्मिक शिक्षा की पोल खोलते हुए उसके स्थान पर सच्चे धर्म के उपदेशों का प्रचार करके सत्ताधारियों के खिलाफ लड़ाई छेड़कर अपनी विषम परिस्थिति को और अधिक विषम बनाना नहीं चाहती । इन दोनों श्रेणियों के लोगों में ऐसा कार्य करने की कोई प्रेरणा विद्यमान नहीं है; और अगर ये लोग समझदार और दूरदर्शी हैं तो भी करने का प्रयत्न नहीं करेंगे ।

तपस्वी व बलिदानी सन्तों की जरूरत

लेकिन धर्म-परायण लोगों की बात बिलकुल जुदा है । चाहे समाज कितना ही पतित, भ्रष्ट और दूषित क्यों न हो जाय, फिर भी समाज में ऐसे लोग ढूंढने पर अवश्य ही मिल जाते हैं जो धर्म की पवित्र ज्योति को अपनी सच्चरित्रता और सदाचारपूर्ण जीवन से हमेशा जगमगाये रखते हैं । इस पवित्र धार्मिक ज्योति के अभाव में मनुष्य-जीवन कभी कायम नहीं रह सकता । हाँ, यह बात सच है कि मनुष्य-जाति के इतिहास में ऐसे अवसर आया करते हैं (और वर्तमान युग भी इसी प्रकार का एक अवसर है) जब ऐसे लोग एक कोने में पड़े रहते हैं, उनकी कोई पूछ नहीं होती, उनका तिरस्कार किया जाता है, उनको अनेक प्रकार की यंत्रणाएं पहुँचाई जाती हैं, निर्वासित किया जाता है, जेलों में डाला जाता है, लेकिन फिर भी वे जीवित रहते हैं और उन्हीं की तपस्या और बलिदान पर मनुष्य-जाति का बौद्धिक जीवन निर्भर करता है । इन लोगों की संख्या कितनी ही कम क्यों न हो, किन्तु यही लोग हैं जो मनुष्यों को दासता-पाश में जकड़े रखनेवाले इस भयानक इन्द्रजाल को नष्ट कर सकते हैं और करेंगे । ये लोग इस पवित्र कार्य को कर सकते हैं; क्योंकि एक सांसारिक मनुष्य को प्रचलित समाज-व्यवस्था का विरोध करने में जिन असुविधाओं और खतरों का सामना करना पड़ता है, वे धार्मिक पुरुषों के मार्ग को नहीं रोक सकते, उलटे वे असत्य का विरोध करने के लिए और भी उत्साह दिलाते हैं और जिसको वे ईश्वरीय सत्य समझते हैं ऐसे धार्मिक पुरुष उसको शब्द और कार्य द्वारा प्रकट करने की प्रेरणा देते हैं ।

ऐसे धार्मिक पुरुष यदि शासक वर्गों में हुए तो वे अपनी सुविधाजनक स्थिति का खयाल करके सत्य पर पर्दा न डालेंगे, बल्कि इसके विपरीत वे ऐसी सुविधाओं को घृणा की नजर से देखेंगे और उनसे छुटकारा पाने में और सत्य का प्रचार करने में अपनी सारी शक्ति खर्च कर देंगे । उनके आगे जीवन में एक ही लक्ष्य होता है और वह यह कि ईश्वर की सेवा करें । यदि ऐसे पुरष पराधीन वर्गों में हुए तो वे अपनी श्रेणी के अन्य लोगों की भांति अपनी सांसारिक दशा सुधारने की चिन्ता न करेंगे । पाखण्ड का भण्डाफोड़ करना और सत्य का

प्रचार करना और इस प्रकार परमात्मा की इच्छा पूर्ति करना ही उनका लक्ष्य होगा । जीवन में जिस लक्ष्य को उन्होंने अपनाया होगा, उससे वे हरगिज विरत न होंगे, चाहे उन्हें कितना ही कष्ट सहन क्यों न करना पड़े । दोनों प्रकार के लोगों का आचरण उतना ही स्वाभाविक होगा जितना कि सांसारिक मनुष्य का होता है जो धन कमाने के लिए परिश्रम करता है, फिर हर प्रकार के कष्ट उठाता है, अथवा कुछ प्राप्ति की आशा में किसी राजा की खुशामद करता है । प्रत्येक धर्म-परायण पुरुष का आचरण इसी प्रकार का होता है; क्योंकि जिसकी आत्मा धर्म के द्वारा पावन और निर्मल हो जाती है, वह फिर दूसरे विषयासक्त स्त्री-पुरुषों की तरह सांसारिक और धर्म-हीन जीवन बिताना छोड़ देता है । वह तो ऐसा शाश्वत और अनन्त जीवन बिताने लगता है, जिसमें भौतिक कष्टों और मृत्यु आदि का कोई महत्त्व नहीं होता । ये कष्ट उसके लिए वैसे ही महत्त्वहीन होते हैं, जैसे कि हाथ की फुंसी अथवा हल चलाते समय किसान के अंगों की थकावट ।

ये ही दरअसल वे लोग हैं जो जन-साधारण के चारों ओर फैले हुए इन्द्रजाल को फाड़ फेकेंगे । ये लोग संख्या में कितने ही थोड़े क्यों न हों, इनका सामाजिक दर्जा कितना ही निम्न क्यों न हो, सम्पूर्ण संसार में ये उतने ही निश्चय के साथ आग लगा देंगे, जिस निश्चय के साथ आग सूखी घास को जला डालती है । ये लोग उन तमाम मनुष्यों के हृदय को सत्य और धर्म की ज्योति से पुनः आलोकित कर देंगे, जिनके हृदय धर्म के दीर्घकालीन अभाव के कारण कुम्हला गये हैं और जो नवजीवन के लिए उत्ककण्ठित हैं ।

दुर्बल को सबल बनाने वाली शक्ति

एक विशिष्ट अवसर पर घटित होनेवाली किसी अलौकिक घटना में सदा विश्वास करते रहने का नाम धर्म कदापि नहीं है । न किन्हीं खास तरह की प्रार्थना और रीति-रिवाजों को मानने की आवश्यकता में विश्वास रखना ही धर्म है । इसके अतिरिक्त धर्म वह पदार्थ भी नहीं है जिसके लिए वैज्ञानिक लोग अक्सर कहा करते हैं कि यह प्राचीन काल के अज्ञान और अन्धविश्वासों का अवशिष्ट चिह्न है और इसलिए अर्वाचीन युग में मनुष्य-जीवन के लिए इसका कोई उपयोग या प्रयोजन नहीं है । बल्कि धर्म शाश्वत जीवन और परमात्मा के प्रति बांधा गया एक संबंध है । यह सम्बन्ध बुद्धि और आधुनिक ज्ञान-सामग्री के बिल्कुल अनुकूल है और यही एक ऐसा पदार्थ है जो मनुष्य-जाति को अपने निश्चित ध्येय की ओर निरन्तर अग्रसर करता रहता है ।

यहूदियों के अन्दर एक प्रसिद्ध लोकोक्ति प्रचलित है—"मनुष्य की आत्मा परमात्मा का दीपक है ।" जबतक मनुष्य के अन्दर ईश्वर की ज्योति प्रकाशित नहीं होती, तबतक वह केवल एक दुर्बल और दयनीय प्राणी होता है । लेकिन जब यह ज्योति जगमगाने लगती है (और वह केवल धर्म से आलोकित आत्माओं के अन्दर ही जगमगाती है), तब मनुष्य संसार में सबसे शक्तिशाली प्राणी बन जाता है । इसके अलावा दूसरी कोई बात हो भी नहीं सकती, क्योंकि उसके अन्दर जो शक्ति कार्य करने लगती है, वह उसकी निज की शक्ति नहीं, बल्कि परमात्मा की शक्ति होती है । यही शक्ति दुर्बल को सबल बनाती है ।

बस, यही सबकुछ धर्म है और इसी में धर्म का तत्त्व समाया हुआ है । ☐

सच्चा धर्म

आचार्य श्री अविचल दास जी महाराज

मानव समाज आज एक भयंकर संकट से गुजर रहा है । सारा विश्व द्वेष, हिंसा और भय के वातावरण में डूबा हुआ है । धर्म तथा राजनति के सत्ता संघर्ष में लिप्त मानव-समाज के कर्णधार समाज को देश, जाति, धर्म और राजनैतिक सिद्धान्तों के आधार पर छोटे-छोटे टुकड़ों में बांट कर रखने को तुले हुए हैं । इन्हें समझा पाना आज असंभव सा ही दीखता है । संभवतः मानव-जाति को सर्वनाश के द्वार पर ले जा कर ही उनकी आंखें खुलेंगी ।

अनैतिक स्पर्धा

एक अमरीकन विद्यार्थी से यह प्रश्न पूछा गया कि इतनी साधन-संपन्नता होते हुए भी अमरीका के नौजवानों की मनोभावना विश्रृंखलित क्यों है ? तब उस युवक ने अत्यन्त मार्मिक उत्तर दिया—विज्ञान ने हवाई जहाज पर उड़ना और चन्द्रमा को छूना तो सिखाया पर उसने रहना और जीना नहीं सिखाया । अर्थात् नये संदर्भों में मानव के आपसी सम्बन्धों को भावनात्मक दिशा देने का काम इस युग में नहीं हो रहा है । इसी से मानव-समाज में भावनात्मक सम्बन्धों का संकट पैदा हुआ है । मानव-जाति पर जो संकट है, उसके मूल में सबसे बड़ी कठिनाई आज क्या है ? इस प्रश्न पर विचार करें, तो स्पष्ट रूप से समझ में आयेगा कि भोग प्रधान व्यक्तिवादी भावनाओं का सीमा-विहीन विस्तार समाजनिर्माताओं के सभी प्रयत्नों को विफल कर रहा है । मानव के अन्तर में रहनेवाली पशुता उद्दाम वेग से भोग-लिप्सा की तृप्ति की दिशा में बढ़ रही है । जो कुछ सत्य है, सुंदर है, कल्याणकारी है, उस सबको अपने पैरों के नीचे रौंद कर वह क्षणिक सुखभोग की तृप्ति चाहती है । दूसरों को पीछे छोड़ कर, या उन्हें आघात पहुँचा कर भी हर व्यक्ति आगे बढ़ना चाहता है । इस तरह की अनैतिक प्रतिस्पर्धा में जो शामिल नहीं हो सकता, उसे जीवन की साधारण आवश्कताओं से भी वंचित रहना पड़ता है । परिणामस्वरूप समाज में यह मान्यता दृढ़ हो गयी है कि आदर्शों की चर्चा, व्याख्यान वगैरह के लिए अच्छी है, परन्तु व्यवहार में 'येन केन प्रकारेण' सफलता प्राप्त करनी चाहिए, अथवा जैसे भी बने, धन-संग्रह और प्रतिष्ठा प्राप्त करनी चाहिए ।

धर्म का आधार

इस मनोदशा को यदि हम नहीं बदल पाये, तो किसी तरह के स्वस्थ समाज का निर्माण असंभव हो जायेगा । स्वस्थ समाज के निर्माण के लिए मनुष्य को अपने धर्म के विषय में जागरूक होना जरूरी है । जिस तरह से आग का धर्म है गरमी देना, पृथ्वी का धर्म है अपनी धुरी पर नाचते हुए, सूर्य की परिक्रमा करना । इसमें तिलमात्र का भी अंतर पड़ा तो

पृथ्वी का सर्वनाश हो जायेगा । इसी तरह मनुष्य का धर्म है प्रेम और श्रम करना । जिस दिन मानव-जाति से प्रेम का भाव मिट जायेगा और श्रम से अरूचि पैदा हो जायेगी, उस दिन मानवजाति जीवित नहीं रह सकेगी । धर्म-निरपेक्ष तो गधे और बिल्लियां भी नहीं हो सकती हैं ।

लेकिन दुर्भाग्य ! धार्मिक संप्रदायों व राज्याधिकारियों का व्यवहार इतना अनैतिक हो रहा है कि मानव-समाज का मन सहज ही धर्म विमुख हो रहा है । छुरा भौंकना, घर को आग लगाना, स्त्रियों और बच्चों पर अत्याचार करना, ऐसे जघन्य अपराध भी धर्म और राज्याधिकार के नाम पर किये जा रहे हैं । दूसरी ओर दबी हुई साधारण जनता प्रतिक्रिया स्वरूप धर्माधिकार और राज्याधिकार के नाम पर विद्रोह कर रही है । सारे समाज में हिंसा प्रतिहिंसा का नाच हो रहा है । इस हिंसा प्रतिहिंसा के ताण्डव को कौन रोकेगा ? इसको रोकने की शक्ति केवल धर्म विचार में ही है क्योंकि धार्मिकता का अर्थ है, एक ओर प्रकृति और समाज के नियमों को स्वीकार कर, सांसारिक जीवन को मर्यादित भाव से चलाना और दूसरी ओर व्यक्तिगत चेतना का विश्वचेतना से संबंध जोड़ना ।

सामूहिक चेतना से सम्बन्ध जोड़ें

धर्म ने मानव-जाति को इस ज्ञान का महादान किया है कि प्राकृतिक शक्तियों और नियमों के परे और उनके मूल में एक महान् विश्व चेतना है । वही जीवन का परम आनन्द, रसाधार, अमृत है । उसके स्पर्श को छोड़ कर मानव-जाति कभी सुखी नहीं हो सकती है । 'मैं' के स्थान पर 'हम' का जन्म नहीं हुआ, तो सामाजिक जीवन कलुषित और निरर्थक हो जायेगा । इसकी स्थापना तभी संभव है, जब सिद्धान्त, व्यवहार और अनुभूति, तीनों स्तर पर व्यक्तिविशेष का सामूहिक चेतना से सम्बन्ध जोड़ा जाये । इसी को आध्यात्मिक परिभाषा में जीवभाव के स्थान पर ब्रह्मभाव की स्थापना कहते हैं । यही सच्चा धर्म है । □

धर्म-उद्घोष

श्री स्वामी वियोगानन्द सरस्वती जी महाराज

हिन्दू जीवन पद्धति में कोई भी सामाजिक, पारमार्थिक या व्यक्तिगत अनुष्ठान करने के पहले अनुष्ठान करने वाला कौन है, यह घोषित करने के लिए—जम्बू द्वीपे, आर्यवर्ते, भरतखण्डे कहने के बाद व्यक्ति का नाम उसके पिता का नाम, वंश परम्परा तथा गोत्र आदि का उल्लेख किया जाता है । इतना परिचय देने के बाद अनुष्ठान के काल की घोषणा होती है । काल की घोषणा में दिन, तिथि, लग्न, नक्षत्र और संवत् का उल्लेख किया जाता है । इसके बाद जो कार्य सम्पन्न करना हो, उससे सम्बन्धित देवता अर्थात् प्राकृतिक शक्ति का आह्वान किया जाता है । कार्य सम्पन्न होने का संकल्प लिया जाता है । यह वैदिक विधान विभिन्न रूपों में एशिया महाद्वीप के अनेक देशों में आज भी प्रचलित है । यही हिन्दू जीवन पद्धति की विशेषता है कि उसमें व्यक्ति, समाज और प्रकृति के प्रति आत्मीयता, कृतज्ञता और सहज सम्बन्ध स्थापित करने की विधा का विकास हुआ है । परिचय मात्र में समस्त भूमण्डल के साथ एकरूपता साधने की परिपाटी वैज्ञानिक है । इस वैज्ञानिक परिपाटी में पला व्यक्ति कभी भी समाज, प्रकृति तथा व्यक्ति के प्रति क्रूर और कृतघ्न नहीं हो सकता । धर्म-भाव से पारस्परिक रक्षण का सूत्र इस वैज्ञानिक परिपाटी की सहज देन है ।

हिन्दू, हिन्दी, हिन्दुस्तान

वर्तमान समय में यह सवाल बराबर बना हुआ है कि यह हिन्दू कौन है ? प्राचीन कोषों में हिन्दू शब्द के अर्थ किये गये हैं ।

हिन्दुर्दुष्ट नृहः प्रोक्तोऽनार्य्य नीति विदूषकः ।
सद्धर्मपालको विद्वान् श्रौत धर्मपरायण : ।।(रामकोष)

अर्थात्—दुष्टों को दण्ड देने वाला, अनार्य नीति का विदूषक, सद्धर्म पालक, विद्वान् और वैदिक धर्मपरायण व्यक्ति हिन्दू कहा जाता है ।

एक और परिभाषा है—

हिन्दुर्हिन्दूश्च संसिद्धौ दुष्टानां च विधर्षणे

अर्थात्—जो हिन्दुत्व की परम्पराओं की सिद्धि यानि आचरण करता है तथा जो दुष्टों का दमन करता है, वह व्यक्ति हिन्दू है ।

हिन्दू की और भी शास्त्र सम्मत अनेक परिभाषाएँ हैं । सभी परिभाषाओं में हिन्दू को हिंसा से दूर रहने वाला, दुष्टों का दमन करने वाला तथा समस्त जड़ चेतन सृष्टि के प्रति कृतज्ञ भाव रखने वाला बताया है । हिन्दू समाज में भाषा बोध के लिए जिस लिपि का विकास हुआ, वह देवनागरी लिपि कहलाई । इस देवनागरी लिपि में बावन अक्षर हैं । इन अक्षरों के उच्चारण स्थान मानव शरीर में निश्चित हैं । इन अक्षरों की तरंगों के प्रभाव भी

निश्चित हैं । अक्षरों की ध्वनि तरंगें कहाँ से उत्पन्न होती हैं, इनका प्रभाव कहाँ पड़ेगा, यह भी निश्चित है । भारत की सभी भाषाओं में इन्हीं अक्षरों का प्रयोग होता है । ये अक्षर समस्त ब्रह्माण्ड को प्रभावित करने की शक्ति रखते हैं । संस्कृत भाषा इन्हीं देव नागरी लिपि के अक्षरों में लिखी जाती है । इन अक्षरों की विशेषता है कि बोलने, लिखने और पढ़ने में ध्वनि एक ही रहती है । इसीलिए कम्प्यूटर विज्ञान के ज्ञाताओं ने कम्प्यूटर के लिये संस्कृत को सर्वोत्तम माना है । हिन्दू समाज की हिन्दीभाषा जिस देश में बोली जाती है, उस देश का नाम भी हिन्दुस्तान है । हिन्दुस्तान को व्याख्यायित करने के लिए कहा गया है—

हिमालयं समारम्य यावद् इन्दु सरोवरम् ।
हिन्दुस्थानमिति ख्यातमाद्यन्ताक्षर योगतः ।।

हिमालय में स्थित हिन्दुकुश पर्वत से लगाकर हिन्दमहासागर तक का भू भाग हिन्दुस्तान कहलाता है ।

हिन्दुस्तान के बारे में विचारकों का मत

हिन्दुस्तान की ख्याति संसार के कोने-कोने में थी । सोने की चिड़िया के नाम से ख्याति प्राप्त इस देश में सारी दुनिया के भुक्खड़ और लुटेरे ही आये हों, ऐसी बात नहीं है, दुनिया के ज्ञानि, साधक तपस्वी भी यहाँ आये, अरब के विद्वान् मनीषी उमर बिन एहसान ने हिन्दुस्तान के विषय में अपनी पुस्तक सीरुल उलूक के २३५वें पृष्ठ पर लिखा है—

व सहवी के याम फ़ीम कामिल हिन्दे यौग़न ।
व यकूलन न लावहज़ न फ़ इन्नक तवज़्ज़रन ।।

अर्थात्—हे प्रभु ! मेरा समस्त जीवन लेकर केवल एक दिन हिन्दुस्तान के निवास का दे क्योंकि वहाँ पहुँचकर मनुष्य जीवन मुक्त हो जाता है ।

म अस्सारे अख्लाकन इसनन कुल्लहुम ।
न जुमुन अजा अत शुम्मा गवुल हिन्दू ।।

(हिन्दुस्तान) की यात्रा से सारे शुभकर्मों की प्राप्ति होती है और आदर्श हिन्दुओं का सत्संग मिलता है ।

हज़रत मुहम्मद साहब के जन्म से २३०० वर्ष पूर्व अर्थात् आज से ३८०० (तीन हजार आठ सौ) वर्ष पूर्व लबी विन अख्तर बिन् तुरफा यानी तुरफ़ा के पोते ने अपनी कविता में कहा था—

अय मुबारक़ल अर्ज़ यू शरअ यू नहामिनल-नूहामिनल ।
हिन्द ए फ़राद कल्लहो मयान ज़े लाज़िकातुन ।।

हे हिन्दुस्तान की पुण्य भूमि तू धन्य है, क्योंकि ईश्वर ने अपने ज्ञान के लिए तुझे चुना है ।

हिन्दुस्तान में जिस जीवन विज्ञान की शोध हुई है, वह परिपूर्णता की ओर ले जाने वाला है । सत्य शोधकों की यहाँ विचित्र परम्परा रही है । वैदिक परम्परा में माना गया है कि परस्पर प्रतिरोधी एक दूसरे के पूरक होते हैं । इसीलिए चार्वाक को भी एक दार्शनिक का स्थान मिला तथा महात्मा बुद्ध को अवतार घोषित किया गया । आधुनिकतम विज्ञान भी अब कहने लगा है—

कान्ट्रेरीज़ आर सप्लिमेन्ट्रीज़—अर्थात् प्रतिरोधी पूरक होते हैं।

आदि काल से अब तक तथा आगे भी हिन्दू समाज में नित नवीनता का तत्त्व सदा उपस्थित रहेगा । इसका मुख्य कारण विज्ञान का उपरोक्त सूत्र है, जिसको हिन्दू समाज ने बहुत पहिले से ही स्वीकार करके सहिष्णुता का व्यावहारिक आदर्श बनाया है ।

आकर्षक जीवन दर्शन

हिन्दू समाज के जीवन दर्शन में यह माना गया है कि मानव योनि उत्तम कर्मों का परिणाम है । इस योनि में कर्म करने की स्वतन्त्रता है । इसके लिए संयुक्त परिवार की एक स्थाई इकाई की स्थापना की है । उत्तम स्वभाव वाले स्त्री पुरुषों को जन्म देकर उनको संस्कारवान बनाने पर अधिक जोर दिया गया है । गर्भाधान संस्कार से लगाकर मृत्यु के बाद श्राद्ध संस्कार तक का परिशोधन किया गया है । हर एक संस्कार का नियोजन मनुष्य के अन्दर गुणवर्धन के हेतु से किया जाता है । दिन, तिथि, लग्न, नक्षत्र एवं संवत् की गणना के अनुसार नामकरण किया जाता है ।

जन्म से मृत्यु तक शास्त्र समस्त कर्मकाण्डों का आचरण करते रहने से व्यक्ति समाज और प्रकृति के बीच किसी प्रकार का असन्तुलन नहीं होता । पर्यावरण शुद्ध रखने की स्वचालित व्यवस्था इसमें निहित है । चारों वेदों के एक लाख मन्त्रों में से ८० हजार मन्त्रों द्वारा जीवन के कर्मकाण्डों एवं राजनीति, अर्थनीति, न्यायनीति आदि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र के लिए परिपूर्ण मार्गदर्शन किया गया है । सोलह हजार मन्त्रों में जल, वायु, अग्नि, पृथ्वी, आदि शक्तियों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करके उनकी शक्तियों का कैसे उपयोग किया जाय, इसका विधिवत वर्णन किया गया है । उपासना काण्ड के इन मन्त्रों में भौतिक विज्ञान के समस्त सूत्र मिल जायेंगे । शेष चार हजार मन्त्र ज्ञान काण्ड के हैं, जिनमें ईश्वर, ब्रह्म, प्रकृति आदि के सम्बन्धों के विश्लेषण के द्वारा आध्यात्मिक चेतना का मार्गदर्शन है ।

सृष्टि—ज्ञान प्राप्त करने के लिए षट्दर्शनों का विधान है तथा किसी भी समस्या का शास्त्र सम्मत समाधान प्राप्त करने के लिए प्रस्थान-त्रयी के रूप में उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र एवं श्रीमद्भगवद् गीता जैसे महान् ग्रन्थ उपलब्ध हैं । जन-जीवन को दिशा-निर्देशन करने के लिये पुराणों के साथ-साथ रामायण, महाभारत, गुरुग्रन्थ साहब, जिनबाणी, तथा अन्य अनेक गुरुपन्थों के ग्रन्थ सरल भाषा में हर एक को प्राप्त हो सकते हैं ।

तजिए ताहि कोटि वैरी सम

हिन्दू जीवन दर्शन में भोगवादी संस्कारों को पनपने की कोई गुजांइश नहीं है क्योंकि इसकी दिशा सत्य शोधन की है । प्राचीन काल के ऋषिमुनि अच्छी तरह जानते थे कि स्वर्ण की माया बड़ी विचित्र है । यह सत्य को उजागर करने में बाधक है । इसीलिए कहा है—

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।
तत् त्वं पूषन्नपावृणु सत्य धर्माय दृष्टये ।।

अर्थात्—सुवर्णमय पात्र से सत्य का मुँह ढका हुआ है । हे विश्वपोषक प्रभो ! मुझ सत्यधर्म उपासक के दर्शन हेतु उसे तू खोल । हिन्दू जीवन दर्शन की खोज, शोध करने

वाले सभी मनीषी सुवर्ण की इस माया से सतत चौकन्ने रहे हैं । इसीलिये सादा जीवन उच्च विचार की मानवीय संस्कृति का विकास हिन्दुस्तान में हो सका ।

प्रकृति की शक्ति से प्राप्त सुख सुविधाओं को हिन्दू जीवन पद्धति ने पूरी तरह उपभोग करने का प्रावधान रखा है, लेकिन उसके प्रति मातृभाव रखकर उसका दुग्ध पान करने की विधा का विकास किया है । उसके प्रति कृतज्ञभाव दिखाया है । इसीलिये प्रत्येक हिन्दू के लिए विधान है कि प्रातःकाल धरती माता के ऊपर चरण रखने के पहिले उसकी वन्दना करें ।

समुद्रवसने देवी, पर्वतस्तन मण्डले ।
विष्णु पत्नी नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे ।।

अर्थात्—हे धरती माता समुद्र तेरे वस्त्र हैं, पर्वत तेरे स्तन हैं, तू विष्णु महाराज की धर्म पत्नी है । मैं तुझे प्रणाम करता हूँ । मैं तेरे ऊपर पैरों से चलता हूँ अतः तू मुझे क्षमा करना ।

इस भाव से जो व्यक्ति पृथ्वी को मातृवत् समझ कर उसकी शक्तियों का दुग्धपान करेगा, वह कभी भी इस पृथ्वी के पर्यावरण को दूषित नहीं होने देगा । पर्यावरण को दूषित करने वालों को दुश्मन समझेगा, उनका समाज से बहिष्कार करेगा ।

देव-दानव युद्धों की शृंखला का इतिहास बताता है कि जब किसी समुदाय ने प्रकृति की शक्तियों का दुरुपयोग करके सुवर्ण संस्कृति का प्रसार करके पृथ्वी के पर्यावरण को दूषित किया है तो जागृत हिन्दू समाज ने अपने ही बन्धु-बान्धवों का भी डट कर विरोध किया है ।

जाके प्रिय न, राम वैदेही ।
तजिये ताहि कोटि बैरीसम, यद्यपि परम सनेही ।।
तज्यो पिता प्रह्लाद विभीषण, बन्धु भरत महतारी ।
गुरु बलि तज्यो, कन्त बृज बनितन्ह, भये मुद मंगलकारी ।।
नाते नेह राम के मनियत, सुह्रद सुसेव्य जहाँ लौं ।
अंजन कहा आँख जेहि फूटे, बहुतक कहौं कहाँ लौं ।।
तुलसी सो सब भांति परम प्रिय, पूज्य प्राण ते प्यारो ।
जासों होय सनेह राम पद, एतौ मतौ हमारो ।।

तुलसीदास महाराज उपरोक्त भजन में प्रकृति विरोधी पर्यावरण को दूषित करने वालों को राम विरोधी कहते हैं । जो राम विरोधी है, वह समाज विरोधी है । वह सुवर्ण की माया के चक्कर में है । प्रकृति माता के साथ बलात्कार करने वालों का साथ छोड़ना ही हितकर है ।

हिन्दुस्तान पर संसार के लुटेरों के प्रहार

हिन्दुस्तान की भूमि पर भारत माता का दुग्धपान करनेवाले हिन्दु समुदाय की सुख-समृद्धि का शोर सारे जहान में फैल गया । कोलम्बस इस देश की खोज में निकल पड़ा । दूसरे अनेक लुटेरों ने हिन्दुस्थान की सीमाओं पर लूट मचाई । इन लुटेरों के सम्पर्क ने हिन्दुस्थान में भी सुवर्ण की माया फैलानी शुरू कर दी । भारत-माता के कुछ सपूत कपूत बन गये और सुवर्ण की माया में फंस कर भारत-माता का ही सौदा कर बैठे । इन कपूतों के मातृ-द्रोही होने पर हिन्दूसमाज में बिखराव आ गया । बिखराव की कीमत चुकानी पड़ी । परिणाम स्वरूप भारतमाता को लम्बे समय तक गुलामी की जंजीरों में जकड़ा रहना पड़ा । हिन्दू समाज की अस्मिता को नष्ट करने के लिए निर्दयी लुटेरों ने साम, दाम, दण्ड, भेद से काम

लेकर हिन्दू विद्वानों, ग्रन्थों, विद्यालयों, पुस्तकालयों तथा मन्दिर आदि को नष्ट करके सुवर्ण की माया फैलानी शुरू कर दी । सारे संसार में हिन्दू जीवन पद्धति को पिछड़ा, जंगली, और अविकसित कहने लगे । वेद उपनिषद्, गीता, रामायण तथा सभी धार्मिक साहित्य के प्रति उपेक्षा का भाव पैदा कर दिया गया । परिणाम स्वरूप हिन्दुस्तान में रहने वाले भारतमाता के लाल अपने को हिन्दू कहने में शरमाने लगे । वेद, उपनिषद्, गीता, रामायण, पुराण आदि का अध्ययन पिछड़ेपन की, दकियानूसी की निशानी बन गई ।

परन्तु भारतमाता के सपूत इन राक्षसी हमलों के बीच भी हिन्दू-संस्कृति की रक्षा करते रहे । राणा प्रताप, गुरु गोविन्द सिंह, वीर शिवाजी, सुभाष आदि अनेक वीर पुरुष सुवर्ण की माया में लिप्त भोगवादी विकृति के प्रसारकों के दांत खट्टे करते रहे । ज्ञानदेव, नामदेव, गुरु नानक, सन्त तुलसीदास, चैतन्य महाप्रभु, मीराबाई, स्वामी विवेकानन्द, महर्षि दयानन्द आदि सन्तों ने जनमानस को भोगवादी मायावी विकृति से ऊपर उठाकर दूषित पर्यावरण को शुद्ध करने के प्रयास किये ।

भारतमाता के वीर बाँकुरों ने तथा सन्त महात्माओं ने मुगलशासन को पस्त तो कर दिया था, लेकिन विलासी मुगलशासकों ने अपने भोग-विलास की सुविधा प्राप्त करने के लालच में भारतमाता का सौदा अंग्रेज व्यापारियों से कर लिया । ईस्ट इण्डिया कम्पनी के नाम से हिन्दुस्थान को चूसने का दौर प्रारम्भ हो गया ।

सर्वे का निष्कर्ष

सन् १८५७ में भारत के सपूतों ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के ख़िलाफ़ जबरदस्त विद्रोह किया, लेकिन सफलता नहीं मिली । सन् १८५८ में जब ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने भारत में प्रवेश किया तो विचार पूर्वक हिन्दू संस्कृति को नष्ट करने की योजना बनाई गई । सर ए० ओ० ह्यूम को भारत के सर्वे का काम सौंपा गया । ह्यूम ने हिन्दू समाज की उस शक्ति को बुनियाद से पकड़ लिया, जिसके कारण सैकड़ों वर्षों के प्रहार के बाद भी हिन्दू समाज जीवित रहा था ।

ह्यूम ने कहा—भारत के समाज की बुनियाद सहज स्वाभाविकता, पारस्परिकता, स्वयं सेवा और साझेदारी पर खड़ी है । इस समाज में अलग से सेवा के संस्थान नहीं है । परस्पर धर्म-भाव से सेवा और रक्षण की व्यवस्था हीती रहती है । जब तक समाज में यह व्यवस्था कायम रहेगी, तब तक भारत के निवासियों को गुलाम बनाना सम्भव नहीं है ।

सुविचारित षड्यन्त्र

सर ह्यूम के परामर्श पर ब्रिटिश सरकार ने भारत के लिये दो कानून बनाये । पहला चैरिटेबिल सोसायटीज़ रजिस्ट्रेशन एक्ट १८६० तथा दूसरा काउंसिल एण्ट्री एक्ट १८६१ । इन दोनों कानूनों को लागू करने के बाद १८६० से १८८५ तक ऐसा कानूनी ढाँचा और प्रशासनिक तन्त्र बनाया गया, जिसने हिन्दुस्थान को ब्रिटिश साम्राज्यवाद का उपनिवेश बना दिया । सर ह्यूम और लार्ड मैकाले के षड्यन्त्र का परिणाम यह आया कि हिन्दुस्तान में ब्रिटिशसाम्राज्यवाद की नींव को मजबूत करने वाले भारतीय-जीवन-पद्धति को हीन और पिछड़ा हुआ मानने वाले बुद्धिजीवियों की एक बहुत बड़ी फौज़ तैयार हो गई ।

यह सर ह्यूम वही व्यक्ति है जिसने अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बुनियाद डाली थी । प्रारम्भ में कांग्रेस कमेटी ब्रिटिश सरकार की पिछलगू ही थी ।

ब्रिटिश काल में भारत की गुरुकुल परम्परा को नष्ट करने तथा ईसाई पादरियों द्वारा धर्म परिवर्तन का कार्य बड़ी तेजी से चलाया गया । मुगल काल में औरंगजेब जैसे ज़ालिम ने हिन्दुओं को जबरदस्ती मुसलमान बनाया था , लेकिन अंग्रेजों ने धन और नौकरियों का लालच देकर ईसाई बनाना प्रारम्भ कर दिया । तेजस्वी और विद्वान् भारतीयों को इंग्लैण्ड भेज कर अंग्रेजी रहन-सहन सिखाये । साथ ही हिन्दू-जीवन-पद्धति का योजना पूर्वक उपहास किया । धोती-कुर्ता की पोशाक पिछड़ेपन की निशानी बन गई । कोट-पैण्ट, कुर्सी, मेज़, अण्डा, मांस-भक्षण तथा शराब आधुनिकता के चिह्न बनते चले गये । हिन्दू-विवाह, पतिव्रता, ब्रह्मचारी, बड़ों का आदर करना, सन्ध्या वन्दन करना, मन्दिर जाना पिछड़ेपन के प्रतीक हो गये । इस सारी परिस्थिति के विरोध में लोकमान्य तिलक, वीर सावरकर आदि महापुरुषों ने हिन्दू अस्मिता को पुनः जागृत और संगठित किया ।

नव जागरण का स्वर

हिन्दू जागरण के इस दौर में हिन्दू जीवन पद्धति को पुनः परिभाषित करने की आवश्यकता पड़ी । कहा गया—

हिंसया दूयते यश्च सदाचरणतत्परः ।
वेदःगो प्रतिमा सेवी स हिन्दू मुखवर्णभाक् ।।

अर्थात्—जो हिंसा का नाश करे, वर्ण व्यवस्था के अनुसार आचरण करे, वेद, गोमाता और ईश्वर में विश्वास करे, वह हिन्दू है ।

ॐकार मूल मन्त्राढ्यः पुनर्जन्मदृढ़ाशयः ।
गोभक्तो भारत गुरु हिन्दूहीनत्व दूषकः ।।

अर्थात्—ओंकार जिसका मूल मन्त्र हो, पुनर्जन्म में दृढ़ विश्वास हो, गो वंश को पूज्य मानता हो, भारत जिसका गुरु घर हो, और अधर्मियों का नाश करने वाला हो, वह व्यक्ति हिन्दू कहा जाने योग्य है ।

इस नवजागरण से हिन्दू संगठित होकर भारतमाता को गुलाम बनाने वाले अधर्मियों के खिलाफ़ खड़ा हो गया । राक्षसी भोगपरायण विकृति के विरुद्ध अनेक धर्म युद्ध हुए । लाखों भारत माता के लाल इन युद्धों में बलिदान हुए । गुलामी की जंजीरें टूटी, परन्तु जो स्वतन्त्रता मिली, वह दूसरी गुलामी के रूप में स्थापित हुई ।

भारत विरोधी, हिन्दू घातक स्वतन्त्रता

१५ अगस्त १६४७ की रात के १२ बजे ब्रिटिश साम्राज्यवाद की विदाई तो हुई, लेकिन स्वतन्त्रता के नाम पर जो स्वतन्त्रता की सन्धि (Independence treaty) स्वीकार की गई, वह पूरी तरह भारत विरोधी और हिन्दू समाज़ के लिये घातक सिद्ध हुई ।

स्वतन्त्रता के बाद भारत माता का हिन्दुस्तान नाम समाप्त कर दिया गया, क्योंकि उसमें हिन्दू शब्द आता था । स्वतन्त्र भारत में हिन्दू को साम्प्रदायिक घोषित कर दिया गया । हिन्दू कहना शर्म की बात हो गयी । शिखा सूत्र पिछड़ेपन की निशानी बन गई । जिस

शिखा सूत्र की रक्षा के लिए गुरु गोविन्दसिंह के बच्चों ने दीवार में चुना जाना कबूल किया था, वह शिखा स्वतन्त्र भारत में पिछड़ेपन की निशानी बनकर स्वतः समाप्त हो गयी ।

१५ अगस्त की स्वतन्त्रता की संधि ने भारत माता को ऐसी स्थिति में पहुँचा दिया कि उ० प्र० शासन का मंत्री आज़म खाँ 'भारत माता को डायन कहे और वन्दे मातरम् जिसका उद्घोष करके असफाकुल्ला जैसे देश भक्तों ने अपना बलिदान किया था, उसका संसद में शाहबुद्दीन, सुलेमान सेठ आदि बहिष्कार करें । स्वतन्त्र भारत की संसद इसे स्वीकार करे ।

धिक्कार है १५ अगस्त की उस सन्धि को जिसने पण्डित जवाहरलाल नेहरू और स्व० डॉ० भीमराव अम्बेडकर को ऐसा संविधान बनाने के लिये मजबूर किया, जिसको वे स्वयं उचित नहीं समझते थे । डॉ० राजेन्द्र प्रसाद भूतपूर्व राष्ट्रपति जिन्होंने संविधान निर्मातृ सभा के सभापति के नाते संविधान पर हस्ताक्षर करने से इसलिये हिचक दिखाई कि उनको संविधान मंजूर नहीं था ।

इतना सब होते हुए भी भारत के हिन्दू समाज ने इन नेताओं पर विश्वास किया । साम्प्रदायिक आधार पर भारत का विभाजन हुआ । कहा गया था कि कट्टरपंथी असहिष्णु मुसलमान हिन्दुओं के साथ नहीं रह सकते । उनको सरियत के अनुसार व्यवस्था चाहिए । ऐसे मुसलमानों को उनके मजहबी आधार पर पाकिस्तान मिला लेकिन जो शेष भाग रह गया, उसे हिन्दुस्तान नहीं कहा गया । जो मुसलमान भारत में रह गये, उनके लिये अलग से सरियत के अनुसार कानून बनाने की क्यों जरूरत पड़ी ? जब भारत की व्यवस्था पंथ-निरपेक्ष है तो मुस्लिम पर्सनल ला, क्रिश्चियन ला या हिन्दू कोड बिल क्यों बनाया गया ? स्वतन्त्र भारत में १९३५ का फैडरल लॉ क्यों स्वीकार किया गया ? वह तो काला कानून घोषित हो चुका था । अंग्रेजों का बनाया प्रशासनिक तन्त्र, जिसके खिलाफ़ 'टोड़ी बच्चा हाय-हाय' का नारा लगाया जाता था, वह आज भी क्यों कायम है ? १५ अगस्त १९४७ की संधि में ऐसा क्यों स्वीकार किया गया कि पाकिस्तान द्वारा बदतमीजी करने पर भी उसपर हमला नहीं किया जायेगा तथा लड़ाई शान्त होने के बाद जीता हिस्सा वापस किया जायेगा । ये सब बातें सिद्ध करती हैं कि १५ अगस्त १९४७ की आज़ादी की घोषणा एक धोखा थी ।

यह आज़ादी हिन्दूओं के लिए घातक है । यह सिद्ध करना अब बाकी इसलिए नहीं रह गया है कि आज़ाद भारत के नेताओं ने जो नीति अपनायी, उसी का परिणाम है कि जिस देश के पास विज्ञान सम्मत, तर्क और मानवता पर आधारित हिन्दू-जीवन-पद्धति मौजूद है, आज वह देश दुनियां में पिछड़ा हुआ माना जा रहा है ।

जागो भारतवासी

अभी भी समय है जागो और भारत को हिन्दू-राष्ट्र-भारत घोषित करके अपनी वैदिक सनातन परम्पराओं को सामयिक सन्दर्भ में पुनः स्थापित करो । भारत का सन्त-समाज इस दिशा में सक्रिय हो रहा है । इसलिए बुद्धिशाली, प्रभावशाली, सन्तों के मार्ग दर्शन में सक्रिय होकर समाज को वैकल्पिक व्यवस्था स्थापित करने के लिए कृत संकल्प होना चाहिए । यही धर्म व्यवस्था की पुनर्स्थापना का आह्वान है, यही धर्म-उद्घोष है । □

सन्त महापुरुषों का कर्त्तव्य

आचार्य म० मं० स्वामी सच्चिदानन्दहरि निर्मल साक्षी

वर्तमान समय में पूरा सामाजिक ढाँचा अधर्म की चपेट में है । राज्य दंड पर भी अधर्म ने कब्जा कर रखा है । अज्ञान, असुरक्षा, शोषण, दमन और अनीति बढ़ रही है । सभी इस से दुःखी भी हैं और सभी इसके शिकार भी हैं । लेकिन मुट्ठी भर लोगों के लिए यही अधर्म व्यवस्था निहित स्वार्थ भी है । समाज का यह १५ प्रतिशत से २० प्रतिशत जनसंख्या वाला समुदाय ८० प्रतिशत के शोषण और दमन पर जीवित है । शोषण और दमन की नीतियों को राज्य तन्त्र से पोषण मिल रहा है ! इसीलिए कहा जाता है कि इस समय दुनिया में अधर्म राज्य चल रहा है । इस अधर्म राज्य ने विभिन्न सम्प्रदायों को ही धर्म मान लिया है । सम्प्रदायों को धर्म की संज्ञा देने से, धर्म के प्रति अनादर भाव पैदा हो रहा है । जगह-जगह धर्म-निरपेक्ष नीतियों की घोषणा हो रही है । सोचने की बात है कि नीतियां यदि धर्म-निरपेक्ष होंगी, तो उनका रूप सहजता से अधर्म-सापेक्ष हो ही जायेगा । इस बिन्दु पर धर्म व अधर्म की व्याख्या आवश्यक है ।

धर्म-अधर्म के चार स्तम्भ

धर्म का अर्थ है स्वभाव, तो धर्म आधारित समाज का क्या स्वाभाव होगा । इसके चार स्तम्भ हैं । सहजता, आपसदारी, स्वयं सेवा, और साझेदारी । जो समाज इन चारों आधारों पर खड़ा हो, वह धार्मिक और जिस समाज के आधार इससे भिन्न हों वह अधार्मिक । जिस तरह धर्म के चार स्तंभ है, उसी तरह अधर्म के भी चार स्तम्भ हैं । संशय, कूटनीति, संस्थावाद, और भोगप्रधान जीवन । इस समय राज्य-तंत्र की पूरी व्यवस्था अधर्म के शिकंजे में है । आम आदमी भी इसको महसूस करता है । लेकिन खुले रूप में इसकी घोषणा करने का साहस किसी को नहीं हो रहा है । क्योंकि धर्म में आस्था रखने वाले भी विभिन्न सम्प्रदायों और मत-मतान्तरों में फंसे हैं । राज्य-तन्त्र का शिकन्जा इन पर भी हावी है । धर्मनीति पर विश्वास तथा आस्था रखने वाला समुदाय तटस्थ बैठा है । इनकी शक्ति का शोषण या तो राज्य-तन्त्र कर रहा है, या सम्प्रदायवादी शक्तियां । परिणाम स्वरूप धर्म की चिनगारी राज्यतंत्र और सम्प्रदायवाद से पूरी तरह से आच्छादित है । ऐसे समय पर ही मानवमूल्यों की रक्षा तथा धर्म संस्थापनार्थाय महापुरुषों का आविर्भाव होता रहा है । इन महापुरुषों ने राज्य के दमन, भोगवादी अर्थनीति के शोषण तथा सम्प्रदायवादी रूढ़ीवाद से आम आदमी को मुक्त कराने के लिये जोख़िम उठाकर भी तत्कालीन अधार्मिक शक्तियों के खिलाफ़ धर्म-युद्ध किये हैं ।

धर्म-युद्ध की परम्पराएँ

मर्यादापुरुषोत्तम राम को बन-बन भटकना पड़ा । कर्मयोगी भगवान् श्री कृष्ण को न चाहते भी युद्ध में उतरना पड़ा । महात्मा गौतमबुद्ध को मानवपीड़ा की वेदना ने राजपाट छोड़ने

को मजबूर कर दिया । तीर्थंकर महावीर ने श्रम, सम (समानता), शम (शान्ति) की समन्वित संस्कृति विकसित की । आद्यगुरु शंकराचार्य को धर्म स्थापना की लगन ने छोटी उम्र में ही दर-दर की ठोकरें खिलाईं । प्रभु ईशु अधर्म के खिलाफ़ लड़ते-लड़ते क्रास पर चढ़ गये । हजरत मुहम्मद ने इसी अधर्म के खिलाफ़ की लड़ाई में अपने पूरे कुनबे को कुर्बान कर दिया । गुरुनानक, कबीर, रैदास, हजरत उमर, रामकृष्ण परमंहस, विवेकानन्द, स्वामी दयानन्द आदि ने धर्म स्थापना हेतु अपना जीवन समर्पित किया ।

अपेक्षित संकल्प

नये संदर्भ में सन्त महापुरुषों को जनता के बीच जाना होगा । जनता को अपने कर्तव्यों के प्रति जागरूक करना होगा । साथ ही उनको इतना शक्तिशाली बनाना होगा ताकि जनता अपने अधिकारों को समझकर उनकी रक्षा कर सके । जनता में जब सहजरूप से आपसदारी स्वयंसेवा और साझेदारी का भाव जगेगा तो धर्म की स्थापना होगी । इसी से सन्त महापुरुषों का भी कर्त्तव्य पूरा होगा । साथ ही उन्हें अपने-अपने साम्प्रदायिक पंथों से ऊपर उठकर धर्म स्थापना के लिए, एकजुट होना होगा । तय करना होगा कि—

१. वर्तमान राज्य-व्यवस्था पूरी तरह अधर्म की दिशा में बह गई है । उसको सही रास्ते पर लाना होगा ।
२. वर्तमान कानून-व्यवस्था तथा प्रशासनिक नौकरशाही तन्त्र अंग्रेज सरकार की ही जूठन है । इससे भारत कभी खुशहाल नहीं हो सकता । इसे बदलना होगा ।
३. सभी सम्प्रदायों और पंथों के धार्मिक पुरुषों को अपने मठ, आश्रम, गद्दियों तथा शिष्यों को धर्म युद्ध के लिए तैयार करना होगा ।
४. पूजा स्थलों, पूजाविधियों तथा अन्य कर्मकाण्डों की विभिन्नता के प्रति उदार भाव रखकर पूरी शक्ति धर्म नीति की स्थापना में लगाना आवश्यक है । ☐

आप भी सोचें

एक गाय कितने मनुष्यों को आहार देती है, इसका अनुमान कठिन नहीं है । गाय औसत १० किलो दूध प्रतिदिन के हिसाब से वर्ष में औसत १० महीने तक दूध देती है तो वह एक वर्ष में ३००० कि० ग्रा० दूध देकर करीब ६००० व्यक्तियों को एक बार तृप्त कर सकती है । यदि वह १५ वर्ष तक दूध दे तो कुल उम्र में नब्बे हजार व्यक्तियों को एक बार तृप्त कर सकती है । किन्तु यदि उसकी हत्या कर उसके मांस का आहार किया जाए तो वह एक हजार व्यक्तियों को भी एक बार तृप्त नहीं कर सकेगी । यही बात बकरी आदि के साथ भी है । इसी प्रकार एक बैल अपने जीवन काल में कम से कम ४०,००० कि० ग्रा० अन्न उत्पन्न कर करीब साठ हजार व्यक्तियों को एक बार तृप्त कर सकता है । इसके अलावा सवारी-गाड़ी, तथा भार ढोने आदि की सेवा अलग से करता है । इन पशुओं के गोबर से ईंधन, खाद गैस, ऊर्जा आदि की अतिरिक्त प्राप्ति भी होती है ।

मांसाहार की मूर्खता से कब छुटकारा मिलेगा ?

मैंने नमन नहीं सीखा है

ओमपाल सिंह 'निडर'

मुझको मेरी कुटिया प्यारी, तुम्हें तुम्हारे महल मुबारक ।
इन ईंटों की ऊंचाई को, मैंने नमन नहीं सीखा है ।।

१

सच्चे मन के मानव की, प्यार भरी फटकार सुहाये ।
लेकिन गिरगिट रूपी उनका, मुझको मीठा प्यार न भाये ।।
जिसमें सत का अंश नहीं है, मुझको वह सत्कार न भाये ।
सब कुछ अच्छा लगता है, पर मानव का व्यापार न भाये ।।
बेईमानी के बल पर, जो ठेकेदार बने बैठे हैं ।
उन लोगों की प्रभुताई को, मैंने नमन नहीं सीखा है ।।

२

तुमने दीवारों की जड़ में, दफ़नाया. जिंदा लाशों को ।
अंगारों की तह के ऊपर बुला रहे हो मधुमासों को ।।
स्वर्ण अक्षरों में लिखते हो, अपने काले अभ्यासों को ।
चांदी के टुकड़े पाकर के, तोड़ दिया सब विश्वासों को ।।
सुन्दर तन के काले मन से, तो काला तन ही अच्छा है ।
क्यों कि नीच सुन्दरताई को, मैंने नमन नहीं सीखा है ।।

३

अपने सुख के लिए फूल सी, मुस्कानों को लूट रहे हो ।
बनते हो प्रिय मित्र मगर तुम, अहसानों को लूट रहे हो ।।
आमन्त्रित कर रंग महल में, ईमानों को लूट रहे हो ।
बहका करके भोले-भाले, इन्सानों को लूट रहे हो ।।
यह तो सच है इतने पर भी, लोग तुम्हें अच्छा कहते हैं ।
ऐसी ओछी चतुराई को, मैंने नमन नहीं सीखा है ।।

४

मेहनत की सूखी रोटी से, अच्छे नहीं तुम्हारे व्यंजन ।
मेरे हाथों की मिट्टी से, अच्छा नहीं तुम्हारा चन्दन ।।
मेरे फटे हुए कपड़ों से, बुरा तुम्हारा उजला दामन ।
क्योंकि रक्त चूंसा है तुमने, मैंने सदा बहाये श्रम कन ।।
बेच-बेच कच्ची कलियों को, माली तुम बन गये चमन के, ।
लेकिन तुमसे अन्यायी को, मैंने नमन नहीं सीखा है ।।

५

जो तन बेच-बेच कर अपना, हर आराम लिया करते हैं ।
केवल मौतिक सुख के खातिर, गन्दे काम किया करते हैं ।।
अंक शायनी बनी गैरों, मय के जाम पिया करते हैं ।
इज्ज़त लेकर जो धन दे दे, उसे सलाम किया करते हैं ।।
उसे प्रगतिशील कह कर तुम, सौ-सौ बार करो अभिनन्दन, ।
किन्तु अधर्मी अंगड़ाई को, मैंने नमन नहीं सीखा है ।।

६

उन आँखों से अन्धा अच्छा, जिन आँखों में नीर नहीं है ।
उस मन से पत्थर अच्छा है, जिसके मन में पीर नहीं है ।।
वैश्यालय और मदिरालय में, बना कोई रणधीर नहीं है ।
भली निपूती पुत्रवती से, जिसका बेटा वीर नहीं है ।।
भौतिकता डस गयी जिसे है और वतन का ध्यान नहीं कुछ ।
ऐसी कामुक तरूणाई को, मैंने नमन नहीं सीखा है ।।

□

धर्म-चेतना, आधार और दिशा

श्री केदार स्वामी जी महाराज

आज के युग में जितना धर्म प्रचार हो रहा है, उतना धर्म का प्रचार शायद कभी नहीं हुआ । फिर भी सब यही कहते हैं कि 'धर्म का लोप हो रहा है' । इसका अर्थ यह हुआ कि धर्म के नाम पर जिस चीज़ का प्रचार हो रहा है, वह कुछ और है तथा जिसका लोप हो रहा है, वह कुछ और है ।

राज्यतंत्र की राख से ढकी धर्म की चिनगारी

धर्म वास्तव में सामाजिक संवेदनाओं से प्रभावित हमारे हृदय की पीड़ा है । भारत में यह पीड़ा समय-समय पर राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, नानक देव, कबीर, तुलसी, चैतन्य महाप्रभु आदि अनेक महापुरुषों द्वारा प्रकट हुई है । इस पीड़ा को दूर करने के लिए जिस शक्ति का आवाहन किया गया, वैदिक ऋषियों ने उसे सविता कहा । सविता याने ज्योति । महात्मा बुद्ध ने उसे विज्ञान कहा, महावीर स्वामी ने उसे जीवात्मा कहा । नानक, कबीर, रैदास, तुलसीदास आदि ने इसका वर्णन अपने-अपने ढंग से किया है । सबने भावरूप नाम दिये । अनुयाइयों ने भाव छोड़ दिया, नाम पकड़ लिये । जहाँ नाम की या शब्द की प्रधानता होती है, वहाँ सम्प्रदाय जन्म लेता है । जैसे ही भाव प्रधान हो जाता है तो सम्प्रदाय की दीवारें ढह जाती है । हृदय के अन्दर ज्योति रह जाती है, सम्प्रदाय नहीं ।

सम्प्रदाय ने हमारे बीच भेद-भाव पैदा किया है । अमुक तरह के कपड़े पहनेंगे, अमुक तरह से प्रार्थना करेंगे, तथा अमुक तरह की रीति रिवाज़ पर अमल करेंगे । इसी कर्मकाण्ड को धर्म मानने से सच्चा धर्म लुप्त हो जाता है । इससे हृदय में संशय पैदा होता है ।

संम्प्रदाय अपनी-अपनी विधियों और कर्मकाण्डों की स्थापना के लिए आपस में लड़ते हैं । समझने की बात है कि जिन महापुरुषों ने देश, काल, पात्र की आवश्यकता को समझ कर, विधियों और कर्मकाण्डों का निर्धारण किया, वह तो उनके मानव प्रेम का द्योतक था । उन्होंने तो इसको सत्य, प्रेम, रहम और अज्ञान दूर करने का माध्यम माना था । उनका हृदय विशाल था, उनकी बुद्धि में संकीर्णता नहीं थी । उन्होंने जो कुछ कहा समस्त मानवजाति के कल्याण के लिए कहा । लेकिन हमने उनके वाक्यों को उपासना के प्रतीकों और उपासना विधियों के साथ बांध दिया । इस प्रकार महापुरुषों द्वारा कहे गये धर्मतत्त्वों को छोड़ कर कर्मकाण्डों को पकड़ लिया । कर्मकाण्डों के प्रचार प्रसार में तलवार का सहारा तक लेना शुरू कर दिया । कर्मकाण्डों की स्थापना का सहारा लेकर राज्य विस्तार होने लगे । इस प्रकार धर्म की आड़ में राज्य-तन्त्र ने साम्प्रदायिक कट्टरता को कानून का रूप दे डाला । राज्य-तन्त्र का आधार तो कूटनीति है, अतः साम्प्रदायिक कर्मकाण्डों की स्थापना में जब राज्य-शक्ति व कूटनीति का इस्तेमाल होने लगा तो सत्य छूट गया । कूटनीति के नीचे धर्म की ज्योति दब गई । इस युग में राजनीति के रूप में कूटनीति अर्थात् अधर्म इतना हावी हो गया है कि राज्य-तन्त्र (अधर्म) की राख ने धर्म की चिनगारी को पूरी तरह से ढक लिया

है । भारत में यह राख धर्मनिरपेक्षता के रूप में प्रकट हुई है । इसने साम्प्रदायिकता और आतंकवाद को बढ़ावा दिया है ।

भारत के सांस्कृतिक इतिहास में रावण का जिक्र आया है । रावण साधारण व्यक्ति नहीं था, तपस्वी विद्वान् था, लेकिन वह धर्मनिरपेक्ष होकर सुवर्ण अर्थात् धन और वैभव के चंगुल में फंस गया था । विज्ञान की शक्तियों का भोग-विलास के लिए इस्तेमाल करना शुरू कर दिया था । भोग-विलास के साधन प्राप्त करने के लिए समाज में वर्जनाहीन भोगपरायण शोषण और दमन फैलने लगा । विश्वामित्र जैसे ऋषियों ने युग परिवर्तन की व्यूह रचना करके रावणी विकृति का नाश कराया ।

ऋषियों द्वारा रावणी वृत्ति का नाश सम्भव

आज भी वही समय उपस्थित है । ज्ञानी, तपस्वी, प्रभावशाली व्यक्ति भोग विलास और वैभव के प्रभाव में आकर आम जनता का शोषण और दमन कर रहे हैं । समाज में अनियन्त्रित भोगविलास को प्रगतिशीलता की मान्यता प्राप्त हो गई है । भोगविलास के लिए विज्ञान का सहारा लेकर प्रकृति के शोषण, दोहन के अवैज्ञानिक तरीकों ने पर्यावरण के नये सवाल खड़े कर दिये हैं । सारी दुनिया त्रस्त है । धर्मनीति, राजनीति, अर्थनीति और संस्कृति पर पाखण्डी, पापी, व सबल वर्गों का अधिकार है । सच्चे सन्त, ज्ञानी, न्याय प्रिय, ईमानदार तथा धार्मिक व्यक्तियों का अभाव हो गया है । यदि वे कहीं हैं भी तो उनका अस्तित्व खतरे में पड़ा है । फलस्वरूप न केवल भारत में बल्कि सारी दुनिया में असन्तुलन, अन्याय, अत्याचार का साम्राज्य फैला हुआ है ।

पश्चिमी जगत् राजनीति की भाषा में नीतियों को समझता है, जब कि भारतीय जन-जीवन धर्म की भाषा में ही नीतियों को समझ पाता है । धर्म भारतीय जींवन का मेरुदण्ड है । परन्तु वर्तमान भारत में धर्म को केवल परलोक की चीज़ बना कर संकुचित कर दिया है और जन-जीवन को धर्मनिरपेक्ष, भ्रष्ट संसदीय राज्य-तन्त्र के हाथ में सौंप दिया है । स्थिति इतनी बिगड़ गई है कि जन-जीवन पर छाई अधर्म की काली छाया को मिटाना आवश्यक हो गया है । धार्मिक पुरुष एक जुट होकर अधर्मरूपी राज्य-तन्त्र की काली छाया को मिटाने के लिए धर्मयुद्ध भी करने के लिये मजबूर हो गये हैं । सन्तों से मार्ग दर्शन की अपेक्षा है । ☐

शाकाहारी भोजन की लोकप्रियता

शाकाहारी भोजन के गुणों को जान कर अब पाश्चात्य देशों में शाकाहारी आन्दोलन तेज हो रहा है । अमेरिका में सलाद बार अत्यधिक लोकप्रिय हो रहे हैं । यहाँ से ग्राहक सलाद की भरी भराई प्लेटें व बन्द डिब्बे घर ले जा सकते हैं । सब्जियों के साथ अंकुरित चने आदि भी मिला कर विभिन्न प्रकार के सलाद बनाये जाते हैं ।

अमेरिका में तो पूर्णतः शाकाहारियों की संख्या पांच करोड़ तक पहुँच चुकी है ।

ब्रिटेन में अब शाकाहार से जुड़े लोगों को माडर्न और आधुनिक विचारों वाला माना जाता है । ब्रिटेन के दस लाख से अधिक लोग अब पूर्णतः शाकाहारी हैं । और इस संख्या में आश्चर्यजनक वृद्धि हो रही है । वहाँ १००० से अधिक हैल्थ फ़ूट शाप हैं, जिनमें सिर्फ शाकाहार से सम्बन्धित व्यंजन पाये जाते हैं ।

सच्ची धर्म चेतना

महन्त श्री रामस्वरूप दास जी महाराज

जब-जब धर्म की हानि होता है, अधर्म बढ़ता है, स्वयं धर्म ही धर्माचार्यों का आवाहन करता है । इस समय धर्म स्वयं ही संसार के समस्त संवेदनशील सच्चे धर्माचार्यों का आवाहन कर रहा है । सन्त चेतना मानवीय न्याय के लिए कृतसंकल्प, सभी धार्मिक क्रान्तिनिष्ठ व्यक्तियों को चिन्तन के लिए प्रेरित, आमन्त्रित करती है ।

आम आदमी का संकट

आम आदमी अपनी सुख-शान्ति और सुरक्षा के लिए दो शक्तियों की तरफ उम्मीद भरी निगाह से देखता है । एक है राज्य की शक्ति और दूसरी है धर्म की शक्ति ।

एक समय ऐसा आया, जब धर्म की शक्ति में ठहराव आ गया । राज्य की शक्ति उस पर हावी हो गई और इसका विकास होता चला गया । इस युग में राज्य की शक्ति शस्त्र-शक्ति के रूप में सारी मानवता को आतंकित किये हुए है । मारक अस्त्र-शस्त्रों का जितना बड़ा जख़ीरा जिसके पास होगा, वही दुनिया को अपने कब्जे में रख सकेगा । अतः दुनिया में शस्त्र-संग्रह की होड़ शुरू हो गई है । शस्त्र-संग्रह की इस होड़ ने संसार के सभी राष्ट्रों को कठपुतली बना रखा है । दुनिया के सभी देश किसी न किसी रूप में आन्तरिक कलह से परेशान हैं । आन्तरिक कलह को दबाने के लिए सरकारी दमन चक्र तेज करना पड़ता है । अतः एक तरफ तो साम्प्रदायिक, आतंकवादी या विघटनकारी तत्त्वों की उच्छृंखलता तथा दूसरी तरफ निरंकुश राज्य-तन्त्र का दमन । इन दोनों के बीच आम आदमी का जीवन असुरक्षित हो गया है ।

ऐसे संकट के समय में विचारशील, धर्म-प्रेमी, मानव-प्रेमी, संवेदनशील मनुष्यों की जिम्मेदारी बहुत बढ़ जाती है । क्योंकि इस समय सारे संसार को आपसी सद्भाव, परस्पर विश्वास, प्यार व रहम की जरूरत है । यह सब कहाँ मिलेगा ? अस्त्र-शस्त्र के भंडारों में तो यह मिलेगा नहीं । धर्म-निरपेक्ष सम्प्रदायवादी राज्य-व्यवस्था के पास भी नहीं मिलेगा । साम्प्रदायिक व पांथिक गुटों में फंसा कर्मकाण्ड भी मानव समाज में गुण-वर्धन की शक्ति नहीं रखता । इसके लिए तो एक ऐसी सार्वभौम धर्म-भावना की आवश्यकता है, जो वैज्ञानिक आधारों पर विकसित हुई हो । सबको समाधान दे सके तथा जिसमें सामयिक समस्याओं के समाधान की बहुआयामी शक्ति हो ।

समरसता क्यों नहीं ?

बहुआयामिक, सार्वभौम, वैज्ञानिक-धर्म की अगुआई भारत कर सकता है । क्योंकि यहाँ

वेदान्त और सांख्य दर्शनों के कारण विचार स्वातन्त्र्य और स्वधर्माचरण को व्यापक समर्थन-प्राप्त है । कहा गया है—

एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति ।

अर्थात्—विद्वानों ने एक ही सत्य का विभिन्न प्रकार से वर्णन किया है ।

इसी आधार पर भारतीय सीमा में उदय हुए अनेक पंथ सदियों से अपने-अपने परिवेश में साथ-साथ चल रहे हैं । परन्तु भारतीय सीमा के बाहर यूरोप और अरब में उदय हुए ईसाई और इस्लाम सम्प्रदायों के साथ भारतीय सम्प्रदायों की समरसता नहीं बन पाई है । इनके साथ समरसता न बनने का एक बहुत बड़ा कारण अल्पसंख्यकों के नाम पर तुष्टिकरण की नीति है । इस नीति का उन्मूलन करने के लिए ही हिन्दू-राष्ट्र भारत की स्थापना करना आवश्यक है । हिन्दू-राष्ट्र भारत की स्थापना होने पर वह दिन दूर नहीं रहेगा, जब भिन्न-भिन्न तरीके से पूजा करने के स्थलों और पूजा-पद्धतियों को अपनाने वाला, भारत सबके लिए समान कानून की व्यवस्था करके सहज रूप से सबको आत्मसात कर लेगा । ऐसा होने से यूरोप और अरब में उदित पंथों के साथ भी परस्पर सद्भाव बनेगा । यह सद्भाव मूल रूप से धर्म की असली शक्ति को प्रकट करेगा । सम्प्रदायों और मतों की यह समन्वित शक्ति पांथिक-असहिष्णुता, सम्प्रदायवाद तथा उच्छृंखल राज्य शक्ति को नई दिशा देकर नियन्त्रित करने का काम करेगी । सार्वभौम धर्म-शक्ति का आधार सद्भाव, प्रेम और रहम है । अतः इस दिशा में बढ़ने से लोक जीवन के सभी क्षेत्रों में समाधान मिल सकेगा ।

सर्वसम्मत उद्घोष के बिन्दु

प्रथम चरण के रूप में सार्वभौम धर्म की इस शक्ति को उजागर करने के लिए सभी पंथ सम्प्रदायों को उदारता पूर्वक एकजुट होना होगा । साथ ही सामयिक चुनौती का मुकाबला करने के लिए हिम्मत से धर्म उद्घोष करना होगा । उद्घोष के आधार बिन्दु निम्नलिखित हो सकते हैं ।

१. सभी सम्प्रदायों के प्रमुख व्यक्तियों तथा संवेदनशील मनीषियों की सहमति से वैज्ञानिक युग की चुनौतियों को स्वीकार करके उनका समाधान करने के लिए एक सार्वभौम-धर्म पंथ का निर्धारण किया जावे तथा भारत में सबके लिए समान कानूनों की व्यवस्था हो ।

२. पांथिक सम्प्रदायों की भावनात्मक विभिन्नताओं का आदर करते हुए, सद्भाव, प्रेम और करुणा के बुनियादी आधारों को प्रधानता दी जावे । पांथिक सम्प्रदायों में दूसरों के प्रति घृणा भाव और क्रूर भावों को पैदा करने वाले कर्मकाण्डों का बहिष्कार किया जावे ।

३. राज्य केवल व्यापक व्यवस्थाओं के लिए नियम उपनियम बनावे । मानव के व्यक्तिगत तथा भावनात्मक जीवन के नियमों में दखल न दे । जो भी नियम उपनियम बने, वे सभी नागरिकों के लिए बिना भेदभाव के समान रूप से प्रभावी हों । सम्प्रदाय विशेष को ध्यान में रख कर कोई कानून न बने ।

४. सभी पूजा स्थल, राज्य के नियन्त्रण से मुक्त हों । इसके लिए सभी पंथों की मिली जुली धर्म-परिषद जिम्मेदार हो । यह धर्म-परिषद विश्व-बन्धुत्व के आधार पर गठित हो और उसी आधार पर काम करे ।

५. धर्म प्रेमियों को सभी धर्म-स्थलों पर पूजा करने की खुली सुविधा हो ।

६. धर्म को भाषा, राष्ट्र, पूजा पद्धतियों और पूजा घरों के दायरों में न बाधा जावे । धर्म सार्वभौम हो । उसके मूलभूत सिद्धान्त भी सार्वभौम हों । इसके लिये यह सूत्र आधार बन सकता है—

यमानि सेवे नित्यम् न नित्यम् नियमानि बुधाः ।

अर्थात्—बुद्धिमान लोग धर्म के बुनियादी सिद्धान्तों जैसे सत्य, शान्ति, चोरी न करना, संयमित जीवन, अंसग्रह आदि यमों का दृढ़ता से पालन करने का आग्रह रखते हैं, लेकिन कर्मकाण्डों जैसे पूजा की पद्धति, पोशाक, खान, पान आदि में उदारता बरतने का उपदेश देते हैं ।

सार्वभौम धर्म परिषद का राजतन्त्र पर नीतिगत नियन्त्रण हो

इस प्रकार विज्ञान युग की आवश्यकताओं के आधार पर सार्वभौम युग धर्म की स्थापना से संसार में आम आदमी की सुख-शान्ति सुरक्षित होगी । धर्म के मूलभूत आधार, सत्य मुहब्बत और रहम मजबूत बनेंगे । अस्त्र शस्त्रों की होड़ पर नियंत्रण करके संसार को सर्वनाश की ओर बढ़ने से बचाया जा सकेगा । विघटनकारी असहिष्णु सम्प्रदायवाद समाप्त होगा ।

उच्छृंखल राज्य-तन्त्र सार्वभौम धर्म नीति से नियन्त्रित और अनुशासित होकर संस्कृति के संरक्षण और विकृति के शमन के लिए प्रतिबद्ध होगा ।

ऐसा होने पर संसार को संहारक शक्तियों की कठपुतली नहीं बनना पड़ेगा, साथ ही सम्प्रदायवाद और आतंकवाद का शिकार होने से दुनिया को बचाया जा सकेगा ।

सार्वभौम धर्मभावना को उजागर करने, तथा उसे व्यापक करने, के लिए यह सिद्ध करना होगा कि मानव समाज में उठने वाली समस्याओं का समग्र रूप से समाधान करने की क्षमता धर्म में है ।

सारे संसार में लेकिन विशेषरूप से भारत में आतंकवादी और सम्प्रदायवादी तत्त्वों के कारण मानव की सुख-शान्ति और सुरक्षा पर जबरदस्त हमला हो रहा है । राज्यशक्ति इसको शस्त्रबल से दबाना चाहती है । हम मानते हैं कि इन मानवीय समस्याओं का समाधान शस्त्र बल नहीं है । आम आदमी की बुनियादी धर्म-भावना का सम्प्रदाय विशेष के नाम पर शोषण करने वाले तत्त्वों का मुकाबला करने के लिए आम आदमी की मूलभूत धर्म-भावना को जगाना होगा ।

इस काम के लिए सच्चे और निःस्वार्थ धर्म-पुरुषों को संकीर्णताएँ छोड़ कर साम्प्रदायिक कर्मकाण्डों से ऊपर उठ कर सार्वभौम धर्म-चेतना का उद्घोष करना होगा ।

धर्म की जय हो, अधर्म का नाश हो ।

प्राणियों में सद्भावना हो, विश्व का कल्याण हो । □

मुक्ति संग्राम की धर्म-नीति

श्री स्वामी गिरीशानन्द जी महाराज

लम्बे समय से धर्म-नीति का सम्बन्ध मनुष्य की व्यक्तिगत मुक्ति या निर्वाण मार्ग से ही माना गया है । इसीलिए आमतौर पर धर्म का क्षेत्र पूजापाठ, उपासना, साधना तक ही सीमित है । इस मान्यता ने धर्म के क्षेत्र और धर्म की नीति को सीमित बना दिया है । लेकिन भारत में जिस धर्म-विचार का चिन्तन हुआ है, वह मात्र व्यक्तिगत मुक्ति का माध्यम नहीं है । भारतीय चिंतन के अनुसार संसार की शोषित-पीड़ित, दलित मानवता को, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक दासता से मुक्ति दिलाने की नीति का नाम ही धर्म-नीति है । आधुनिक समाज में धर्म नाम से एक चिढ़ सी पैदा हो गई है, धर्म-नीति से चिढ़ पैदा होना स्वाभाविक है, क्योंकि धनपतियों राजनितिज्ञों और प्रशासकों की मिली जुली सांठ-गांठ ने स्वार्थवश धर्म को बहुत सीमित कर दिया है । परन्तु भारतीय परम्परा कहती है किं अनीति, अन्याय, दुराचार के विरुद्ध लड़ना ही धर्म है । गीता, रामायण, महाभारत, श्रीमद्‌भागवत पुराण, दुर्गासप्तसती आदि सभी में धर्म-युद्ध का उपदेश है । अतः धर्म की सच्ची नीति धर्म-युद्ध के द्वारा व्यक्ति तथा समाज को अनीति, अन्याय-शोषण और दमन से मुक्ति दिलाना है ।

वर्तमान युग में राज्यतन्त्र ने शस्त्रास्त्रों से लैस होकर धर्म-विरुद्ध आचरण करना शुरू कर दिया है । यह राज्यतन्त्र चाहे जन प्रतिनिधियों द्वारा चलाया जाता हो, चाहे मजदूर की तानाशाही के नाम पर हो या मात्र सेवा के नाम पर हो, सबका मूल चरित्र ६० प्रतिशत पर १० प्रतिशत का शासन ही है । इसलिए सब प्रकार की सत्ताओं के खिलाफ, शोषण के विरुद्ध तथा सामाजिक अन्याय और कुरीतियों के विरुद्ध धर्म-युद्ध करना आज की धर्म-नीति है । इस नीति के अन्तर्गत संसार के सब धर्म प्रेमियों को संगठित कर विश्व-कल्याण के लिए, मानव-धर्म की प्रतिष्ठा के लिए, आधुनिक-वैज्ञानिक संदर्भों में, युगानुकूल पद्धति से, धर्म-युद्ध की नीति-निर्धारण करना जरूरी हो गया है । सार्वभौम धर्न-भावना इस धर्म-नीति का आधार बनेगी । इसी के निर्देशन में, शोषित, पीड़ित, दलित मानवता का मुक्ति-संग्राम छेड़ना होगा ।

सार्वजनिक रूप में पूजापाठ, उपासना, साधना, यज्ञ तथा अनुष्ठान आदि इसके सशक्त माध्यम होंगे । ❑

मनुष्य जीवन केवल व्यक्तिनिष्ठ न बनकर समाज-जीवन के साथ एकरूप हो, तभी हमारा स्वहित सध सकता है । वैसी निष्ठा समाज में निर्माण करना, आध्यात्मिक और नैतिक जीवन मूल्यों पर आधारित व्यक्ति की अस्मिता जागृत कर, उन्हें सर्वदेशीय कर्तव्य के प्रति जागृत करना हरएक का परम कर्तव्य है ।

मानव जाति के कल्याण का मार्ग

म० मं० स्वामी रामानन्द जी रमतेयोगी

इन दिनों भारत में साम्प्रदायिकता का विरोध करने का एक फैशन सा हो गया है । जगह-जगह साम्प्रदायिकता विरोधी सम्मेलन हो रहे हैं । तमाशा यह है कि हिन्दू समुदाय के बुद्धिजीवी अपना नाम प्रगतिशीलों में लिखाने के लिए हिन्दू समुदाय को ही सम्प्रदायवादी घोषित कर रहे हैं । दूसरी तरफ कुछ बुद्धिजीवी इस्लाम और ईसाइयत की तरह हिन्दू धर्म को भी साम्प्रदायिक संस्थावादी जामा पहनाना चाहते हैं । इन्होंने थोड़ी भी गम्भीरता और संजीदा ढंग से सोचा होता तो इतनी बड़ी भूल नहीं करते । क्योंकि हिन्दू समुदाय ही एक ऐसा समुदाय है, जो सम्प्रदायवाद से कोसों दूर है । हिन्दू समुदाय अनेक सम्प्रदायों से मिलकर बना है । इसलिए साम्प्रदायिक सहिष्णुता अगर कहीं है, तो केवल हिन्दू समुदाय में ही है । हिन्दू समुदाय के अन्दर साम्प्रदायिक कट्टरता तथा साम्प्रदायिक रूढ़ियों का खुलकर खंडन किया जा सकता है । खंडन करने वालों का बहिष्कार नहीं किया जाता । आर्य समाज वाले मूर्तिपूजा का खंडन करते हुए भी हिन्दू हैं । सनातन धर्मी साकार निराकार दोनों को मानते हुए भी हिन्दू हैं । छुआछूत मानने वाले ब्राह्मण का पुत्र भी अपने पिता के छुआछूत वाले आचरण का विरोध कर सकता है । सवर्ण वर्गों में अनेक सुधारक ऐसे हो गये हैं, जिन्होंने धर्म-ग्रन्थों में लिखी अनेक बातों का खुलेआम विरोध किया, लेकिन हिन्दू समुदाय से उनको बहिष्कृत नहीं किया गया ।

विचार स्वातन्त्र्य की मान्यता

हिन्दू धर्म ने गुरुपन्थों व सम्प्रदायों की विविधता को सिद्धान्ततः स्वीकार किया है । इसके लिए हिन्दू शास्त्र का यह वचन प्रसिद्ध है—'एकं सद् विप्राः बहुधा वदन्ति'—अर्थात्—सत्य एक ही है लेकिन महापुरुषों ने उसका अनेक प्रकार से (देश, काल, पात्र के अनुसार, अनेक भाषाओं में) वर्णन किया है । इसका अर्थ यह होता है कि सत्य शोधकों को हिन्दू धर्म ने आदर और सम्मान दिया है । कर्मकाण्डों की विविधता, पूजा पद्धितियों की विविधता, पूजाघरों की विविधता, ग्रन्थों की विविधता, अनेक गुरुपंथों का स्वीकारना तथा भिन्न विचार रखने वाले गुरुओं को सम्मानित स्थान प्रदान करना हिन्दू धर्म का विशेष गुण है । इतना ही नहीं ईश्वर के अनेक रूपों को मानने वालों तथा ईश्वर को न मानने वालों को भी हिन्दू समुदाय हिन्दू कहने में नहीं हिचकता । इतना विचार स्वातंत्र्य है कि हिन्दू-दर्शन में सत्य की खोज के लिए ग्रन्थ, पंथ और सन्त के विचारों को अंतिम प्रमाण नहीं माना गया है । वेद, उपनिषद् आदि ग्रन्थों ने नेति-नेति कहकर सत्य खोजने की प्रवृत्ति को खुली छूट दी है । प्रभु ईसामसीह तथा हज़रत मुहम्मद साहब को पूरा आदर देने वाले हिन्दूओं को हिन्दू समुदाय ने कभी भी पृथक् नहीं माना ।

धर्म के शाश्वत मूल्य एवं पंथ के कर्मकाण्ड

हिन्दू धर्म की मान्यता है कि सम्प्रदाय या पंथ किसी महापुरुष द्वारा विशेष परिस्थितियों में प्रारम्भ किया जाता है । देश, काल और पात्र को ध्यान में रखकर धर्माचरण के लिए समय-समय पर कर्मकाण्ड निश्चित किये जाते हैं । वे सार्वभौमिक एवं सार्वत्रिक नहीं हो सकते । इसलिए हिन्दू धर्म के दो विभाग हैं : एक शाश्वत मूल्यों का पक्ष, तथा दूसरा कर्मकाण्ड का पक्ष । शाश्वत मूल्यों के पक्ष को यम तथा कर्मकाण्ड के पक्ष को नियम कहा है । शाश्वत मूल्यों तथा कर्मकाण्डों के सम्बन्ध में नीति वाक्य कहा गया है—

यमानि सेवे नित्यम् न नित्यम् नियमान् बुधाः

अर्थात्—यम नित्य सेवनीय हैं लेकिन बुद्धिमान मनुष्य नियमों के विषय में अनाग्रह रखें।

यम पाँच हैं—१. अहिंसा, २. सत्य, ३. चोरी न करना, ४. संयम का जीवन, ५. संग्रह न करना ।

नियम भी पाँच प्रकार के हैं—

१. स्वच्छता के नियम (शौच) ।

२. वेषभूषा, खान, पान, रीति-रिवाज आदि के नियम (संतोष) ।

३. पूजा विधि, साधना के नियम, आराधना की पद्धति आदि (तप) ।

४. ग्रन्थों के प्रति आस्था, ग्रन्थों का पारायण, आदि-आदि (स्वाध्याय) ।

५. ईश्वर विषयक मान्यता में उसके स्वरूप की पूजा, यज्ञ अथवा शक्ति की आराधना या ईश्वर को न मानना आदि-आदि (ईश्वर प्रणिधान)

इस प्रकार हिन्दू धर्म एक व्यापक चेतना में विश्वास रखने वाला धर्म है । इसमें साम्प्रदायिकता व पांथिकता की कट्टरता को कतई स्थान नहीं है । इसमें कट्टरपंथी भी रह सकता है और उदारवादी भी । कट्टरपंथी और उदारवादी में कोई सत्ता संघर्ष नहीं है ।

सामाजिक बुराइयों के परिष्कार की व्यवस्था

हिन्दू-समाज में पंथ या सम्प्रदाय के आधार पर राज्याधिकार और राज्य द्वारा सुविधाओं के बटवारे का प्रावधान भी नहीं है । हिन्दू धर्म की मान्यता है कि धर्म से भावना और संस्कार बनते हैं तथा राज्य उसके अनुसार चलाने का तन्त्र है । हिन्दू धर्म की व्यापकता और पांथिक सहिष्णुता का प्रमाण इससे अधिक क्या हो सकता है कि हिन्दुओं के धार्मिक उद्घोष सार्वभौमिकता और सार्वत्रिकता से भरपूर हैं—

'धर्म की जय हो, अधर्म का नाश हो, प्राणियों में सद्भावना हो, विश्व का कल्याण हो', ये उद्घोष कभी किसी का बहिष्कार नहीं कर सकते । सबको गले लगाने वाले धर्म का नाम ही हिन्दू धर्म है । पंथों की कट्टरता को हिन्दू धर्म सहन करता है । परन्तु एक पंथ की कट्टरता यदि दूसरे पंथ को हानि पहुँचाये तो ऐसी कट्टरता सहन करने लायक नहीं है । हिन्दू धर्म के अन्तर्गत जितने पंथ हैं, उनकी कट्टरता कभी-कभी सीमा पार कर जाती है । जैसे वैष्णवों की छुआछूत, शाक्तों की बलि प्रथा, जैनों की स्थूल अहिंसा, आर्य समाजियों का मूर्ति

पूजा विरोध, सनातनियों की मूर्तिपूजा का टुटका व अन्धविश्वास तक चले जाना । हिन्दू धर्म में कट्टरता के कारण जो सामाजिक बुराइयां आ जाती हैं, उनके परिष्कार की व्यवस्था को स्वीकार किया जाता है । लेकिन ईसाइयों और मुसलमानों में पांथिक रूढ़िवादिता के खिलाफ़ आवाज नहीं उठाई जा सकती । मुस्लिम सम्प्रदाय के सूफी सन्त फकीरों के मजारों को अधिकांश हिन्दू ही पूजते हैं । मजार के पुजारियों का आदर भी करते हैं । परन्तु इस्लाम की उस कट्टरता का विरोध करते हैं, जो दूसरों को नफ़रत करना सिखाये ।

इस्लाम में पांथिक संकुचितता

भारत में इस्लाम का प्रवेश आततायी और लुटेरे बादशाहों के रूप में हुआ । इस्लाम के नाम पर जिन लुटेरे बादशाहों ने भारत में आकर राम, कृष्ण और शिव मन्दिरों को ध्वस्त करके मस्जिदों का निर्माण कराया, इस्लाम की पवित्र किताब कुरान शरीफ के अनुसार वे मुसलमान नहीं थे । क्योंकि कुरान शरीफ में स्पष्ट निर्देश है—"ए मुहम्मद ऐसी मस्जिद में नमाज़ पढ़ने न जाना, जिसकी नींव किसी के आँसुओं पर रखी गई हो, क्योंकि वहाँ पढ़ी गई नमाज़ मुझे कत्तई कुबूल नहीं होती ।" सभी मुसलमान इस बात को जानते हैं । भारत में हजारों मस्जिदें ऐसी हैं जो मन्दिर तोड़कर बनाई गई हैं, किसी मुसलमान को यह हिम्मत नहीं होती कि खुलेआम मुसलमानों के बीच कुरान शरीफ की हिदायतों के अनुसार ऐसी मस्जिदों में नमाज पढ़ने का बहिष्कार कर सके । इसी प्रकार कुरान शरीफ में लिखा है कि उहराम के महीने (रमजान, जिलहिज व मुहर्रम) बीतने पर मूर्ति पूजकों के साथ हुए सब समझौते तोड़ दो । उनकी घात में बैठो, जहाँ पाओ उनको घेरो, कत्ल से कुफ्र बुरा है । काफिरों को अपना दोस्त न बनाओ । जो कुछ धन काफिरों को मार कर लूटा है, वह मालेगनीमत है । उसका एक तिहाई खलीफा को दो । लूटी हुई औरतों के साथ जिनहकारी सबाब है । इसी प्रकार मुता के नाम पर हर मुसलमान को हक़ है कि किसी भी औरत को दो घण्टे से दो दिन तक के लिए अपनी बीवी बना ले ।

कुरान शरीफ अरब देश के हालात में नजूल हुई थी । इस ग्रन्थ में दारुल इस्लाम (जहाँ पूरी तरह इस्लाम के कानून चलते हैं) एवं दारुल हरब (जो इस्लाम के दुश्मन हैं) के लिए ही हिदायतें हैं । हिन्दुस्तान न दारुल इस्लाम है और न दारुल हरब । कुछ मुसलमान विद्वान् इसे दारुल अमन कहते हैं । अतः हिन्दुस्तान में रहने वाले मुसलमानों के लिए नई हदीस बनानी होगी । कुरान शरीफ में ऐसी भी आयतें हैं, जिनमें कहा गया है कि ये आयतें केवल अरब में रहनेवालों के लिए हैं । दुनिया के दूसरे हिस्सों में भी रसूल पैदा होंगे, जो वहाँ की भाषा में हिदायतें देंगे ।

कुरान शरीफ तथा हदीस की इन तथा ऐसी दूसरी हिदायतों के खिलाफ कोई मुसलमान अपने समाज के बीच आवाज नहीं उठा सकता । विरोध में आवाज़ उठाने वालों को काफिर घोषित कर दिया जायेगा । इसलिए सच्चा मुसलमान भी इस्लाम की गलत बातों का विरोध करने से डरता है । इसके अलावा हिन्दुस्तान में मुसलमानों की कट्टरता और साम्प्रदायिकता को बहुत बढ़ावा मिला है । महात्मा गांधी के द्वारा भी जाने अनजाने में इस्लाम की कट्टरता

को समर्थन मिला ही है । इसी प्रकार अपने को सेक्यूलर या पंथ निरपेक्ष कहलाने वाली जमात ने हिन्दुस्तान के मुसलमानों को राष्ट्रीय भावना से जोड़ने के बजाय इस्लामियत से जोड़ने में अधिक सहायता पहुँचाई है । आज़ाद भारत के संविधान ने भी अल्पसंख्यकों के नाम पर मुसलमानों व ईसाइयों के लिए विशेष सुविधाओं का प्रावधान करके उनकी साम्प्रदायिक कट्टरता को बढ़ावा दिया है । परिणाम स्वरूप उदार हिन्दू धर्म के अनेक पंथों को अल्पसंख्यकों की सुविधाएँ प्राप्त करने का लालच बढ़ने लगा है । इससे हिन्दुस्तान में सम्प्रदायवादी प्रवृत्ति बढ़ रही है । संविधान की भूलों के कारण इस्लाम और ईसाइयत की संकुचितता का प्रभाव दूसरे पंथों पर भी पड़ रहा है ।

संविधान ने सम्प्रदायवाद को बढ़ाया

हिन्दुस्तान में अनेक पंथ सम्प्रदाय हैं । अनेक जाति और पेशे हैं । अनेक विकसित भाषाएँ हैं । अनेक सांस्कृतिक अस्मिताएँ हैं । हिन्दुस्तान एक ऐसी फुलवारी है, जिसमें अलग-अलग रंग, सुगन्ध और शोभा वाले फूल एक साथ खिल सकते हैं, विकसित हो सकते हैं । सदियों से यह क्रम चल भी रहा है । यह करिश्मा हिन्दू धर्म की ही देन है । हिन्दू धर्म की उदारता और सहिष्णुता ने भारत में अनेक पंथ सम्प्रदायों को अपनी तरह से विकसित होने के अवसर प्रदान किये हैं । हिन्दू संस्कृति वाले देश में ही कहा जा सकता है कि—

मजहब नहीं सिखाता आपस में वैर रखना,
हिन्दी हैं हम वतन है हिन्दोस्तां हमारा ।।

लेकिन अफसोस है कि हिन्दुस्तान आज़ाद होने के बाद वह हिन्दुस्तान नहीं रहा, इण्डिया हो गया । हिन्दुस्तान को इण्डिया बनाकर हमारे नेताओं ने उसे भाषा, पथ, जाति, क्षेत्र, उपजाति एवं आदिवासी व अनुसूचित जनजातियों में विभाजित कर दिया । संविधान की इस भूल ने हिन्दुस्तान में सम्प्रदायवाद को बढ़ाया है । सभी प्रकार की पांथिकता व सम्प्रदायवाद को समाप्त करने के लिए संविधान में परिवर्तन करना होगा, साथ ही हिन्दू धर्म को उसके सैद्धान्तिक आधारों पर विकसित होने के अवसर देने होंगे ।

हिन्दू धर्म को अनुदार न बनाओ

कुछ लोग प्रतिक्रिया वश हिन्दू धर्म को भी एक सम्प्रदाय या पंथ का रूप देने की कोशिश करना चाहते हैं । इस्लाम और ईसाइयत की नकल करके हिन्दू धर्म को संस्थात्मक पंथ में बदलना चाहते हैं । लेकिन उनका यह प्रयास सफल नहीं होगा । क्योंकि हिन्दू धर्म सहज स्वाभाविकता, पारस्परिकता, स्वावलम्बन, एवं साझेदारी के विचारों पर आधारित एक ऐसा स्वयं प्रेरित धर्म है, जो अनगिनत आघात सहकर भी सदा सर्वदा मानव समाज को भावनात्मक एकता की ओर अग्रसर करता रहेगा । किसी कवि ने सत्य ही कहा है—

यूनान मिश्र रूमां सब मिट गये जहाँ से,
फिर भी अभी है बाकी हिन्दोस्तां हमारा ।

हिन्दुस्तान के तत्त्वज्ञान में पूर्ण विराम कहीं नहीं है । वह तो नेति-नेति है । हिन्दू धर्म

को पोषण देने वाले मनीषियों ने सत्य की खोज के रास्ते को किसी पैगम्बर, पुस्तक या परम्परा में बांधकर इतिश्री नहीं की है । हिन्दू धर्म का मनीषी तो हमेशा यही कहता रहेगा—

आनो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः ।

अर्थात्—विश्व भर के उत्तम विचारों को हमारें पास आने दो । इसका तात्पर्य यह होता है कि विश्व भर के उत्तम विचारों का हम आदर करते हैं । अतः जो महानुभाव हिन्दू-धर्म पर साम्प्रदायिक होने का लांछन लगाते हैं, वे सब अंधेरे में हैं, अज्ञान में हैं । हिन्दू-धर्म के मर्म तक वे नहीं पहुँचे हैं । लेकिन दूसरे जो समझ-बूझ कर हिन्दू-धर्म को एक पंथ या सम्प्रदाय बनाकर उसका संस्थीकरण (Institutionalisation) करना चाहते हैं, वे भी हिन्दू-धर्म को नहीं समझे हैं, घोर अन्धकार में हैं ।

हिन्दू धर्म के मर्म को समझो

हिन्दू धर्म के मर्म को पहचानने व समझने के लिए निम्नलिखित पांच सूत्र मार्गदर्शक हो सकते हैं—

१. धर्म विचार सब प्रकार के पांथिक और साम्प्रदायिक चिन्तन से मुक्त सार्वजनिक और सार्वभौमिक कल्याण का सूचक होता है ।

२. धर्म विचार की प्रामाणिकता को पुस्तक, पुरुष और परम्परा के कर्मकाण्डों के दायरे में सीमित नहीं किया जा सकता । उसकी प्रामाणिकता का आधार जीवन के शाश्वत मूल्य तथा सामयिक सहचिन्तन की परिषदों और उपनिषदों से विकसित होता है । अतीत काल की नैमिषारण्य में हुई अठासी हजार ऋषियों की परिषद उसका उदाहरण है । शास्त्र सम्मत नीतियां हर सन्दर्भ में मार्गदर्शन के लिए उपस्थित रहती हैं ।

३. धार्मिक पुरुषों की पहचान सम्प्रदायवादी व पांथिक उपाधियों से नहीं, बल्कि उनकी गुणात्मक संवेदनशीलता व आचरण से आंकी जायेगी ।

४. मनुष्य को कर्म एवं धर्माचरण की प्रेरणा किसी प्रकार के इनाम के लालच (स्वर्ग के सुख) या सजा के भय (नर्क की यातना) से मुक्त कर्त्तव्यभाव एवं स्वधर्माचरण से होनी चाहिये ।

५. सामाजिक, धार्मिक व आध्यात्मिक कर्मकाण्डों का नीति निर्धारण देश, काल, पात्र के आधार पर, व्यक्ति समाज और प्रकृति के सम्बन्धों को सन्तुलित बनाये रखने के लिए है, परन्तु जीवन के शाश्वत आधार अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, असंग्रह स्थाई हैं ।

हिन्दू धर्म के व्यापक उदार आधारों की गहराई को समझो । उस पर साम्प्रदायिकता और पांथिकता का लांछन न लगाओ । उसको संस्थावादी ढांचे में बन्द करने का प्रयत्न न करो ।

संसार को सच्चा मार्गदर्शन करने तथा सत्य की दिशा में सतत् अग्रसर होने के मूलभूत आधार हिन्दू धर्म में छिपे पड़े हैं, उन्हें उजागर करने से मानव-जाति के कल्याण का मार्ग प्रशस्त हो सकता है । ☐

धर्म का वास्तविक स्वरूप

श्री स्वामी परमानन्द दास जी महाराज

ईश्वर और धर्म के तत्त्व से अनभिज्ञ होने के कारण कुछ लोग यह कहने लगे हैं कि "धर्म ही हमारे सर्वनाश का कारण है, धर्म के कारण ही देश परतन्त्र रहा, धर्म ही हमारे सर्वाङ्गीण विकास में बाधक है ।" इस प्रकार कहने और माननेवाले लोग ईश्वर और धर्मवादियों को मूर्ख समझते हैं । उन्हें अपनी भूल समझ में नहीं आती । सहज ही यह समझ में आना भी कठिन है । क्योंकि जब मनुष्य अपने को दूसरों की अपेक्षा अधिक बुद्धिमान और विद्वान् समझने लगता है, तब उसे अपनी धारणा के प्रतिकूल अच्छी से अच्छी सम्मति भी पसन्द नहीं आती ।

धर्म क्या है ?

धर्म शब्द संस्कृत की 'धृ' धातु से बना है जिसका अर्थ है धारण करना । जिसको धारण करने से वस्तु या व्यक्ति का अस्तित्व सिद्ध होता है, उसे उसका धर्म कहा जाता है । धर्म ही मनुष्य की वह विशेषता है, जिससे उसकी अलग पहचान होती है ।

सर्वश्रेष्ठ धर्म के लक्षण हैं : यतोऽभ्युदयनिःश्रेयस् सिद्धिः स धर्मः

जो लोक-परलोक में कल्याण कारक हो, वही धर्म है । धर्म की विस्तृत व्याख्या पं० बालगंगाधर तिलक द्वारा गीता रहस्य में की गयी है—

धरणाद्धर्म इत्याहुर्धर्मेण विधृताः प्रजाः (महाभारत शान्ति पर्व)

जिसके बिना संसार चल न सकें, स्थिर न रह सके और जो पृथ्वी तथा लोकों को धारण करता हो; जिससे सब कुछ नियम बद्ध रहे और जिससे जनता की वृद्धि हो, वही धर्म है ।

वेद-पुराण और सन्त-महात्माओं के वचनों और महापुरुषों के आचरणों से यही सिद्ध होता है कि संसार धर्म पर ही प्रतिष्ठित है । धर्म से ही मनुष्य जीवन की सार्थकता है । धर्म ही मनुष्य को पापों से बचाकर उन्नत जीवन में प्रवेश करवाता है । धर्म-बल से ही विपत्तिपूर्ण संसार और परलोक में जीव दुःख के महार्णव से पार उतर सकता है ।

धर्म के बिना मनुष्य का जीवन पशु जीवन सदृश ही हो जाता है । पुराणों में हिरण्यकशिपु सरीखे दैत्य के नाम मिलते हैं, जिसने अपने ही पुत्र प्रहलाद को भयंकर ताड़ना दी थी । रावण-राज्य भी अत्याचार के लिए विख्यात है, शायद ईश्वर को मानने का कानून नहीं था, होता तो विभीषण जैसे ईश्वर भक्त उसके राज्य में कैसे रह सकते थे ? यह सत्य है कि

संसार में ऐसे लोग बहुत काल से चले आ रहे हैं, जो ईश्वर की सत्ता को स्वीकार नहीं करते परन्तु उन लोगों ने भी धर्म का विरोध कभी नहीं किया ।

धर्म ही मनुष्य को संयमी, साहसी, धीर, वीर, जितेन्द्रिय और कर्त्तव्यपरायण बनाता है । महाराज मनु ने धर्म की व्याख्या करते हुए कहा है—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम् ।।

धैर्य, क्षमा, दम जिसके अन्तर्गत मानसिक शत्रु जैसे काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि तथा बाहरी शत्रु जैसे पापी, दुष्ट, आततायी आदि का दमन करना; चोरी न करना, आन्तरिक व बाहरी पवित्रता, इन्द्रिय निग्रह, बुद्धि (विवेक), विद्या (ज्ञान), सत्य (न्याययुक्त व्यवहार), अक्रोध (क्रोध न करना) आदि सद्‌गुणों के समूह का नाम धर्म है ।

धर्म के इन दस लक्षणों के समान ही गीता में भगवान कृष्ण ने दैवी सम्पदा के लक्षण बताये हैं—

अभयं सत्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोग व्यवस्थितिः ।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ।।
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम् ।
दया भूतेष्वलोलुस्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ।।
तेजः क्षमा धृतिःशौचमद्रोहो नातिमानिता ।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारतः ।।

अर्थत् निर्भयता, अन्तःकरण की स्वच्छता, तत्त्व ज्ञान में दृढ़स्थिति, सात्विक दान, इन्द्रियों का दमन, उत्तम कर्मों का आचरण, वेद-शास्त्रों का पठन-पाठन, जप तथा मन की सरलता, अहिंसा (मन, वाणी, शरीर से किसी को कष्ट न देना), सत्य बोलना, क्रोध न करना, त्याग, शान्ति, परनिन्दा न करना, प्राणियों पर दया, इन्द्रिय लोलुपता का अभाव, लोक और शास्त्र के विरुद्ध आचरण न करना, व्यर्थ चेष्टाओं का अभाव ।

तेज, क्षमा, धैर्य, पवित्रता, किसी के प्रति भी शत्रुभाव का न होना तथा अपने में पूज्यता के अभिमान का अभाव आदि ये सब लक्षण दैवी सम्पदा के हैं । ऐसे ही लोक-हितकारी सद्‌गुणों के समूह को धर्म कहते हैं ।

महाभारत में कहा है—

अद्रोह सर्वभूतेषु कर्मणा मनसा गिरा ।
अनुग्रहश्च दानं च सतां धर्मः सनातनः ।।

मन, वाणी और कर्म से प्राणी मात्र के साथ अद्रोह, सब पर कृपा और दान—यही साधु पुरुषों का सनातन धर्म है ।

पद्मपुराण में कहा है कि ब्रह्मचर्य, सत्य, पञ्चमहायज्ञ, दान, नियम, क्षमा, शौच, अहिंसा, शान्ति और अस्तेय से धर्म की पूर्ति करें ।

जरा विचार कीजिये, क्या कोई भी जाति या व्यक्ति मन और इन्द्रियों की गुलाम विद्या-बुद्धिहीन, सत्य-क्षमा रहित, मन, वाणी, शरीर से अपवित्र, हिंसापरायण, अशान्त, दान

रहित, और परधन हरण करने वाली होने पर कभी सुखी या उन्नत हो सकती है ? प्रत्येक उन्नति चाहने वाले देश के लिए क्या धर्म के इन लक्षणों को चरित्रगत करने की नितान्त आवश्यकता नहीं ? क्या धर्म के इन तत्त्वों से हीन व्यक्ति या समुदाय कभी जगत में सुखपूर्वक रह सकता है ? धर्म की आलोचना करने वाले सज्जन एक बार गंभीरतापूर्वक पक्षपात रहित होकर यदि शान्त भाव से विचार करें तो उन्हें भी यह ज्ञात हो सकता है कि धर्म ही हमारे लोक परलोक का एक मात्र सहायक और साथी है ।

धर्म मनुष्य को दुःख से मुक्ति दिलाकर सुख की शीतल गोद में बैठाता है, असत्य से सत्य की ओर ले जाता है, अन्धकारित हृदय में अपूर्व ज्योति का प्रकाश भर देता है । धर्म ही चरित्र संगठन में एकमात्र सहायक है । धर्म से ही अधर्म पर विजय प्राप्त हो सकती है । धर्म का फल दुःख कदापि नहीं हो सकता । संसार का इतिहास देखने से पता लगता है कि सच्चे धर्म की सदा विजय हुई है ।

पाण्डवों के पास सैन्य बल की अपेक्षा धर्म बल अधिक था, उसी से वे विजयी हुए । रावण, कुम्भकर्ण, मेघनाद आदि विपुल धन-जन से सम्पन्न थे । उनके पास युद्ध के असाधारण उपकरण मौजूद थे, परन्तु धर्म-त्याग के कारण पराक्रमी होते हुए भी अधःपतन को प्राप्त हुए । कंस को धर्म त्याग के कारण ही कलंकित होकर मरना पड़ा ।

महाराणा प्रताप और छत्रपति शिवाजी आज हिन्दू भारत के इतिहास में धर्माभिमान के कारण अमर हैं । गुरु गोविन्द सिंह के पुत्रों ने धर्म के लिए ही दीवार में चुना जाना सहर्ष स्वीकार किया । धर्म के लिए ही मीरा बाई जहर का प्याला पी गई थी । धर्म के लिए ही ईसा मसीह सूली पर चढ़े थे । भगवान बुद्ध ने धर्म के लिए ही शरीर सुखा दिया था । युधिष्ठिर ने धर्म पालन के लिए ही कुत्ते को साथ लिए बिना सुखमय स्वर्ग में जाना स्वीकार नहीं किया । इसी से आज इन महानुभावों के नाम अमर हैं ।

धर्म रूपी तप के आचरण से अग्नि से ईंधन की भाँति सारे पाप और अवगुण जल जाते हैं और विषयों से विरक्ति तथा ईश्वर के तत्त्व का ज्ञान हो जाता है, जिससे समस्त सद्गुण उसमें स्वतः ही प्रकट हो जाते हैं । ऐसा धर्मात्मा पुरुष किसी प्राणी को किञ्चित मात्र भी कष्ट नहीं पहुँचा सकता । वह सबमें परमात्मा का या अपनी आत्मा का दर्शन करता है । सर्वत्र ईश्वर या अपनी आत्मा का दर्शन करनेवाला पुरुष कैसे किसी को कष्ट पहुँचा सकता है ? सदैव सबके हित में रत रहता है जिसके परिणाम स्वरूप वह परमात्मा को प्राप्त हो जाता है :

ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूत हिते रताः । (गीता १२।४)

धर्मज्ञ पुरुषों द्वारा निर्बल गरीबों पर अत्याचार होना, उनके द्वारा किसी का धन हरण होना या किसी को सताया जाना तो बहुत दूर की बात है; वे समझ बूझकर क्षुद्र चींटी तक को भी पीड़ा नहीं पहुँचा सकते । क्योंकि शास्त्रों में अहिंसा को ही परमधर्म बतलाया है :

'अहिंसा परमो धर्मः ।'

गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी कहा है :

परहित सरिस धर्म नहिं भाई। परपीड़ा सम नहिं अघमाई ।।

जिस देश में भगवान श्री राम और श्री कृष्ण ने अवतार लिया और जिसमें साक्षात् भगवान के मुख कमल से निकला हुआ गीता जैसा सनातन धर्म को बतलाने वाला ग्रन्थ हो, उस देश की प्रजा अशान्ति और दुःख का भोग करे, यह बहुत ही लज्जा की बात है । गीता में बतलाये हुए धर्म का पालन करने से हम स्वयं शान्त और सुखी होकर समस्त भारत को सुखी एवं स्वावलम्बी बना सकते हैं । समस्त गीता की बात तो दूर रही, केवल सोलहवें अध्याय में बतलाये हुए दैवी सम्पदा रूप धर्म का पालन करने से मनुष्य सदा के लिए परम शान्ति और परमानन्द को प्राप्त हो सकता है ।

धर्म साम्प्रदायिक नहीं होता

जिस प्रकार सत्य, भक्ति, समता, शान्ति, दया, सन्तोष, सरलता, साहस, क्षमा, धीरता, गंभीरता आदि सद्‌गुण न ईसाई के हैं न मुसलमान और न हिन्दू के, उसी प्रकार धर्म को भी किसी एक देश या जाति की सम्पत्ति मानना भ्रम है । धर्म तो मनुष्य मात्र की सम्पत्ति है, किसी भी देश व काल में हितकर मार्ग ही दिखाता है । धर्म साम्प्रदायिक नहीं होता ।

जनता को सावधानी के साथ धर्म की रक्षा के लिए कटिबद्ध हो जाना चाहिए । धार्मिक साहित्य का प्रचार, धर्म के निर्मल भावों का विस्तार, धर्म के सूक्ष्म तत्त्वों का अन्वेषण और प्रसार करने के लिए तत्पर हो जाना चाहिए । साथ ही धर्म का वास्तविक आचरण करके ऐसा चरित्रगत धर्म बल संग्रह करना चाहिए, जिससे धर्म-विरोधी हलचल को रोका जा सके । सनातन धर्म किसी दूसरे धर्म का विरोध नहीं करता । महाभारत में कहा है :

धर्मं यो बाधते धर्मो न स धर्मः कुधर्मकः ।
अविरोधात्तु यो धर्मः स धर्मः सत्यविक्रमः ।।

जो धर्म दूसरे धर्म का विरोध करता है, वह कुधर्म है । जो दूसरे धर्म का विरोध नहीं करता, वही यथार्थ धर्म है ।

मनुस्मृति में मनु महाराज ने कहा है कि परलोक में सहायता के लिए माता-पिता, पुत्र, स्त्री और सम्बन्धी नहीं रहते; वहाँ एक धर्म ही काम आता है । धर्म की सहायता से मनुष्य दुःस्तर नरक से भी तर जाता है ।

अतः मानव मात्र को अज्ञान-निद्रा से सचेत होकर धर्मपालन के लिए कटिबद्ध हो जाना चाहिए और पाश्चात्य भोगमयी सभ्यता की चकाचौंध से पीड़ित कर्त्तव्यच्युत हुए भाइयों को प्रेम, विनय और नम्रता के साथ धर्म का मर्म समझाकर धर्म मार्ग पर चलने की प्रेरणा देनी चाहिए ।

धर्मेण हन्यते व्याधिः, धर्मेण हन्यते ग्रहाः ।
धर्मेण हन्यते शत्रुः यतोधर्मस्ततो जयः ।।

अर्थात् धर्माचरण से दुःखों का नाश होता है, धर्माचरण से ग्रहों का प्रभाव नष्ट होता है । धर्माचरण से शत्रुओं का नाश होता है । जहाँ धर्माचरण है, वहाँ विजय अवश्य होती है । □

क्रान्ति का अरुणोदय

श्री स्वामी मुक्तानन्द सरस्वती जी महाराज

अज्ञान, शोषण, अनीति, दमन, अत्याचार तथा बहुसंख्यक समाज के दुःख-दैन्य की नींव पर मुट्ठीभर सुविधापरस्त जनसमुदाय ने अपने लिए हर प्रकार की सुविधा प्राप्त करने की एक व्यवस्था निर्माण कर रखी है । इस व्यवस्था को राज्यतंत्र के कानूनों से संरक्षण मिल जाता है । इसी स्थिति को कायम रखने का नाम यथास्थितिवाद है ।

यथास्थिति असह्य

यथास्थितिवादी परिस्थिति में विषमता रोज ही बढ़ती रहती है । इसी का दूसरा नाम अधर्म है । अधर्म के नंगे नाच को तथा समाज के दुःख-दैन्य को देखकर कुछ संवेदनशील व्यक्ति इस परिस्थिति को बदलने के लिए कटिबद्ध हो जाते हैं । समाज में ये व्यक्ति क्रांतिकारी के नाम से जाने जाते हैं ।

यथास्थितिवाद के गर्भ से ही पैदा होनेवाले ये क्रान्तिकारी वर्तमान परिस्थिति को बदलने के लिए धर्म-चक्र-प्रवर्तन अर्थात् क्रान्ति का उद्घोष करने लगते हैं । जिस परिस्थिति को बदलना है, उसी में स्वयं फँसे रहकर परिवर्तन का उद्घोष कैसे किया जाय ? क्रान्तिकारी का यह धर्म-संकट उसे मजबूर करता है कि वह यथास्थितिवादी परिस्थिति से अपने को अलग कर ले । यह मनः स्थिति मनुष्य को पलायन की प्रेरणा देती है । परन्तु पलायन भी यथास्थिति से मुक्ति नहीं दे पाता क्योंकि यथास्थितिवाद के शिकंजे ने समाज के अंग-प्रत्यंग को जकड़ रखा है, तब कोई उससे अलग कैसे हो सकता है ? अतः क्रान्ति की उत्कट भावना रखनेवाले साथी अपनी तड़प के कारण यथास्थितिवादी परिस्थिति को चुनौती देने निकलते हैं ।

क्रान्तिकारी को अच्छी तरह समझना होगा कि उसने यथास्थितिवादी परिस्थिति में जन्म लिया है । उससे वह चारों ओर से घिरा हुआ है । वह अकेला साधना करके उसे नहीं बदल सकेगा । जीवन में साधना आवश्यक है, लेकिन आज की परिस्थिति में साधना से भी अधिक आवश्यक है यथास्थिति का खुला विरोध करना तथा जन-मानस में इस बात का अहसास पैदा कराना कि उसके दुःख-दैन्य का कारण वर्तमान यथास्थितिवादी परिस्थिति ही है ।

केन्द्रित राज्यतंत्र जिम्मेदार

भारत में अंग्रेजी राज्य से छुटकारा पाने के लिए क्रान्तिकारियों को यह कहना पड़ा था कि अंग्रेज का राज्य शैतान का राज्य है । इसी के कारण देश में दुःख-दैन्य है । अंग्रेजी

राज्य समाप्त होने पर ही दुःख-दैन्य भी समाप्त होगा । इसी प्रकार आज कहना होगा कि यथास्थितिवादी परिस्थिति को कायम रखने के लिए केन्द्रित राज्यतंत्र जिम्मेदार है । अतः जब तक इस राज्यतंत्र को उखाड़कर नहीं फेंका जायगा, तब तक समाज से दुःख-दैन्य नहीं मिटेगा, अधर्म का उन्मूलन नहीं होगा । वर्तमान राज्यतंत्र चाहे लोकतांत्रिक भले ही हो, पर वह शैतान राज्य ही है । क्योंकि वह धर्म-निरपेक्ष है ।

आज परिस्थिति इतनी विषम हो गयी है कि सामान्य जीवन से धर्मभाव ध्वस्त होने लगा है । अतः यही वह क्षण है जब क्रान्तिकारी को हिम्मत करके कहना चाहिए कि व्यवस्था की सभी केन्द्रित पद्धतियाँ राज्यतंत्र का ही दूसरा रूप हैं । वे सब शैतान की व्यवस्थाएँ हैं । अतः हम इनको मानने से इन्कार करते हैं ।

यथास्थितिवादी परिस्थिति में ही रहकर क्रान्तिकारी को इसके खिलाफ जन-मानस तैयार करना होगा । वह पद्धति क्या होगी ? इसका मार्ग-खोजन करना भी उसी का काम है । क्रान्ति का मार्ग-खोजन करने के लिए उसे समझना होगा कि पीड़ित समुदाय को क्रान्ति की आवश्यकता तभी महसूस होती है, जब वर्तमान परिस्थिति अत्यधिक विषम बनकर सामान्य जीवन को भी ध्वस्त करने लगती है । वर्तमान व्यवस्था सामान्य जीवन के मानवीय मूल्यों की विरोधी है । मानव-धर्म के विरुद्ध है ।

क्रान्तिकारी का काम यहीं से शुरू होता है । वह जनता को बताये कि किन कारणों से आज की विषम परिस्थिति का निर्माण हुआ है । उन कारणों को दूर करने के उपाय तथा विकल्प तलाश करने का मार्ग-खोजन भी उसको करना पड़ेगा । वर्तमान परिस्थिति के कारण उसकी ये चेष्टाएँ, हो सकता है कि निरंतर विफल होती जायें । फिर भी क्रान्तिकारी कारण बताने तथा मार्ग-खोजन का काम व्यापक रूप से करता ही रहेगा । इसके साथ ही वह निरंतर छोटे दायरे में विकल्प को सफल करने के पुरुषार्थ में भी लगा रहेगा । यही पुरुषार्थ विचार-शिक्षण का मूल आधार होता है । इसके बिना केवल विचार-प्रचार का कोई मूल्य नहीं होता ।

यथास्थितिवाद के दो स्तम्भ

दुःख-दैन्य को मिटाने-हेतु विकल्प तलाश करने के लिए संसार में जो संघर्ष हुआ, उसके परिणाम स्वरूप इतिहास में क्रान्ति के नाम से दो महाविप्लव हुए । एक औद्योगिक-क्रान्ति के रूप में आर्थिक क्षेत्र में और दूसरा सामाजिक-क्रान्ति के रूप में राजनैतिक क्षेत्र में ।

पहले संघर्ष में से अति केन्द्रित पूँजीवाद (व्यक्तिगत सम्पत्तिवाद) निकला ।

दूसरे में से समाजवाद के नाम से उत्कट सत्तावाद निकला ।

अतिकेन्द्रित व्यक्तिगत सम्पत्तिवाद के कारण व्यक्तिगत स्वार्थ इतना अधिक प्रबल हो गया कि मानवीय सम्पर्क और सम्बन्ध की कोई कीमत ही नहीं रह गयी । वर्तमान काल में उत्कट सत्तावाद के कारण राजनैतिक दंगल जन-जीवन के अंग-प्रत्यंग में इस कदर प्रवेश कर गया है कि परस्पर लिहाज और रहम का नामो-निशान भी नहीं रह गया । रह गयी है जीवन के क्षेत्र में एकमात्र सौदेबाजी । इसी को अधर्म कहा गया है । बड़े-बड़े तपस्वी इसमें फँस

जाते हैं । क्योंकि अधर्म की यह लीला सत्य के मुँह को स्वर्ण से बन्द कर देती है । इसी परिस्थिति का वर्णन इस मन्त्र में है—

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितम् मुखम् ।

अर्थात् सत्य का मुँह स्वर्ण पात्र से ढका है । इसी परिस्थिति से प्रभावित होने के कारण सामान्य जन में अनुकूल मान्यता आम तौर पर यथास्थिति के लिए ही होती है, नये परिवर्तन के लिए नहीं होती । यह सही है कि क्रान्तिकारी जब परिवर्तन का आह्वान करता है तो ऐसा लगता है कि आम जनता आह्वान के अनुकूल है । लेकिन गहराई से देखने में स्पष्ट होगा कि अनुकूलता का कारण क्रान्ति-विचार की स्वीकृति न होकर कुछ दूसरा ही है । कुछ सुप्त स्वार्थ-सिद्धि की आकांक्षा, कुछ नयेपन का आकर्षण, कुछ प्राचीन मान्यताओं के पुनरुद्धार की आशा के आकर्षण में अनुकूल होते हैं, लेकिन जैसे-जैसे क्रान्ति-विचार स्पष्ट होता जाता है वैसे-वैसे तत्काल मिली व्यापक अनुकूलता घटती जाती है, फिर जैसे ही वह वर्तमान विषम परिस्थिति की बुनियाद को हिलाना शुरू करता है तो यथास्थितिवादी शक्तियाँ संगठित होकर पूरी शक्ति से क्रान्तिकारी तथा क्रान्ति-विचार का विरोध करती हैं । यथास्थितिवाद से जिन्होंने संघर्ष किया है, उनको हमेशा यह सब भोगना पड़ा है । इतिहास में इसके अनगिनत उदाहरण हैं जिनसे सदा ही क्रान्तिनिष्ठों को प्रेरणा मिलती रहती है ।

क्रान्तिकारी की नौ अवस्थाएँ

क्रान्ति की सारी प्रक्रिया को नौ अवस्थाओं से गुजरना आवश्यक होता है । अतः जब क्रान्तिकारी तथा क्रान्ति की प्रक्रिया इन नौ अवस्थाओं को पार करके यथास्थितिवाद के गर्भ से बाहर निकलेगी, तभी लोक-मानस समग्र-क्रान्ति की ओर अग्रसर हो सकेगा ।

यथास्थितिवाद के गर्भ में क्रान्ति और क्रान्ति की प्रक्रिया की नौ अवस्थाओं का वर्णन इस प्रकार है—

१. उत्सुकता—यथास्थिति को बदलने का संघर्ष करनेवाले भी तो यथास्थितिवादी परिस्थिति में ही पैदा होते हैं, उसी में जिन्दा रहते हैं और उसी परिस्थिति में रहकर उन्हें संघर्ष भी करना पड़ता है । परिवर्तन की चुनौती तथा परिवर्तन का मार्ग-खोजन भी क्रान्तिकारियों को यथास्थितिवादी परिस्थिति में रहकर ही करना होता है । यथास्थितिवादी शक्तियों के कारण समाज में बहुसंख्यक जनता दुःख-दैन्य से पीड़ित रहती है । इस पीड़ा की संवेदना से प्रभावित होकर क्रान्तिकारी-चेतना यथास्थितिवादी परिस्थिति के खिलाफ अर्थात् अधर्म के खिलाफ़ धर्म-चक्र-प्रवर्तन हेतु अपनी पीड़ा का उद्‌घोष करती है तो समस्त जनसमुदाय इस उद्‌घोष को उत्सुकता से सुनता है । क्रान्ति की योजना का उद्‌घोष होता है तो यथास्थितिवाद को पोषण देनेवाला समुदाय चौकन्ना हो जाता है । क्रान्तिकारी के लिए यह पहली अवस्था होती है । इस सीढ़ी पर, क्रान्ति के इस उद्‌घोष के प्रति चेतन-समाज उत्सुकता से देखता है । आम समाज आदर भाव प्रकट करता है और स्वयं क्रान्तिकारी चुनौती के कारण पैदा हुई उत्सुकता तथा प्रशंसा के इन्द्रजाल (ग्लैमर) में खो जाता है । समाज के प्रति थोड़ी-सी संवेदना इतना परिणाम उपस्थित कर देती है ।

क्रान्ति के लिए आगे बढ़ा कदम कभी-कभी चेतन-समुदाय की उत्सुकता, आम आदमी के आदर और चुनौती के इन्द्रजाल (ग्लैमर) में विलीन होकर यथास्थितिवाद में ही समा सकता है । लेकिन जिनकी संवेदना गहरी और वास्तविक होती है, वे इस अवस्था को पार करके आगे बढ़ते हैं । उनके हाथ में क्रान्ति-तत्त्वरूपी धर्म-चक्र-प्रवर्तन की, चुनौती की मशाल रहती है और समाज की संवेदना उनको सतत प्रोत्साहित करती रहती है । इस प्रोत्साहन के इन्द्रजाल में न फँसकर क्रान्ति-विचार तथा क्रान्तिकारी पहली अवस्था को पार कर लेते हैं ।

२. परम्परागत लोकाचार का भय—पहली अवस्था को पार करके जब क्रान्ति-तत्त्व को लेकर क्रान्तिकारी आगे बढ़ता है तो यथास्थितिवादी समाज उसके प्रति आकर्षित तो होता है, लेकिन उसके द्वारा होनेवाले परम्परागत लोकाचार की अवहेलना के लिए शिकायत भी करता रहता है । साथ ही शास्त्र सम्मत व्यवस्थाओं के उद्घोष को आधुनिकता का चाबुक दिखाकर दकियानूसी भी बताता है । आम आदमी को भी यह कहकर बहकाया जाता है कि सदियों से चले आये लोकाचार की इनके मार्फत अवहेलना हो रही है । अतः क्रान्ति के नाम पर सदियों से चली आयी परम्पराओं को नष्ट कर रहे हैं । दूसरी तरफ कुछ विघटनकारी-तत्व परिवर्तन का नाम लेकर क्रान्तिकारी उद्घोष के साथ ही साथ मूलभूत सांस्कृतिक मूल्यों पर भी प्रहार करने लगते हैं । अतः दूसरी अवस्था में क्रान्तिकारी को दो तरफ से सावधान रहना पड़ता है ।

(क) परम्परागत लोकाचार की विकृत मर्यादाओं की दुहाई के प्रभाव में आकर यथास्थितिवाद का आलिंगन करने के दुष्चक्र से बचना, तथा

(ख) आधुनिकता का वेश धारण किये परिवर्तन का उद्घोष करने वाले विघटनकारी-तत्त्वों के द्वारा मूलभूत सांस्कृतिक मूल्यों पर होने वाले आक्रमण से बचना ।

क्रान्तिकारियों को इस सीढ़ी पर बहुत सजग और सावधान रहकर आगे बढ़ना होगा, वरना यथास्थितिवाद, परम्परागत विकृत लोकाचार एवं आधुनिकता का चाबुक लेकर जबरदस्त संकट पैदा कर सकता है ।

३. सत्त्व की परीक्षा—दूसरी अवस्था पार करके जब क्रान्तिकारी तीसरी अवस्था में पहुँचता है तो उसके सत्त्व की ही परीक्षा हो जाती है । क्योंकि उसे यथास्थितिवादी विकृत लोकाचार की मर्यादाओं को पालन करनेवाले सज्जन लोगों के कोप का भाजन होना होता है और विकास तथा निर्माण के नाम पर आधुनिकता का सिद्धान्त गढ़कर मूलभूत सांस्कृतिक निष्ठाओं और मूल्यों को छिन्न-भिन्न करनेवाले संस्थावादी विघटनकारी-तत्वों से टक्कर लेनी होती है । ये संस्थावादी तत्त्व क्रान्तिकारी पर अव्यावहारिकता और विकास-विरोधी होने का लांछन लगाया करते हैं । वे सिद्धान्त को विकृत लोक व्यवहार एवं आधुनिकता की कसौटी पर कसना शुरू कर देते हैं अर्थात् क्रान्तिकारी-चेतना को यथास्थितिवाद की ओर घसीटने लगते हैं । क्रान्तिकारी को यह कभी स्वीकार नहीं होगा, लेकिन लोकनिष्ठ क्रान्तिकारी का व्यवहार शास्त्र सम्मत सिद्धान्त की ओर जाने की प्रेरणा अवश्य देगा ।

फिर भी लांछनों से बच नहीं सकेगा । लांछनों के बाद भी यदि क्रान्तिकारी की संवेदना

का मूलभूत स्रोत प्रवाहित रहता है और वह असुरक्षा के जंगल से घबराता नहीं है, तो आगे बढ़ सकता है । वस्तुतः क्रान्तिकारी को अच्छी तरह से समझना चाहिए कि सिद्धान्त प्रयत्न-साध्य तथा आचरणीय दोनों होना चाहिए । साथ ही क्रान्तिकारी के जीवन में भी वैसा तालमेल होना जरूरी है । यही वह बिन्दु है जब क्रान्तिकारियों को विचार के अनुरूप कुछ स्थूल कर्मकांड खड़ा करना पड़ता है । फिर इन्हीं कर्मकांड़ों के द्वारा यथास्थितिवादी तत्व क्रान्ति-विचार को अव्यावहारिक कहकर प्रभावहीन बनाने का प्रयास करते हैं । क्योंकि सिद्धान्त यथास्थितिवादी परिस्थिति के लिए चुनौती बन जाता है, इसलिए क्रान्तिकारी को अव्यावहारिक कहकर पथ-भ्रष्ट करने की कोशिश बराबर रहती है । इन सबको सहता हुआ यदि क्रान्तिकारी अपनी संवेदना के अनुसार आचरण करता रहता है तो वह अपने सत्त्व की रक्षा करते हुए लोकचेतना की मशाल को लेकर आगे बढ़ता ही रहेगा ।

४. असहकार—तीसरी अवस्था पार करने के बाद क्रान्तिकारी के साथ सब तरफ से असहकार होने लगता है । उसके जीवन में कष्ट और दुःखों का आक्रमण होता है । समाज की जिस पीड़ा और दुःख ने उसके अन्दर संवेदना पैदा की थी, उसकी अनुभूति स्वयं के जीवन में होने लगती है । दुःखी और पीड़ित समुदाय भी उससे कटने लगता है, परन्तु उसकी सहानुभूति क्रान्तिकारी के साथ दिनोंदिन बढ़ती चली ज़ाती है । इस चौथी अवस्था में क्रान्तिकारी की यात्रा आम तौर पर अकेले की ही रह जाती है । इस सीढ़ी पर पहुँचकर कविवर रवीन्द्रनाथ टैगोर ने कहा है—

यदि तोर डाक सुने केउना, आसे तभी ऐकला चलो रे ।

असहकार की चौथी अवस्था में सब साथ छोड़ने लगते हैं । केवल धर्म ही साथ रहता है, क्योंकि संवेदना की इस अवस्था में क्रान्तिकारी दरिद्रता, दुःख और पीड़ा का स्वेच्छा से वरण करता है । पुराण की एक कहानी है कि एक ब्राह्मण ने संवेदनशील होकर दरिद्रता का वरण किया तो धन, लक्ष्मी और यश ने उसका साथ छोड़ दिया । वह प्रसन्न था, लेकिन जब धर्म भी साथ छोड़ने लगा तो ब्राह्मण रो दिया । उसने कहा :

"अरे धर्म, तेरे कारण तो मैंने धन, लक्ष्मी और यश की परवाह नहीं की । अब तू ही चला जायगा तो मैं जीकर क्या करूँगा ? मैं भी आत्महत्या कर लेता हूँ" चौथी अवस्था में सबसे ज्यादा कष्ट उन सहकर्मियों से होता है, जिनका स्वरूप तो क्रान्तिकारी का ही होता है लेकिन आशय प्रभुत्ववादी होता है ।

कहने का तात्पर्य यह है कि चौथी अवस्था समाज की संवेदना के साथ घुल-मिलकर तप करने की होती है । समाज की संवेदना तथा क्रान्तिकारी जीवन-मूल्यों के प्रति निष्ठा पर दृढ़ रहने के कारण क्रान्तिकारी की तथा क्रान्ति-विचारक की एक छवि आम आदमी के सम्मुख उभरने लगती है । क्रान्तिकारी आन्दोलन के प्रति आम आदमी की भी आस्था बनने लगती है । इस चौथी अवस्था को पार करने पर क्रान्ति-विचार के प्रति आकर्षण पैदा होता है ।

५. आकर्षण—जिन्होंने चौथी अवस्था पार कर ली वे आगे बढ़कर पाँचवीं अवस्था पर पहुँचते हैं तो समाज का उनके प्रति आकर्षण बढ़ता है । परिवर्तन के लिए जिस समर्थन की

आवश्यकता होती है, वह प्राप्त होता दिखाई देता है । क्रान्तिकारी के तप की निष्पत्ति समाज के दुःख-दैन्य को प्रत्यक्ष चुनौती देने लगती है । ऐसी स्थिति में सभी तत्त्व उसकी ओर आकर्षित होते हैं । क्रान्तिकारी का अकेलापन समाप्त हो जाता है । अपार जन-समुदाय परिवर्तन की आकांक्षा में उसके साथ चलने लगता है । क्रान्तिकारी की छवि निखर उठती है । समाज से दुःख-दैन्य के निवारण होने की एक अनुकूल परिस्थिति बनती है । यथास्थितिवादी जीवन-मूल्यों के विकल्प के रूप में कुछ निष्पत्ति होने लगती है । निष्पत्ति होने के साथ-साथ ही निष्पत्तियों से लाभ उठाने की प्रवृत्ति भी समाज में बढ़ती है ।

क्रान्तिकारी को अच्छी तरह से समझना चाहिए कि पाँचवीं अवस्था में समाज से जो सहकार मिल रहा है, वह परिवर्तनबोधक नहीं है; बल्कि तप के प्रभाव की निष्पत्ति है । समाज ने समझ-बूझकर क्रान्तिकारी-मूल्यों को स्वीकार करके यथास्थिति को बदलने के लिए सहकार नहीं किया है, बल्कि तपस्या से प्राप्त निष्पत्तियों के द्वारा लाभ प्राप्त करने के लिए सहकार किया है । इस स्थिति में यदि दुःख-दैन्य का कारण अच्छी तरह से समझकर क्रान्ति-तत्त्व की तपस्या से प्राप्त शक्ति को उसके निवारण में लगाया जा सके तो यथास्थितिवादी परिस्थिति तेजी से बदलती नजर आयेगी । इसके विपरीत यदि तप से प्राप्त शक्ति को वैचारिक-चेतना जगाने के लिए इस्तेमाल करने के बजाय केवल राहत और निर्माण में लगा दिया तो यह शक्ति भी यथास्थितिवाद को ही मजबूत करेगी ।. पाँचवीं सीढ़ी पर क्रान्ति-तत्त्व के लिए जो आकर्षण पैदा होता है, उसके प्रभाव से सर्वाधिकारी राज्यवाद तथा अतिकेन्द्रित पूँजीवाद भी अछूते नहीं रहते । वे भी तप की इस शक्ति के प्रति आकर्षित होकर अपने लिए रस प्राप्त करने की कोशिश करते हैं । अतः पाँचवीं अवस्था पार करने के साथ-साथ क्रान्तिकारी को स्वतन्त्र लोक शक्ति के अधिष्ठान का काम भी करना चाहिए वरना तप से प्राप्त शक्ति के उपयोग के लिए उसे जो भी शक्ति मिलेगी, उसके साथ समझौता करके चलना पड़ेगा ।

६. लालच—आकर्षणरूपी पाँचवीं अवस्था पार करने पर समस्त यथास्थितिवादी तथा प्रति-क्रान्तिकारी शक्तियाँ क्रान्ति-तत्त्व के साथ सहकार करने को लालायित रहती हैं । साधना से प्राप्त निष्पत्तियों का लाभ उठाना ही इनका मुख्य उद्देश्य होता है । अतः अनेक प्रकार के लालचों में क्रान्ति-तत्त्व को उलझाकर समाप्त करने की चेष्टा प्रारम्भ हो जाती है । जो कल तक क्रान्ति-विरोधी थे और जिन्होंने आज भी क्रान्तिकारी-मूल्यों को स्वीकार नहीं किया है, लेकिन क्रान्ति-प्रक्रिया के कारण जो निष्पत्तियाँ हुई हैं, उनको बटोरकर उनका उपभोग करने की प्रवृत्ति ने इनको जोर से क्रान्ति का नारा लगाने के लिए प्रेरित कर दिया है ।

इस छठी अवस्था में क्रान्तिकारी को सावधान रहने की जरूरत होती है; क्योंकि जो निष्पत्तियाँ हुई होती हैं. उनके लालच में पड़कर कुछ नया निर्माण करने की लालसा उसको भी गुमराह कर सकती है । उसको समझना चाहिए कि सम्पूर्ण परिवर्तन हुए बिना इन क्षणिक निष्पत्तियों से जो कुछ भी बनेगा, वह यथास्थितिवादी ढाँचे में ही बनेगा । अतः क्रान्ति-तत्त्व को मजबूत करने के बजाय यथास्थितिवाद को ही मजबूत करेगा । अच्छे-अच्छे क्रान्तिकारी आन्दोलन के इस बिन्दु पर आकर रुक जाते हैं और क्रान्तिकारी-संघर्ष की निष्पत्तियों का कन्सोलीडेशन यथास्थितिवादी वातावरण के साथ समझौता करके करने लगते हैं ।

इस बिन्दु पर आम तौर से क्रान्ति, प्रतिक्रान्ति में बदल जाती है; क्योंकि क्रान्तिकारियों को निष्पत्तियों का कन्सोलीडेशन करने के लिए सिद्धान्त को व्यवहार के आश्रित छोड़ना पड़ता है । व्यवहारवाद, नमूनावाद, विकास, निर्माण, वैज्ञानिक दृष्टि और न जाने कितने रूप यथास्थितिवाद धारण करके क्रान्ति-तत्त्व के द्वारा हुई निष्पत्तियों को निगलने के लिए उपस्थित होता है ।

इस सीढ़ी पर यथास्थितिवाद और क्रान्ति-तत्त्व का जमकर मल्लयुद्ध होता है । इस मल्लयुद्ध के आम तौर पर तीन परिणाम होते हैं :

१. निष्पत्तियों के सम्मोह में क्रान्तिकारी शक्तियाँ परिस्थिति तथा विचार परिवर्तन के काम को ढीला करके राहत में फँस जायँ ।

२. प्रतिक्रान्तिकारी शक्तियाँ क्रान्ति-तत्त्व पर हावी होकर क्रान्ति की प्रक्रिया को कोरा आदर्शवाद कहकर बदनाम करने लगें तथा स्वयं लाभान्वित होने का षड्यंत्र रचें ।

३. तप के द्वारा अर्जित निष्पत्तियों को छोड़ कर क्रान्तिकारी क्रान्ति-तत्त्व की मशाल लेकर आगे बढ़ जायँ और निष्पत्तियों का कंसोलीडेशन करने के चक्कर में स्वयं न पड़कर समाज की चेतना शक्ति के हाथ में उसको छोड़ दें ।

७. विरोध—छठी अवस्था सकुशल पार करने के बाद क्रान्तिकारी को सातवीं अवस्था से गुजरना होता है । सातवीं अवस्था में क्रान्तिकारी को सब तरफ के विरोध का सामना करना पड़ता है । यह विरोध साधारण विरोध नहीं होता । बहुत गहरा होता है । क्योंकि पीड़ा और दुःख से मुक्ति की लड़ाई में छठी अवस्था (जहाँ कुछ निष्पत्तियाँ प्राप्त होती हैं) ऐसी होती है, जहाँ यथास्थितिवादी तत्त्वों से भिन्न प्रगतिशील और परिवर्तनकारी तत्त्वों के भी निहित-स्वार्थ निर्माण हो जाते हैं । अतः क्रान्तिकारी को अपने ही लोगों का विरोध सहन करना होता है । इस बिन्दु पर आम तौर से क्रान्तिकारी शक्तियों में जबरदस्त बिखराव होता है । वे एक-दूसरे को काटने लगती हैं । क्रान्ति की निष्पत्तियों पर एकाधिकार का संघर्ष उसी प्रकार होता है जैसे दो स्त्रियाँ एक ही बच्चे को अपना बेटा बता रही थीं । जब जज ने फैसला दिया कि लड़के को आधा-आधा काटकर दोनों में बाँट दिया जाय तो नकली माँ उसका सर माँगने लगी और असली माँ ने पूरा बच्चा नकली माँ को देना स्वीकार कर लिया । इसी प्रकार क्रान्तिकारी को भी लोक-संघर्ष के तप से प्राप्त निष्पत्तियों के मोह को छोड़कर आगे बढ़ना होगा । उसे इसी में समाधान करना होगा कि क्रान्ति-यात्रा की दिशा में परिवर्तन की चेतना के लिए जो शब्द-संचार हुआ है, वह इन निष्पत्तियों के मार्फत जन-जन में गूँजेगा तथा जो लोग आज निष्पत्तियों के सहारे अपने महल बना रहे हैं, उनका नैतिक पतन अवश्य होगा । उसे असली माँ की तरह अज्ञातवास में जाकर क्रान्ति-चेतना के शब्द-संचार को फलने-फूलने की आराधना में लगना होगा । वरना समाज के जिस दुःख और पीड़ा की संवेदना के कारण उसने क्रान्ति-मार्ग का वरण किया था, वह कड़ुवाहट में बदल ज़ायगी । प्रतिक्रान्तिकारी-तत्त्व क्रान्तिकारियों के खेमे में घुसकर उन्हें आपस में ही लड़ाने की परिस्थिति निर्माण कर देंगे । परिवर्तन की तीव्रता आपसी मतभेद की उग्रता का रूप धारण कर लेगी ।

अतः परिवर्तन की तीव्रता को कायम रखकर आपसी सौहार्द और सद्भाव बनायें रखकर, आगे बढ़ना होगा । लेकिन किसी भी प्रकार के समझौते से सावधान रहना होगा ।

८. उपेक्षा—विरोध की इस सातवीं अवस्था को पार करके क्रान्तिकारी जब अगली अवस्था में प्रवेश करता है तो उसे घनघोर उपेक्षा का मुकाबला करना पड़ता है । यह उपेक्षा आम तौर पर क्रान्तिकारी को तोड़ देती है, लेकिन जिन्होंने समझ-बूझकर समाज की पीड़ा और दुःख की संवेदना से प्रेरित होकर यह मार्ग अपनाया होता है, वे इस उपेक्षा-काल को अज्ञातवास के रूप में गुजारते हैं, विचार-चेतना को कायम रखकर समाज की पीड़ा के साथ एकरूप हो जाते हैं और उसी में साक्षात् चेतना और चुनौती बनकर जीते हैं । यथास्थितिवादी, प्रतिक्रान्तिकारी और क्रान्ति की निष्पत्तियों को भुनाने वाले तत्त्व इन पर तीखी निगाह रखते हैं । ये सारे तत्त्व इतने नीचे स्तर पर उतर आते हैं कि क्रान्तिकारी को हर प्रकार से उपेक्षित रखकर किराये के क्रान्तिकारियों से आक्रमण तक कराया जाता है ।

प्रतिक्रान्तिकारी तत्व तथा क्रान्तिकारी परिवेश में छिपी शक्तियाँ इससे और आगे बढ़कर क्रान्ति-साधना से आकर्षित नये तथा अर्धचेतन-क्रान्तिकारियों को अपने जाल में फँसाकर उनसे क्रान्ति-साधना के नाम पर नकली और विकृत नमूने खड़े करवाना शुरू कर देते हैं ताकि अज्ञातवास में जनजीवन के साथ एकरूप होकर क्रान्तिकारी जो भी साधना करता है, उसी का एक आकर्षक नमूना खड़ा करके वास्तविक साधना का मजाक तो उड़ाया ही जाय और साथ ही क्रान्ति-साधना पर किसी की आस्था ही न रहे; ऐसा वातावरण भी बनाया जाय ।

यह स्थिति वैसी ही होती है जैसी बाबा खड्ग सिंह की हुई । बाबा खड्ग सिंह के घोड़े को चोर चुराना चाहता था, लेकिन उसे अवसर नहीं मिला । अतः कोढ़ी का वेश बनाकर उस रास्ते पर बैठ गया, जहाँ से बाबा खड्ग सिंह घोड़े पर चढ़कर जाया करते थे ।

कोढ़ी के रूप में चोर ने बाबा से प्रार्थना की कि वह असमर्थ है । रात हो रही है । उसे घोड़े की पीठ पर बिठाकर बस्ती तक ले जाने में मदद कर दें ।

करुणा सागर बाबा ने उसे घोड़े पर बिठा लिया । बाबा क्या जानता था कि वह बनावटी कोढ़ी है । अतः असावधान थे । असावधान बाबा को कोढ़ी चोर ने घोड़े से धक्का देकर नीचे गिरा दिया और घोड़ा लेकर भागा ।

बाबा भौंचक्के रह गये, उनको घोड़ा जाने का उतना दुःख नहीं था, जितना इसका कि जो कोई भी यह कहानी सुनेगा, उसका असली दीन-दुःखियों पर से भी विश्वास उठ जायगा । अतः बाबा ने पीछे से चिल्लाकर चोर से कहा : इस घटना को किसी से कहना मत, वरना दीन-दुःखियों पर से समाज का विश्वास उठ जायगा ।

उपेक्षा की आठवीं अवस्था में यही हालत क्रान्तिकारी की होती है । वह यह भी नहीं कह पाता है कि क्रान्तिकारी परिवेश में जो प्रच्छन्न रूप से निहित स्वार्थी घुसे हुए हैं, इनसे सावधान रहो । क्योंकि ऐसा कहने से वास्तविक क्रान्तिकारियों पर से भी आम आदमी का विश्वास उठने का डर रहता है ।

क्रान्तिकारी परिवेश में बैठे प्रच्छन्न तत्त्व क्रान्तिकारी परिन्दों को गुमराह और पथ-भ्रष्ट करते रहते हैं और क्रान्तिकारी को चुपचाप यह सब सह जाना पड़ता है ।

उपेक्षा की यह अवस्था कभी-कभी तो बहुत लम्बी हो जाती है । इस अज्ञातवास को सफलतापूर्वक गुजारने के लिए क्रान्तिकारियों की कई-कई पीढ़ियाँ भी समाप्त हो सकती हैं ।

उपेक्षा की इस अवस्था में क्रान्ति-तत्त्व पूरी तरह कसौटी पर होता है तथा क्रान्ति की उस घड़ी को नजदीक लाता है जबकि क्रान्ति की नहीं जाती, क्रान्ति होती है । क्रान्ति को लाने के लिए इस अज्ञातवास की पूरी योजना करनी होगी । यही वह स्थान है जहाँ क्रान्तिकारी को तैयारी तो मरने की रखनी होगी, लेकिन दुःख और दैन्य के कारणरूप यथास्थितिवाद को समाप्त करने के लिए योजना जीने की बनानी होगी । मरकर चुनौती देने का क्षण वह कभी नहीं चूकेगा ।

९. स्वीकार—उपेक्षा की आठवीं अवस्था को पार करके क्रान्तिकारी स्वीकार की नवीं अवस्था पर पहुँचता है । इस अवस्था में पहुँचकर क्रान्तिकारी की संवेदना उसको उत्सर्ग के लिए प्रेरित करती है, उत्सर्ग ही वास्तव में स्वीकार है । क्रान्तिकारी मूल्यों का स्वीकार और क्रान्तिकारी का उत्सर्ग दोनों साथ-साथ होते हैं । बलिदान का यह क्षण परिवर्तन की उस घड़ी को बहुत नजदीक ला देता है, जब समाज की पीड़ा और दुःख का कारण आम आदमी की चेतना को स्पर्श करने लगता है तथा सारा समाज उस पीड़ा और दैन्य की परिस्थितियों से लड़ने को तैयार हो जाता है । वह समझने लगता है कि प्रचलित सुन्दर और सुगठित व्यवस्था ही हमारे दैन्य और पीड़ा का कारण है । यदि क्रान्तिकारी के उत्सर्ग ने यह चेतना समाज में पैदा कर दी तो समाज में यथास्थितिवाद को समाप्त करने की अपार शक्ति है वह उससे निपट लेगा ।

क्रान्ति का अरुणोदय

क्रान्तिकारी जब क्रान्ति की इन नौ अवस्थाओं को पार करके यथास्थितिवाद के गर्भ से बाहर आयेगा तो समाज की चेतना क्रान्तिकारी-मूल्यों को स्वीकार करके प्रचलित व्यवस्था के खिलाफ विद्रोह कर उठेगी । जनता का यह व्यापक विद्रोह यथास्थितिवाद के खिलाफ युग-परिवर्तन की दिशा में अग्रसर हो, इसके लिए क्रान्तिकारी को सतत सावधान रहना होगा । यह जन-संघर्ष समग्र-क्रान्ति का अधिष्ठान करेगा । समग्र-क्रान्ति का अधिष्ठान व्यापक सत्याग्रह के रूप में प्रकट होगा, जिससे सर्वाधिकारी राज्यवाद और अतिकेन्द्रित पूँजीवाद के द्वारा निर्मित अधर्म व्यवस्था की जड़ें हिल जायेंगी । धर्मनीति का प्रकाश प्रकट होते ही, अधर्म का अन्धकार लुप्त होने लगेगा । तभी होगा क्रान्ति का अरुणोदय ।

क्रान्तिकारी को जनता के बीच में रहकर उनके साथ एकरूप होकर भिन्न-भिन्न पक्षों के बीच सद्भावना निर्माण करने की कोशिश करनी होगी । प्रत्येक पक्ष को यह समझाने की कोशिश करेगा कि वे सब एक दुष्चक्र के शिकार हैं और सभी के अपने हित के लिए यह आवश्यक है कि उसमें से वह निकले । दुष्चक्र का स्वरूप क्या है, अन्याय कहाँ है, यह भी बतायेगा अन्याय करनेवालों को अन्याय छोड़ने को कहेगा और जिस पर अन्याय हो रहा है,

(शेष पेज ८६ पर)

क्रान्ति-बीज

परमहंस श्री स्वामी वामदेव जी महाराज

जनतन्त्र में न्याय का युद्ध अकेले का नहीं होता । प्रत्येक व्यक्ति का होता है । चाहे वह राज नेता है, चाहे सन्त है, चाहे अन्य कोई समाज का व्यक्ति । टोलियाँ बनाकर जन-जागरण करें । सूचनाओं के आदान-प्रदान की व्यवस्था हो । आज आवश्यकता इस बात की है, जहाँ अन्याय हो, जिस समय हो, उसका विरोध किया जाय । अन्याय के विरुद्ध युद्ध अथवा संघर्ष के लिए कोई विशिष्ट स्थान या समय नहीं होता । आज हमको अनुभव हो गया है, प्रजा न तो कायर होती है, न आलसी । परन्तु उचित नेतृत्व न मिलने पर वह आलसी ही नहीं, अन्याय तथा अत्याचार के प्रति सहिष्णु भी हो जाती है ।

सही नेतृत्व

भारत में १८ महीने के लिए बहादुर नेता आया । जिसका नाम लाल बहादुर था । पाकिस्तान ने आक्रमण किया । अन्याय का प्रतिकार करने हेतु भारत को युद्ध मैदान में उतरना पड़ा, युद्ध हुआ । शत्रु के साथी अमेरिका ने भारत की दुर्बलता को समझा । भारत के पास अन्न की कमी है । अमेरिका ने स्वयं तो अन्न न देने की घोषणा की ही, भारत को अन्न न देने हेतु दूसरे देशों पर भी दबाव डाला । उस समय के समाचार पत्रों के पढ़नेवाले लोगों को स्मरण होगा, शास्त्रीजी ने कह दिया, हम अन्न न मिलने पर भी युद्ध बन्द नहीं करेंगे । हम व्रत करेंगे, गमलों में अन्न उपजायेंगे । परन्तु अन्याय के साथी के सामने नहीं झुकेंगे । साथ ही यह नारा दिया 'जय-जवान, जय-किसान' । उस महान नेता के नारे का ही प्रभाव है कि भारत आज दूसरे देशों को अन्न देता है । उचित नेता ही जनता को शक्ति देता है ।

मार्गदर्शन की कमी

जब उचित नेता का मार्गदर्शन नहीं मिलता, शासन विलासी हो जाता है । जैसाकि आज हो रहा है । तब शासन से सम्बद्ध लोग अन्याय से भी अनुचित धन कमाने लगते हैं जनता उन्हीं के मार्ग का अनुसरण करने लगती है । ऐसे समय में नैतिक पुरुषों की नैतिकता और चरित्रवालों के सच्चरित्र का कोई मूल्य नहीं रहता । जैसाकि हो रहा है । समाज के इस विकृत रूप को देखकर धार्मिक लोग या साधु सन्त संन्यासी आँखें फेर लेते हैं, तब अनैतिक लोग चाहे वे शासन में हों, चाहे शासन से सम्बद्ध, या उनके द्वारा भ्रमित हों, उनका स्वर अन्याय के समर्थन में ऊँचा हो जाता है । सत्ता के बल पर कहने लगते हैं, धर्म का राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं है । साधु संन्यासी को राजनीति से क्या मतलब ? इनको तो भजन करना चाहिये । यदि किसी भजन ध्यान में रत साधु संन्यासी की ख्याति हो रही होगी तो कहेंगे कि अपना मोक्ष चाहते हैं, स्वार्थी हैं । देश पर भार हैं । आलसी हैं, बैठे-बैठे खाने

का ढोंग बना लिया है । इन लोगों को भय रहता है कि कहीं ये हमारे भ्रष्टाचार को उजागर न करने लगें । अतः उनको हर प्रकार से जनता में बदनाम कर उनका मनोबल गिराने तथा जनता को भ्रमित करने का प्रयास बड़े-बड़े प्रचार माध्यमों से होता रहता है । ऐसे समय में कुछ लोगों की भ्रष्टाचार के विरोध की भावनाएँ दब जाती हैं । कुछ लोग भ्रष्टाचार को जानते तो हैं किन्तु मनोबल की हीनता के कारण, भ्रष्ट सत्ता के बल पर अत्याचारियों के स्वर में स्वर मिलाकर उनके ही साथ हो जाते हैं । तथा भ्रष्ट तरीके से कमाये धन के भागीदार बन जाते हैं । वह धन चाहे बोफोर्स काण्ड से, बैंक घोटाले, निर्माण कार्यों से बचाया हो, या देश में देश-द्रोहियों ने, पाकिस्तान के साथ मातृभूमि की रक्षा हेतु निर्णायक युद्ध के समय देश में भीषण उपद्रव करने के लिए बारूद लानेवालों से जाने अनजाने में प्राप्त किया हो । वे भी उस धन में भागीदार बनकर अन्याय के समर्थन तथा विलासी जीवन व्यतीत करने में जुट जाते हैं ।

समय की मांग

कुछ लोग होते हैं, जिनका अन्याय के विरोध में मनोबल जीवन्त रहता है । उनके मनोबल को दमन करने के सारे उपाय 'क्रान्ति-बीज' बन जाते हैं । आज समय आ गया है । जीवन्त मनोबल वाले संगठित हों । संगठित होकर भ्रष्टाचार के विरुद्ध आवाज उठावें । यह आवश्यक नहीं कि वे साधु, सन्त, सन्यासी या धर्माचार्य ही हों । चाहे वे किसी राजनैतिक दल, किसी वर्ग, किसी मजहब, किसी रिलीजन, किसी पंथ या किसी धर्म के हों, सबका कर्तव्य बनता है कि संगठित होकर भ्रष्टाचार, अत्याचार, अनाचार के विरुद्ध आवाज उठायें । उनको भगवान बल देगा । उन्हीं को एक दिन जनता का नमन होगा । अतः जीवन्त मनोबल वाले जनता का मार्ग-दर्शन करें यही समय की मांग है । क्योंकि क्रान्ति बीज पक रहा है ।□

(पेज ८७ का शेष भाग)

उससे उसे इन्कार करने को कहेगा । इस प्रकार के कार्यक्रम की परिणति से जनता की तरफ से सत्याग्रह का अभिक्रम हुआ, तो क्रान्तिकारी उसका सही मार्गदर्शन भी करेगा, लेकिन सत्याग्रह की पहल या नेतृत्व अपने हाथ में नहीं लेगा । यथास्थितिवाद के गर्भ से बाहर निकलने की यही कसौटी है । जनता का संगठन बनाकर उसका संचालन वह नहीं करेगा; क्योंकि सुसंगठन किसी आन्दोलन के औचित्य का परिचायक नहीं है, वह किसलिए है, उसे देखना होगा । वह समाज की विषम परिस्थिति के निराकरण की चेष्टा है, या सौदा है, इसे भी देखना होगा; क्योंकि यथास्थितिवाद के खिलाफ विभिन्न संगठन बनाकर लड़ने का यह परिणाम आता रहा है कि सरकारी कर्मचारी संघ कहेगा अनाज का दाम कम हो और किसान संघ इस बात का आन्दोलन करेगा कि अनाज का दाम बढ़ाया जाय । उसी तरह कर्मचारी संघ वेतन बढ़ाने का आन्दोलन करेगा और जनता संघ टैक्स घटाने का । क्रान्तिकारी किसका साथ देगा ? वह कहेगा कि तुम सब जिस राज्य-तन्त्र से अपनी व्यवस्था की माँग कर रहे हो वही राज्य-तन्त्र तो यथास्थिति को बनाये हुए है । इस प्रकार यथास्थितिवाद के गर्भ से निकलकर क्रान्तिकारी को जन-जीवन में प्रवेश करना होगा, ताकि अधर्म और अनीति पर आधारित राज्यवाद को सीधी चुनौती दे सके । यही चुनौती क्रान्ति के अरुणोदय की परिचायक होगी । □

एक ही जाति

श्री स्वामी योगेश्वरानन्द गिरि जी महाराज

जिनके अन्तःकरण में परमेश्वर की भक्ति है, वे मेरी जाति के हैं । उनसे मेरी मुलाकात कब होगी, ऐसी उत्कंठा हरि-दर्शन में प्रीति रखनेवालों की संगति के लिए होनी चाहिए । यानी जिन्हें ईश्वर पर प्यार है, उन सबकी एक जाति है । जहाँ-जहाँ भक्ति का अंश दीख पड़ता है, वह हमारी जाति का है, ऐसा भावात्मक प्रयोग होगा, तभी काम होगा । क्योंकि जिनका ईश्वर के साथ अनुराग है, उनका सब पर प्रेम होता है । भक्ति करने के तरीके अलग-अलग हो सकते हैं । आज कोई मस्जिद में, कोई मन्दिर में, कोई गुरुद्वारे में, कोई चर्च में, या कोई निराकार की भक्ति करता है । भक्ति मुख्य न होकर जब स्थान मुख्य हो जाता है, तब मनुष्य समाज में भेद होते हैं । सब उसी प्रभु की भक्ति करते हैं, परन्तु भक्ति के तरीके और भक्ति करने के स्थान को लेकर आपस में झगड़ने लगते हैं । यह झगड़ा तभी होता है, जब प्रभु की भक्ति छोड़कर तरीके और स्थान में चिपक जाते हैं । वास्तव में तो ये झगड़े मन और बुद्धि के हैं । मन और बुद्धि एक ही चीज के दो अंग हैं । मन और बुद्धि से अलग होकर शुद्ध आत्मा की भूमिका में स्थित होकर जो भगवान को समर्पित होते हैं, उन भक्ति करनेवालों की एक ही जाति है ।

धर्म और भक्ति

मनुष्य को अहंता और ममता का बन्धन होता है । ज्ञान किसके लिए ? मेरे लिए । मैं ज्ञानी, बाकी अज्ञानी । मैं सम्पत्तिवान, दूसरे सम्पत्तिहीन । इस तरह सम्पत्ति और ज्ञान से भेद बढ़ता है । अभिमान का आश्रयस्थान 'मैं' है । बड़े-बड़े साधकों को भी अपने गुरु का अभिमान होता है । भक्ति में यह खूबी है कि उसमें मनुष्य अपने को काटता है । उसमें 'मैं' वाली बात खतम हो जाती है । 'हम सब' की भाषा आते ही व्यक्ति खो जाता है । जहाँ हमारे 'खुद' का लोप हो जाता है, वहीं ''खुदा' प्रकट होता है ।

अब तक अभिमान पर केवल वेदांत का ही हमला हो रहा था, पर अब विज्ञान का भी हमला हो रहा है । विज्ञान इतना व्यापक हो गया है कि अब वह व्यक्ति का व्यक्तित्व भी कायम नहीं रहने देगा । वे ही व्यक्ति टिकेंगे, जो यह मानेंगे कि हम सबके अंग हैं । सबमें मैं विसर्जित हूँ और सब मुझमें समाहित हैं ।

संकुचितता के लिए स्थान नहीं

जैसे आज तमिलनाडु का नागरिक भारत का नागरिक है, उसे भारत भर में कहीं भी जाने और काम करने का हक हासिल है । इसी तरह आगे चलकर भारत का नागरिक दुनिया का भी नागरिक होगा । 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' कहकर हमारे ऋषियों ने विश्व बन्धुत्व का उद्घोष किया था, उसके अनुरूप जीवन-व्यवहार शीघ्र होनेवाला है । यह युग अहंता और

ममता का छेदन करने के लिए खड़ा है । इस युग में अधर्म टिक ही नहीं सकेगा । व्यापक भावना को ही हम धर्म कहते हैं और संकुचित भावना को अधर्म । दुनिया एक परिपूर्ण वस्तु है और मैं इसका अदयव । अगर अवयव शरीर से अलग हो जाय, तो वहीं खत्म हो जाये । भक्ति हमें यही सिखाती है कि हम अवयवमात्र हैं, परिपूर्ण तो भगवान है । हम उसके अंग हैं । हमारी कीमत तभी है, जब हम उसके अन्तर्गत हैं । यही भाव सारी मानव जाति को समग्र दृष्टि प्रदान करके एकरूपता की प्रेरणा देगा, तभी सब एक जाति के बनेंगे । ❑

जाग सके तो जाग

सोमानी

धीरे-धीरे सुलग रही है, कहीं रूई में आग
मेरे देश के रखवाले तू जाग सके तो जाग ।।

घोर निराशा औ अभाव से जनता टूट चुकी है,
भूख गरीबी को सहने की सीमा टूट चुकी है ।
छिपे पेट के अन्दर अब तो लावा मचल रहा है,
शंका भरी हुई आँखों में गुस्सा उबल रहा है ।
बचा सके तो पहल आज कर उजड़ न जाये बाग ।। मेरे......

तिनके जैसा टूट गया है, मिला हुआ विश्वास
औ सुख सूरज रोज सबेरे उगने लगा उदास
महल आसमां चढ़े, झोंपड़ी थक कर बैठ गयी है
झूठी बातें समता की कर मन पर चोट गयी है
ऐसे में यह लोकतंत्र का फीका लगता राग ।। मेरे......

तिनका तिनका प्रजातंत्र है, राजनीति दलदल में
जनता भटक गयी, नारों के झंडों के जंगल में
कुर्सी की सत्ता चुनाव का केवल करती सोच
मांसहीन गांधी की काया, यही खा गयी नोंच,
खादी जैसी आज़ादी पर, बढ़ते जाते दाग ।। मेरे......

शासन की ऊंची कुर्सी तक भ्रष्टाचार पहाड़
सभी झूठ को छिपा रहे हैं, ले तिनके की आड़ ।
नेता अधिकारी शोषण का नया खेलते खेल
इस धरती के आम्रकुंज पर अमर छा गयी बेल
कोयल नहीं कहीं दिखती है उड़ते हैं सब काग ।। मेरे......

जिसकी लाठी भैंस उसी की, यही आज का न्याय
स्वयं खेत की बागड़ अब तो खड़ी फसल खा जाय
कैसा है आतंक व्यवस्था सच पर करती चोट
असली अपराधी छिप जाते, ले कानूनी ओट
आस्तीन की वामी में छिपं दूध पी रहे नाग ।। मेरे......

धर्म-दीक्षा

श्री स्वामी कृष्णानन्द सरस्वती जी महाराज

'उत्तिष्ठ जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधतः ।'

उठो ! जागो ! और श्रेष्ठ महापुरुषों के पास जाकर ज्ञान प्राप्त करो ।

ज्ञान वही, जो नित्यनूतन भी है और सनातन भी, क्योंकि सनातन वही है, जो नित्य नूतन है । धर्म की सार्वभौमिकता नित्यनूतन होने के कारण है । सार्वभौम धर्म समस्त जड़-चेतन का पारस्परिक सन्तुलन बनाये रखने के लिए तथा उसके कल्याण के लिए है । ऐसे धर्म की दीक्षा हरेक के लिए आवश्यक है । दीक्षा लेने के बाद दीक्षित समुदाय में ऊँच नीच की भावना नहीं रहेगी । सबको अपनी-अपनी योग्यता और क्षमता के अनुसार आगे बढ़ने के अवसर मिलेंगे । सब अपना व्यवसाय ईमानदारी और नेक नीयति से करेंगे । स्त्रियाँ अपने घर की सार संभाल ठीक से करेंगी । पास पड़ोस में सबसे प्यार होगा । मांस-मदिरा व नशीली वस्तुओं के सेवन की लत छूट जायेगी । पुरुष स्त्रियों पर अत्याचार नहीं करेंगे । स्त्रियाँ भी दुराचार से दूर रहेंगी ।

भगवान् के मन्दिर में प्रवेश का रास्ता

हम सभी को दीक्षा देते हैं । भंगी का काम करनेवाले तथा दूसरे व्यवसाय या नौकरी करनेवाले हमारे लिये बराबर हैं । हम भंगी को भी दीक्षा देते हैं और ब्राह्मण, हरिजन, ठाकुर, वैश्य, यहूदी, मुस्लिम, सिख, ईसाई सभी को दीक्षा देते हैं । इसके अलावा संसार में अलग-अलग ढंग से अलग-अलग देवी देवताओं की पूजा करनेवाले भी हैं; ऐसे भी हैं जो ईश्वर को नही मानते, लेकिन वे मनुष्य की भलाई में तथा मनुष्यों में आपस में प्रेम भाव बनाये रखने में विश्वास करते हैं, उनको तथा विभिन्न सम्प्रदायों के माननेवाले, गोरे काले किसी भी रंग वाले को हम बिना भेद भाव के दीक्षा देते हैं । दीक्षा से भगवान् के मन्दिर में प्रवेश मिलता है ।

धर्म दीक्षा सबके लिए खुली है । धर्म दीक्षा से दीक्षित समुदाय धर्म समाज कहलायेगा । उसमें मानवों के प्रति समान भाव तथा समस्त जीव-जन्तुओं और प्रकृति के प्रति कृतज्ञता का, करुणा का, रहम का भाव जगेगा । हम चाहेंगे कि सबका कल्याण हो, सबके दुख दूर हों । यदि कोई मनुष्य जाने अनजाने में पाप करेगा तो उसे प्रायश्चित करना होगा । क्योंकि कष्टों का दुःखों का निवारण तो गुरु कृपा से हो सकता है, परन्तु पाप और अधर्म का फल मिलता ही है । बिना प्रायश्चित किये छुटकारा नहीं ।

धर्म और अधर्म का ज्ञान होना भी हरएक के लिए आवश्यक है । आजकल तो धर्मों और जातियों के इतने नाम हो गये हैं कि उनको गिनना भी मुश्किल है । समझना होगा कि

ये जितने भी नाम हैं, सब पंथ है । ये सब धर्म को, सत्य को प्राप्त करने के लिये अलग-अलग रास्ते हैं ।

अलग-अलग देश और भाषाओं के बोलनेवाले मनुष्यों के लिए अलग-अलग समय पर महापुरुषों ने एक ही सत्य को देश, काल, पात्र की समझ के अनुसार उनकी भाषा में प्रस्तुत किया है । हम मानते हैं कि मानवमात्र की जाति भी एक है और उसका धर्म भी एक है ।

सभी देवी-देवताओं का आदर

धर्म दीक्षा लेने के उपरान्त व्यक्ति स्वयं चेता बनने की 'अप्पदीपोभव' की प्रेरणा लें । उनका विचार उदार तथा व्यापक बने, वे कठमुल्ला न रहें । उनके ज्ञान चक्षु सदा खुले रहें । खुद तो ज्ञानी बनें साथ ही संसार में सच्चे ज्ञान का प्रसार भी करें । उनके लिए मन्दिर, मस्जिद, चर्च, गुरुद्वारे, मजार तथा सभी देवी देवताओं के स्थान आदर के स्थान हैं । क्योंकि इन सभी स्थलों का निर्माण वहाँ बैठकर भगवान की शक्तियों की उपासना के द्वारा मन शुद्ध, चित्त शुद्ध करने के लिए किया गया था । यदि कोई मनुष्य या समुदाय इन उपासना स्थलों का इस्तेमाल मनुष्य समाज में भेद भाव पैदा करने के लिये करता है या किसी उपासना स्थल को नष्ट करके अपना उपासना स्थल बनाने की चेष्टा करता है तो वह अधर्मी है, अज्ञानी है । उसके लिए हम प्रार्थना करते हैं कि भगवान उसे सद् बुद्धि दो । समुदाय या पंथ के नाम पर मनुष्यों में भेदभाव पैदा करनेवालों से हम निवेदन करना चाहते हैं कि वे अपने द्वारा अब तक के भूतकाल में किये गये अधर्म का प्रायश्चित करें । साथ ही मानवों के बीच सच्चे धर्म की स्थापना के लिए प्रेम, रहम और परस्पर सद्भाव जगाने का संकल्प लें ।

हम सबके : सब हमारे

हमारे इन सब विचारों को सुनकर भी अगर कोई हमसे यह पूछे कि हमारा धर्म क्या है ? तो हम कहेंगे कि हम सबके हैं, सब हमारे हैं । धनी-गरीब छोटे-बड़े, कंजर-पवित्र, काले-गोरे, कहाँ तक गिनायें, जितने भी भेद-भाव मानवों के बीच हो गये हैं, वे सब हमारे हैं, हम उन सबके हैं । क्योंकि—ईशावास्यम् इदम् सर्वम्—सबमें समान रूप से प्रभु समाया हुआ है । हम इस भेद भरी सृष्टि में अभेद की स्थापना करना चाहते हैं ।

हम चाहते हैं कि हजारों, लाखों, करोड़ों, अरबों युवक, युवतियाँ, गृहस्थ, सन्यासी, ब्रह्मचारी इस सार्वभौम युग धर्म की दीक्षा लेकर मानव कल्याण के विचार को घर-घर फैलावें । क्योंकि, युग समस्याओं का यही सच्चा समाधान है, इसी से सबको शान्ति मिलेगी ।

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः, समानमस्तु वो मनः यथा वः सुसहासति ।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

धर्म-चक्र-प्रवर्तन

(विश्व के नैतिक मन की जागृति)

म० मं० स्वामी सत्यदेव जी महाराज

पुरातन काल से लेकर आज तक के इतिहास में अनेक प्रदेशों को एक सर्वोच्च राष्ट्र या साम्राज्य में शामिल करने के अनेक प्रयत्न होते आये हैं । जब मानवों की वसाहत पृथ्वी पर किसी एक जगह स्थिर नहीं हुई थी, तब भी अपनी जाति का फैलाव करते हुए आर्यों ने भारत में आकैलाशात् आसागरम्-हिमालय से हिंद और अरब महासागरों तक एकत्व लाने का सफल प्रयत्न किया । उन्होंने 'वसुधैव कुटुम्बकम्'का उद्घोष किया । अलग-अलग जमातों को, अलग-अलग भाषाओं को, भिन्न-भिन्न उपासना-पद्धतियों को अपनाते हुए वैदिक हिन्दू नाम से पहचानी जाने वाली एक जमात भारत में बनी । कहते हैं कि धनुर्धारी, वकलधारी राम ने दक्षिण में रामेश्वरम् में शिव की स्थापना की और शिव-पूजा चलायी, और मुण्डमालाधारी, त्रिशूलधारी शिवजी ने काशी धाम में बस कर रामनाम का अखण्ड जप करके रामपूजा की महिमा बढ़ायी । आर्यों ने विष्णु की शय्या बनाया दक्षिण के नाग को, तो हिमालयपुत्री पार्वती आयुधों से सुसज्जित होकर शक्तिरूपा बनी । अगस्त्य ने सागर लांघा और परशुराम ने केरल बसाया । इस तरह हर पहलू पर समन्वय होता गया और भारत आसेतुहिमालय एक देश माना गया ।

उसके बाद ई० सं० पूर्व १००० में, मानव ऐक्य की दृष्टि से दूसरी मंजिल तय हुई भगवान् बुद्ध की प्रतिभा से । तदनुगामी जमाने में चीन, जापान, एशिया माइनर, तिब्बत, बर्मा, श्री लंका तथा दक्षिणपूर्व एशिया के राज्यों में व्यापक धर्म प्रचार हुआ और सांस्कृतिक एकता बनी । इसी काल में आये आद्य शंकराचार्य । बिना तलवार के या बिना पैसों की मदद के किया हुआ तपस्वी सन्यासियों का यह पराक्रम बेमिसाल रहा, जिसका लाभ भारत एवं एशिया के पारस्परिक सम्बन्धों में आज तक मिल रहा है ।

मानव-एकता का दूसरा महान चरम ईसा की करुणा ने आगे बढ़ाया । क्रौस पर बहे ईसा के खून ने उनके बारह शिष्यों में अणुस्फोट की शक्ति भर दी । योरोप के सारे खंडों में अर्थात् विश्व के आधे राष्ट्रों में ईश्वर श्रद्धा, मानव प्रेम तथा करुणा का विचार फैला और उस एकता में राष्ट्रों की अनेक विधता गौण हो गयी ।

मुहम्मद और उनके अनुगामी खलीफाओं ने पश्चिम एशिया में यही विराट् पराक्रम आठवीं सदी में किया । इजिप्ट से लेकर अरबस्तान तक का विस्तृत मानव समाज एक विचार में,एक धर्म में, एक राज्य व्यवस्था में जुड़ा, परन्तु एक ही इस्लाम में स्वार्थी लोगों ने ६२ फिरके बना दिये और ईसा के १२ शिष्यों ने भी अनेक फिरके बनाये ।

भारत के अन्दरुनी प्रयोग में एकता बनाये रखते हुए दो सांस्कृतिक प्रवाह पूर्व पश्चिम, उत्तर दक्षिण बहे । भक्ति के चार आचार्यों ने संस्कृत भाषा का आधार लेकर उत्तर में प्रचार किया और भारत की एकता को सुदृढ़ता प्रदान की । अनेक सन्तों ने ऊँच-नीच, छोटे-बड़े का भेद मिटाया । उसके बाद हिन्दू और सूफी सन्तों ने हिन्दू मुस्लिम और छुआ-छूत भेद मिटाने का प्रयास किया । हिन्दुओं की स्पृष्य-अस्पृष्य जमातों को एक किया । जमीन और जनसंख्या के हिसाब से भारत का एक-एक प्रान्त योरोप के छोटे राष्ट्रों से बड़ा है । भारत में अनेक धर्म, अनेक जातियाँ, अनेक विकसित भाषाएँ हैं । ऐसे अनेक प्रदेश वाले भारत को एक राष्ट्र किसने बनाया ? हिन्दी को अपनी भाषा मानकर भारतभर में विहार करने वाले लाखों साधु-सन्तों की अनिकेत जमात ने, जिसका ब्रिटिश भेदनीति के कारण बाद में विभाजन हुआ ।

योरोप और अमरीका में भी, सोलहवीं सदी से इस तरह के प्रयत्न होने लगे । मगर उनका इतिहास असफल प्रयत्नों का इतिहास है । पोप की राजकीय सत्ता अधिक दूर तक फैलाने के उद्देश्य से दसवें पोल लिओं ने फ्रांस के साथ योरप की एकता के प्रयत्न किये थे । जर्मनी के प्रोटेस्टेंट विद्रोह ने उस प्रयत्न को नाकमयाब किया । उन्हीं दिनों डच विद्वान् इरेस्मस और अंग्रेज कार्डिनल वेलसी ने एक 'वैश्विक दस्तावेज' तैयार करना चाहा था, जिससे कि योरोप में पारस्परिकता तथा शान्ति बने और तुर्कस्तान से होने वाले आक्रमणों का मुकाबला हो सके । परन्तु 'वैश्विक दस्तावेज' उसके बाद का 'क्रिश्चन गणराज्य' तथा रूसों और अबेपियर की 'विश्वशान्ति की योजना' ये एक के बाद एक किये गये तीनों प्रयत्न भी असफल रहे ।

महान् मानववादी श्री विलियम पेन्ने की प्रेरणा उस अंतिम प्रयत्न के पीछे थी, जिसकी वह कोशिश तब से आज तक विश्व में जगह-जगह घूमती रही, अनेकों को विश्वशान्ति के लिए सामूहिक प्रयत्न करने को प्रेरित करती रही । अठारहवी सदी के प्रारम्भ में, तमाम देशों के अग्रगण्य व्यक्तियों की बुद्धि विश्वशान्ति और विश्व-ऐक्य का ही समर्थन करती आयी है । स्वयं नेपोलियन ने भी अंतिम दिनों में जाहिर किया था कि "मेरे सारे युद्ध योरप का संघराज्य बनाने की धुन में लड़े गये ।" हिटलर और कैसर भी अगर जिन्दा पकड़े जाते तो, शायद यही गवाही देते ।

अठारहवीं सदी तक ये सारे प्रयत्न वैचारिक या शासकीय स्तर पर ही होते रहे । लेकिन जब योरोप में औद्योगिक क्रान्ति का आरम्भ हुआ, भाप की शक्ति से यातायात के साधन भी गतिमान और व्यापक बने, तब मानव के पास वस्तुओं के लेन देन के व्यवहार में, सामाजिक चिन्तन में वैश्विक राज्य बनाने की अपूर्व संभावनाएँ उपस्थित हुईं । अमरीका के महान अध्यक्ष जार्ज वाशिंगटन ने सोलहवीं सदी में अपने को 'मानवता के महान गणराज्य' का सदस्य घोषित किया । एक दृष्टा की हैसियत से उन्होंने कहा था—" मैं देख रहा हूँ कि समस्त मानव-जाति एक विशाल परिवार की भांति एकता की तरफ़ बढ़ रही है। स्वतन्त्रता और सामूहिकता का जो बीज हमने अमरीका में बोया है, वह विश्वभर में फैलेगा । एक दिन 'संयुक्त योरोप' भी बनेगा ।"

मानव का पुराना मन विज्ञान के और महान नेताओं के इस स्वप्न के साथ कदम नहीं मिला सका । 'एक योरोप' बनने देने में ब्रिटेन हिचका । सत्रहवीं सदी में जब वह स्पेन से आगे बढ़ कर साम्राज्यवाद के विस्तार में लगा, 'सत्ता की तराजू' को संभालने के इरादे से उसने दूसरी कोई प्रभावशाली सत्ता को योरोप में पनपने न दिया । एशिया एवं अफ्रीका की जनता के साथ भेदभाव पर प्रतिष्ठित शासक और शासित का गलत नाता कायम किया । विज्ञान के इस केन्द्रित दुरुपयोग के और बहुजनसमाज के शोषण के खिलाफ दुनिया की सामूहिक आवाज खड़ी करने का श्रेय कार्ल मार्क्स को मिला और साम्राज्यवाद के खिलाफ दुनिया की सामूहिक आवाज उठाने का श्रेय गाँधीजी को मिला । मानव के भाग्य में कमी यह रही कि रूस की क्रान्ति गाँधी विचार से अभिभूत हो कर मानवता की चिराग बनने के बजाय प्रशासनिक-शक्ति के रूप में ही आगे आयी और फिर पूर्व (रूस) और पश्चिम (अमरीका) के दो साम्राज्यों की टक्कर शुरू हुई । विश्व ने दो महायुद्धों का आतंक देखा । लीग ऑफ नेशन्स और विश्व संघ की स्थापना के बावजूद गुटों की राजनीति ने विश्व-ऐक्य के इतिहास को रोका ।

इसमें कोई शक नहीं कि लेनिन के "सब को आवश्यकता भर मिले और सब से शक्तिभर समाज सेवा हो" के सूत्र का अगर सच्चे हृदय से अनुसरण किया जाये, तो मानवता का नया युग आयेगा । करना सिर्फ इतना ही होगा कि इस विचार को श्रमनिष्ठा और अध्यात्म की बुनियाद पर खड़ा करना होगा । जब तक मनुष्य श्रम को टालने में ही अपना कल्याण मानता रहेगा, तब तक वह साधनों और सहूलियतों का गुलाम बना रहेगा । वह भौतिक सुखों के पीछे दौड़ने में उत्तम मूल्यों को खो देगा । बड़े पैमाने का यंत्रवाद, व्यापक तन्त्रवाद और बढ़ने वाले नगरवाद का दुष्चक्र रूस की क्रान्ति में ज्यों का त्यों कायम रहा, इसलिये वह क्रान्ति मानव की स्वाधीनता का स्वप्न साकार न कर सकी ।

दूसरे विश्व युद्ध के बाद एक बड़ी ध्यान खींचनेवाली और संतोषप्रद घटना घटी, राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में जागतिक जनमत की बड़ी शक्ति खड़ी हुई । इसके कारण एक सामान्य मनुष्य भी आज वैश्विक समस्याओं को देखता है, समझता है, उस पर चिन्तन भी करता है और अपना मत जाहिर कर सकता है । उसके उस मत प्रकटन में शक्ति होती है । यह है 'विश्व के नैतिक मन' का जागृत होना । पूंजीवादी और समाजवादी दोनों देशों की जनता इस प्रगति के असर से अलग नहीं रह सकेगी, न साम्प्रदायिक संस्थाएँ अलग रह सकती हैं, न दबे गरीब देश की जनता अलग रह सकती है । इसके कुछ उदाहरण हम देखें ।

एक रूसी साहित्यकार एलेक्झांडर सेल्सझेन्टसीन अपनी किताब 'दि फर्स्ट सर्कल' में लिखते हैं—"सत्ता राजतन्त्र की इमारतें बाँध सकती है, व्यवस्थातन्त्र की सीढ़ियाँ बन कर अपने को ईश्वर से भी बड़ा संयोजक मान सकती है, महाखण्ड के सैन्य को अनुशासन में रख सकती है, फिर भी विशेष व्यक्तियों की सर्वश्रेष्ठता को वह लांघ नहीं सकती ।" मनुष्य

केवल रोटी से संतोष नहीं पा सकता, और वैचारिक स्वतन्त्रता को, जो मानव-समाज की अंतः स्फूर्त भूख है, हमेशा के लिए दबाया नहीं जा सकता ।"

रूस की कम्युनिस्ट पार्टी के मुख पत्र प्रवदा के संपादक श्री युरी झुकोव छुट्टियां बिताने हालैंड गये थे । वहाँ उन्होंने बताया कि "अमरीका का प्रभाव कम करने के इरादे से रूस योरोप से मैत्री बढ़ाना चाहता है । अगर योरोप के सब छोटे राष्ट्र तथा रूस अपनी शक्ति सम्मिलित करते हैं तो हम जल्द ही अपने क्षेत्र के मालिक होंगे । हमें दो ब्लाकों को खत्म कर देना चाहिए, और योरोपियन सहकारिता की एक पद्धति प्रस्थापित करनी चाहिए, जिसमें आर्थिक, वैज्ञानिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक एकता का ध्येय रहेगा । एक संयुक्त योरोप होगा, तो वह दुनिया का नेतृत्व करने में समर्थ होगा ।"

स्वतन्त्रता प्रेमी अमरीकन जनता भी इसी प्रकार जनमत प्रकट कर रही थी । वियतनाम व कंबोडिया के अनुभवों के बाद परिस्थिति का, विश्व-ऐक्य की दृष्टि से अध्ययन करने वाले कई चिन्तकों का कहना है कि अमरीका को अब दुनिया के 'पुलिसमैन' का रोल नहीं लेना चाहिए, अन्यथा वह कभी भी तृतीय विश्वयुद्ध का निमित्त बन सकता है । अध्यक्ष के नाते किये गये अपने प्रथम भाषण में अमरीका के प्रेसिडेंट को जनता से वादा करना पड़ा था कि "मेरा ख्वाब है कि अमरीका विश्व के राष्ट्रों के साथ शान्ति का रिश्ता स्थापित करेगा ।"

आज हमारे पास समय और दूरी पर विजय प्राप्त करने के सब साधन उपलब्ध हैं । इस लिए आने वाली पीढ़ी को यह न कहना पड़े कि "यह प्रथम पीढ़ी थी, जिसको सारे साधन उपलब्ध तो थे, लेकिन जिसके पास दूरदृष्टि या कल्पनाशक्ति का अभाव था ।"

अमरीका के एक लेखक ने सर्वेक्षण कर के बताया कि दुनिया में २,८०० से अधिक गैर सरकारी संस्थाएँ हैं, जो विश्वशान्ति, अणुयुद्ध-निवारण, दुनिया की जनता का दुःख निवारण और राष्ट्रों के बीच मैत्री का उद्देश्य ले कर काम कर रही हैं । अमरीका की जनता भी ऐसी संस्थाओं में शामिल है । वह जनता अपनी सरकार की दूरदृष्टि की कमी के लिए दुखी है ।

योरोप और अमरीका की धार्मिक परंपरा भी रूढ़ियों की शृंखला खोल कर मानवीय मूल्यों की रक्षा और अपने कर्तव्यों को संभालने के प्रति काफी विनम्र, परिवर्तन के लिए अनुकूल और जागृत हो गयी है । बाईबिल में कहा गया है कि जहाँ दर्शन नहीं, दूरदृष्टि नहीं, कल्पनाशक्ति नहीं, वहाँ जनता का विनाश होता है । व्हेअर देअर इज नो विजन, दि पीपल पेरिश । विश्व-विनाश के खतरे को देख कर चर्च जग गये हैं । सन् १९३७ में 'आक्सफोर्ड कान्फरेन्स' ने बीज रूप से एक 'तृतीय मार्ग' का विचार पेश किया था, जिससे पूंजीवाद को एक नया सर्जनात्मक मोड़ मिल सकता था और चर्च अपने मतभेदों को टाल कर, गुटों के बाहर आकर एक नया समाज बनाने में लग सकते थे । सन् १९४८ में चर्चों की अखिल जागतिक परिषद हुई थी । उस परिषद के निवेदन में कहा गया था—

"चर्चों को चाहिए कि वे पूंजीवाद और समाजवाद, दोनों के विचारों को अमान्य करें और जनता को इस भ्रम से परावृत्त करें कि दुनिया में इन दो अंतिम विकल्पों के बीच कोई मार्ग नहीं है । पूंजीवाद और समाजवाद, दोनों ने ऐसे वादे किए थे, जो वे पूरे नहीं कर सके

हैं। समाजवादी विचार आर्थिक न्याय पर जोर देता है और वादा करता है कि क्रान्ति के द्वारा आर्थिक समता लायेंगे और फिर स्वाधीनता सहज हाथ में आयेगी। पूंजीवादी विचार व्यक्ति स्वतन्त्रता पर जोर देता है और कहता है कि इसी में से समता निकलेगी। दोनों विचार गलत साबित हुए हैं। अतः यह दायित्व क्रिश्चियनों पर है कि वे न्याय और स्वाधीनता की स्थापना के ऐसे सर्जनात्मक रास्ते तलाश करें जिसमें कि एक दूसरे का गला न काटना पड़े।"

चर्चों की खोज का यह 'तृतीय मार्ग' बहुत सारे संदर्भों में गाँधीजी के सर्वोदय के आदर्शों से मिलता है, जिसकी नींव सत्य और अहिंसा में है। गाँधीजी ने कहा था—

"मैं मानता हूँ कि मानवमात्र की आत्मा एक है, शरीर भिन्न-भिन्न है, पर अंतरतत्त्व एक है। मानवजगत में राजकीय, धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक जो भी क्रान्ति करनी होगी, जहाँ-जहाँ नये मूल्य स्थापित करने होंगे, वहाँ इस आंतरिक एकता को मान कर ही हम आगे बढ़ सकेंगे। इस बुनियादी एकता के सत्य में से ही अहिंसा का धर्म निकलता है। मानवता की एक जमात की भावना बिना रखे मानव अब इस पृथ्वी पर टिक ही नहीं सकता। अध्यात्म के बिना विज्ञान सर्वविनाशक होगा।"

विश्व-ऐक्य के इतिहास के लम्बे दौर के ही क्रम में, इस उर्ध्वतर सत्य तथा विसंगतियों से विश्व को छुड़ाने के लिए विश्व के नैतिक मन की जागृति आवश्यक है।

इस प्रकार उपलब्ध इतिहास का अध्ययन यह कहता है कि इस पृथ्वी पर मानव समुदाय हमेशा विश्व एकता के स्वप्न देखता रहा है और उसके लिए प्रयत्न भी करता रहा है।

वर्तमान युग ने विश्व बन्धुत्व की सम्भावनाओं को बहुत बढ़ा दिया है। भौतिक रूप से व्यक्ति और विश्व के बीच की दूरी घटती चली जा रही है। अब जरूरत इस बात की है कि नैतिक और भावात्मक दृष्टि से विश्व के नैतिक मन की एकता बने। यदि यह एकता न बनी तो भौतिक रूप से दूरी घटने का परिणाम पारस्परिक वैमनस्य में प्रकट होगा। कुछ हद तक वह हो भी रहा है। इस संकट से संसार को निकालने के तथा भावनात्मक एकता की स्थापना करने के लिए भारत में हुए प्रयोगों का सहारा लेना पड़ेगा। क्योंकि भारत में विकसित हिन्दू जीवन पद्धति ने विभिन्नता में एकता की कला का सफलता पूर्वक प्रयोग किया है। हिन्दू जीवन पद्धति में दो विशेषताएँ प्रकट हुई हैं।

१. व्यक्ति, समाज तथा प्रकृति के सन्तुलन को नष्ट करने का प्रयत्न करने वाली, भोगवादी, स्वार्थी नीति के पोषक, चाहे अपने ही स्नेही जन हों, उनकी दुष्टता के खिलाफ धर्म-युद्ध को श्रेष्ठ कर्त्तव्य माना गया है।

२. मानव हित में प्रकट किये गये विरोधी विचारों को भी आदर दिया जावे, तथा उनके साथ समरसता बनाने का प्रयत्न करना मानवीय गुण माना गया है।

हिन्दू जीवन पद्धति की इन विशेषताओं को समझकर अखिल भारतीय सन्त समिति के द्वारा विश्व मन की जागृति हेतु धर्म चक्र प्रवर्तन एक नम्र प्रयास है। ☐

तर्क और विवेक युक्त व्यवस्था

श्री स्वामी कृष्णाचार्य जी महाराज

संसार में श्रद्धा और विश्वास की शक्ति को सर्वोपरि माना है । लेकिन सत्य शोधन के लिए विवेक एवं तर्क़ की उपेक्षा नहीं की जा सकती । हिन्दू जीवन दर्शन में षड्दर्शनों का बहुत महत्व है । इन दर्शनों में सत्य को अनेक तरह से जाँच परख कर देखा गया है । इस जाँच परख के बाद भी प्रस्थान-त्रयी अर्थात् श्रीमद्भगवद्गीता, ब्रह्मसूत्र और उपनिषदों को सत्य निरूपण की कसौटी माना गया है । .

तर्क और विवेक की कसौटी पर खरे उतरे तथा श्रद्धा और विश्वास के आधार पर खड़े हिन्दू-जीवन-दर्शन को जिसने समझने और आचरण में लाने का प्रयत्न किया है, उसके लिए संसार परिपूर्ण आनन्दमय बन जाता है ।

तर्क और विवेक का दुश्मन इस्लाम

इस्लाम मजहब के जीवन दर्शन में श्रद्धा और विश्वास की तो प्रधानता अवश्य दी गयी है, लेकिन सच्चाई की खोज को पास नहीं फटकने दिया गया है । सारी सच्चाई कुरानशरीफ, हदीस और मुहम्मद साहब तक ही सीमित हो कर रह गयी है ।

इस्लाम का जीवन दर्शन तर्क और विवेक़ से इतना भयभीत है कि मुसलमान बनने के लिए पाँच छह साल की उम्र में ही सुन्नत कर दी जाती है । सुन्नत अर्थात् मूत्रेन्द्रिय के अग्रभाग की चमड़ी को काट दिया जाता है । अनेक प्रयोगों के बाद यह सिद्ध हो गया है कि इस चमड़ी का सीधा सम्बन्ध मस्तिष्क में स्थित तर्क और विवेक के संवेदनशील क्षेत्र से है । इसलिए सुन्नत होकर बच्चा जब मुसलमान बनता है तो उसके अन्दर तर्क और विवेक की शक्ति का विकास अवरुद्ध हो जाता है । तर्क और विवेक की दुश्मन यह जीवन-पद्धति अपने छोटे स्वार्थों एवं भोगों की प्रचुरता प्राप्त करने के लिए हदीस, कुरान और मुहम्मदसाहब को भी ताक पर उठा कर रख देती है ।

तर्क और विवेक की उपेक्षा करने वाले इस समुदाय को भोगवादी जीवनमूल्यों की प्रधानता ने अनियन्त्रित कर दिया है । इसलिए यह समुदाय सारे संसार के लिए सिरदर्द बनता चला जा रहा है ।

तर्क और विवेकहीन विकासवाद

मानव समाज के लिए दूसरा बड़ा भारी संकट है वर्तमान समय में विकासवाद की परिभाषा । वर्तमान युग में सबसे अग्रग्मी उस देश को माना जाता है, जिसके पास भोग के साधन अधिक से अधिक हों । कहा गया है कि जिस देश में प्रति व्यक्ति कपड़ा, पेट्रोल,

साबुन, लोहा, कागज, पानी आदि भोगसामग्री जितनी अधिक खर्च होती हैं, वह उतना ही विकसित देश है । इसी आधार पर सारी दुनिया के देशों को प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ श्रेणी में बाँटा गया है ।

विकास की इस परिभाषा ने सारे संसार को भोग सामग्री के संग्रह के लिए प्रेरित किया है । प्रकृति के साथ हो रहे बलात्कार के परिणाम स्वरूप मनुष्य समाज को अनेक प्रकार के प्रदूषणों का शिकार होना पड़ रहा है । विकास की इस विवेकहीन और तर्क-मुक्त अवधारणा के कारण मनुष्य अपना पूरा जीवन भोगसामग्री का संग्रह करने में लगा रहा है । मजे की बात यह है कि भोगसामग्री संग्रह करने के बाद जब उसे भोगने का समय आता है तो बेचारे का शरीर भोगने से इन्कार करने लगता है । यही तर्क व विवेकहीन विकासवाद का सबसे बड़ा संकट है ।

तर्क व विवेकहीन विकास की चुनौतियाँ

भोगसामग्री पर एकाधिकार जमाये रखने के लिए राष्ट्रों, राज्यों की स्थापना ने प्रकृति माता से प्राप्त समस्त साधनों को संसार के छोटे से वर्ग के हाथों में सीमित करने का अवसर प्रदान किया है । परिणाम स्वरूप इन राज्यों ने सारे संसार को युद्ध क्षेत्र बना दिया है । अशान्ति और हिंसा इनके निहित स्वार्थ बन गये हैं । इन राष्ट्र-राज्यों ने अपने संरक्षण के ऐसे संविधान बनाये हैं ताकि संविधानों की दुहाई देकर लोगों के आँख, कान व मुँह पर काली पट्टी बाँधी जा सके और आम आदमी अन्धा, बहरा एवं गूँगा बनकर इन तर्कहीन और विवेकहीन संविधानों का दास बना रहे ।

इस प्रकार से मानव समाज के सामने दो चुनौतियाँ बहुत बड़ी हैं—

(१) इस्लाम का तर्कहीन व विवेकहीन जीवनदर्शन जो भोगवाद की प्रेरणा देता है ।

(२) संसार के समस्त राष्ट्र-राज्य, जिनके संविधानों ने प्रकृति के समस्त साधनों पर एकाधिकार एवं भोगवादी सभ्यता को संरक्षण प्रदान किया है ।

इन दोनों चुनौतियों का समाधान हिन्दू-जीवन-दर्शन में मौजूद है । लेकिन कालचक्र वश हिन्दू-जीवन-दर्शन अपने अन्दर के कुछ बुनियादी अन्तर्विरोधों के कारण उपेक्षित होकर हीन ग्रन्थी से जकड़ गया है ।

संसार की इस दयनीय स्थिति का समाधान करने के लिए भारत की श्री अयोध्या नगरी में रामलला अपनी समस्त शक्तियों के साथ प्रकट हो गये हैं । घटनाक्रम ने कुछ इस तरह से मोड़ लिया कि श्रीरामजन्मभूमि आन्दोलन का संचालन सूत्र सन्त समाज के हाथ में आ गया है । सन्त समाज तो भगवत् प्रेरणा से कार्य करता है, साथ ही उसको समस्या की तह में जाने का अभ्यास है । अतः सन्त समाज के सामने सबसे पहला काम यह है कि हिन्दू-जीवन-दर्शन को उपेक्षा और हीन ग्रन्थी से बाहर निकाले । इसके लिए एक क्रमिक कार्यक्रम होगा ।

५

दो चरण

(१) प्रथम चरण में इस्लाम के तर्कहीन और विवेकहीन जीवनदर्शन के कारण मुगल साम्राज्य के उन अवशेषों को समाप्त करना, जिनकी स्थापना से हिन्दू जीवन दर्शन में हीनता और उपेक्षा के भाव पैदा हो गये हैं । यह मोर्चा हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष नहीं है और न ही मन्दिर-मस्जिद विवाद है । क्योंकि इस योजना में न तो मुसलमानों का उन्मूलन करना है और न ही इस्लाम के पूजा घरों तथा नेक इन्सानों के मजारों को हानि पहुँचानी है । लेकिन जिन जालिम बादशाहों ने भारत की अस्मिता को नष्ट किया है, उनके अवशेषों को पूरी तरह समाप्त कर दिया जाएगा । इसमें मन्दिरों पर बनी इमारतें, ग्राम और नगरों के नाम, सड़कों के नाम भी शामिल किये जायेंगे । ऐसा नहीं है कि बाबरी ढांचे की तरह सबको ध्वस्त किया जायेगा । समय आने पर नेक तथा भारत माता के सपूत मुसलमानों को समादृत किया जायेगा । रसखान, फकीर सरमद, रहीम खानखाना आदि पूर्वकाल के तथा किदवई, छागला, आदि वर्तमान काल के मुसलमान आदर योग्य हैं । हम चाहते हैं कि मुसलमानों में नेक इन्सान भारत माता के सूपत इस प्रक्रिया में भारतीय अस्मिता को सुरक्षित रखने की नीयत से पूरा सहयोग करें ।

हिन्दू जीवन पद्धति के अन्तर्विरोधों को दूर करने के लिए व्यापक लोक शिक्षण देना ।

सदियों की हीनता और उपेक्षा की राख को झाड़ने के लिये सामूहिक पुरुषार्थ से मगुल साम्राज्यवादी स्मारकों को रूपान्तरित करना।

इस्लाम मज़हब के मजहबी नेक राष्ट्र भक्त इन्सानों को प्रोत्साहन देकर तर्क हीन विवेकहीन नफरत पैदा करने वाले कर्मकाण्डों को इस्लाम मजहब से दूर करना ।

हिन्दू समाज सभी गुरुपंथों का आदर करता है, लेकिन परस्पर नफ़रत पैदा करने या जबरदस्ती एवं लालच देकर एक गुरु-पंथ के दूसरे गुरु-पंथ में जाने या अनुयाई बढ़ाने की प्रवृत्ति को पूरी तरह प्रतिबन्धित करने के पक्ष में है ।

(२) दूसरे चरण में भारत में ऐसी व्यवस्था स्थापित की जायगी जो राज्यधर्म को आधार मानकर सर्व हितकारी काम कर सके । यह सारी व्यवस्था शास्त्र सम्मत होने के साथ-साथ सामयिक संदर्भ में तर्क और विवेक के आधार पर ही विकसित होगी । ☐

5

सत्ता तो मिली, लेकिन स्वतन्त्र कब होंगे ?

महन्त श्री श्यामसुन्दर दास जी महाराज

स्वतन्त्रता-दिवस के उपलक्ष्य में लिखे गये अपने विशेष लेख में एक लेखक ने यह प्रश्न उठाया था कि "१५ अगस्त १९४७ को भारत एक प्रभुसत्ता-सम्पन्न राज्य (सावरेन-स्टेट) तो हो गया, लेकिन भारत के लोग स्वतन्त्र कब होंगे ?"

लेखक के सामने प्रश्न था मानसिक और सांस्कृतिक स्वतन्त्रता का । उसने कहा था कि हमारे मानस की जब यह स्थिति है कि हम आज भी पश्चिम को ही अपना अगुआ मानते है, और हर चीज में पश्चिम के ही तौर-तरीकों का अनुसरण करने में गौरव समझते हैं तो हमारी स्वतन्त्रता किस बात में है ?

सांस्कृतिक मूल्यों का क्षरण

हमारे युवक-युवतियाँ हिप्पियों के कपड़े पहन रहे हैं । स्टेशन पर, सड़क पर, बाजार में और पत्र-पत्रिकाओं में विज्ञापन को देख लीजिए । सेक्स ही सेक्स रहता है । सेक्स के सिवाय दूसरा कुछ रहता ही नहीं । फिल्म-समारोह के अवसर पर कुछ मंत्रियों ने खुलकर फिल्मों में नग्नता का समर्थन किया । सिद्धान्त क्या बताया गया था ? आधुनिकता । आधुनिकता के नाम में यह सब आवश्यक है, क्षम्य है ?

आजकल मुक्त प्रेम की बहुत चर्चा होती है । यह सही है कि प्रेम बांधकर रखने की चीज नहीं है, लेकिन स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों को व्यावसायिकता, विवाह को लेन-देन और जाति से मुक्त करने की बात क्यों होती है ? मुक्तता और उच्छृंखलता के बीच कोई रेखा होगी तो उसकी चर्चा क्यों नहीं होती?

गर्भपात का कानून पास हों और उस पर किसी प्रकार की हलचल न हो !

अनियंत्रित सेक्स के साथ-साथ जुए और शराबखोरी का खुला प्रचार हो !

युवक-युवतियाँ चरस और अन्य नशीली चीजों का खुला सेवन करें—ये ऐसी चीजे हैं जो भारतीय संस्कृति के विशुद्धतम मूल्यों के लिए गंभीर चुनौती हैं । फिर भी हम क्या कर रहे हैं ?

सांस्कृतिक दृष्टि से तो हम पश्चिम की आंधी के प्रवाह में बहे जा रहे ही हैं, राजनीति में भी हमारा वही हाल है । हमारे नेताओं और शासकों का दिमाग, चाहे वे पूंजीवादी विचार के हों या साम्यवादी, पश्चिम से ही बँधा हुआ है । उन्हें अमरीका, रूस और चीन के सिवाय दूसरा कुछ दिखायी ही नहीं देता । जब उन्हें पश्चिम में अपनी रीति-नीति का समर्थन मिलता है तो वे अपने को ठीक समझते हैं, अन्यथा नहीं ।

यही हाल हमारे योजनाकारों, विद्वानों और बुद्धिवादियों का है । उन्हें पश्चिम का प्रमाण चाहिए, पश्चिम की प्रेरणा और प्रशंसा चाहिए । जो पश्चिम में होता है, वही आधुनिक है, वैज्ञानिक है । इस तरह का भ्रम उन्होंने फैला रखा है । लगता है जैसे ऊपर से नीचे तक भारत से भारतीयता को समाप्त करने का यह सुनियोजित षड्यन्त्र हो ।

स्वतंत्रता बनाम गुलामी का केन्द्र

आधुनिकता और वैज्ञानिकता के नाम पर पश्चिम के इस अंधानुकरण के विरुद्ध जेहाद छेड़ा गया था, लेकिन स्वतन्त्रता के बाद यह बात बदल गयी । गाँधी के भारत में अंग्रेज के लिए स्थान था, अंग्रेजियत के लिए नहीं । नेहरू के भारत में अंग्रेज के लिए स्थान नहीं था, लेकिन अंग्रेजियत के लिए भरपूर था । परिणाम यह हुआ कि दिल्ली जिस तरह स्वतन्त्रता के पहले राजनैतिक दासता का केन्द्र थी, उसी तरह स्वतन्त्रता के बाद सांस्कृतिक गुलामी का केन्द्र बनी, और बनती ही जा रही है । भारत की राजधानी होते हुए भी आज दिल्ली भारत की परिस्थिति, भारत की परम्परा और भारत की प्रतिभा से दूर ही नहीं, इतनी विरोधी भी है कि—वहाँ जाकर लगता ही नहीं है कि यह एक ऐसे देश की राजधानी है, जो अभी छ्यालीस साल पहले इतिहास के सबसे बड़े साम्राज्यवाद से मुक्त हुआ है ।

आज जीवन के हर क्षेत्र में पश्चिम की हवा से हमारे पैर उखड़ते जा रहे हैं । पश्चिम गेंद की तरह हमें उछाल रहा है । राजनीति से लेकर फैशन तक, हर चीज में हम पश्चिम का पिछलग्गू होने में धन्यता का अनुभव कर रहे हैं । यह हमारे नेतृत्व की सबसे बड़ी विफलता है—प्रशासन, विकास, शिक्षा, सबकी विफलता है । यह देश के समूचे विशिष्ट वर्ग (एलीट) की विफलता है, जो हर प्रश्न का उत्तर पश्चिम में ढूंढता है, उसके हाथ में देश का जीवन है । अंग्रेजी शासन ने देश के जिस 'स्व' को समाप्त किया था, उसे प्रतिष्ठित करने का अवसर आया तो हमने गुलामी की जंजीरों को गले का हार बनाकर पहन लिया । जिस 'स्व की रक्षा' के लिए लाखों बलिदान हुए, वही 'स्व' आजाद भारत में हीन समझा जा रहा है । पिछड़ा हुआ समझा जा रहा है ।

नकल नहीं, असल चाहिए

हम अनेक स्वतन्त्रता समारोह मना चुके । हमने विदेशी आक्रमण से रक्षा के लिए सेना बनायी है, लेकिन अपनी सांस्कृतिक गुलामी से मुक्त होने के लिए क्या किया है ? आज देश का मानस पहले से कहीं अधिक नयी चीजें ग्रहण करने को तैयार है । लेकिन वे नयी चीजें क्या हों, यह कौन बताएगा ? यह प्रयोग और संशोधन कब होगा, कहाँ होगा, कि क्या नया, कितना नया, कैसा नया, हमारे लिए अहितकर है ? कब बाहर की अँधी नकल छोड़कर भारत के गारे-माटी से भारत का भविष्य गढ़ा जाना शुरू होगा ? इस प्रश्न का उत्तर तलाश किये बिना भारत के 'स्व' का रक्षण नहीं हो सकेगा ।

श्रीरामजन्मभूमि आन्दोलन की सफलता तथा हिन्दू-राष्ट्र भारत की स्थापना से ही इस प्रश्न का उत्तर मिलेगा । ❑

मुक्त-चिन्तन

श्री स्वामी हीरानन्द जी महाराज

ब्रिटिश शासन समाप्त होने के बाद देशी शासन-काल में ईंट, पत्थर सीमेण्ट से होने वाला निर्माण कुछ हुआ है परन्तु व्यक्ति के चरित्र का अधोपतन हुआ है । यह निर्माण जिस व्यक्ति के लिए किया जा रहा है, वह व्यक्ति मानवता से शून्य हो जाएगा तो यह विकास किस के काम आ सकेगा ?

दयनीय परिस्थिति

आज देश में कोई भी वस्तु बिना मिलावट मिलना कठिन है । चोरी, डाका , कत्ल खुलेआम होने लगा है । होटलों में नंगा नृत्य (कैबरे) होने से व्यक्ति को कामुकता की ओर धकेला जा रहा है । शराब के ठेके गाँव-गाँव खोलकर मनुष्य को आर्थिक और सामाजिक रूप से जर्जर बना दिया गया है । वह नशे में रहकर कर्तव्य से विमुख है ।

युवा पीढ़ी राष्ट्रीय भावना को त्याग अराजकता और उच्छृंखलता की ओर बढ़ रही है । राजनैतिक दाँव-पेंचों से साम्प्रदायिक दंगे होते हैं, जिसमें निरीह व निरपराध लोगों का खून बह रहा है । देश के रक्षक कहे जाने वाले सुरा-सुन्दरी के बदले देश को बेचने पर तुले हैं । न्यायालयों में न्याय धन से बिक रहा है । देश और प्रान्तों के विभाजन की मांग बढ़ रही है । गर्भपात के कानून से अनाचार बढ़ रहा है । देश की राजनीति ने अर्थ और काम को बढ़ावा दिया है । इसी से भ्रष्टाचार दिनों दिन बढ़ रहा है । जघन्य कर्म करने में भी मनुष्य संकोच नहीं करता । अपने दायित्व को न समझ कर अधिकारों की मांग बढ़ रही है । इसके लिए हड़ताल तथा राष्ट्र की सम्पत्ति तोड़-फोड़ करते हैं । लाटरी जुआ खेलने को प्रोत्साहित किया जा रहा है । महँगाई अबाध गति से बढ़ रही है । करों के बोझ से जनता का भरपूर शोषण हो रहा है । आज का शासन नये-नये विभाग बना कर, अधिकारी महँगाई भत्ते बढ़ा कर जनता का खून चूस रहे हैं । छल, कपट, विश्वासघात असुरक्षा के जीवन में मनुष्य का दम घुट रहा है । दुःखी होकर कुछ लोग तो कह भी देते हैं कि इस आजादी से तो अंग्रेज-शासन ही अच्छा था । इस सब का मूल कारण क्या है ? इतनी दयनीयता क्यों है ?

परिस्थिति क्यों बिगड़ी

राजनैतिक लोग कहते हैं कि व्यवस्था बदलनी चाहिए । व्यवस्था बदलने की आवाज कुछ सामाजिक संगठन भी उठा रहे हैं । लेकिन व्यवस्था क्या हो ? क्या सत्ता पक्ष के कुर्सी

से हट कर विपक्ष के कुर्सी पर बैठ जाने से व्यवस्था परिवर्तन होगी ? नहीं, ऐसा कई बार हो चुका है । लन्दन के अंग्रेज भारत में पैदा हुए अंग्रेजी मस्तिष्क वालों को कुर्सी देकर चले गये ।, भारत के प्रधानमन्त्री और राष्ट्रपति कई बदल गये । विरोधी पक्ष (जनता पार्टी) को भी कुर्सी मिली । परन्तु बुराइयों की बाढ़ ही आती चली जा रही है ।

इन सब बुराइयों के कारण का गहराई से अध्ययन किया जाय तो भारत के लिए बना संविधान है । वर्तमान संविधान को भारतीय संविधान कहना भी अनुचित ही होगा, क्योंकि देश में सभी कानून (न्यायप्रणाली, पुलिस-मैन्युवल, सोसायटीरजिस्ट्रेशन-एक्ट, कर-प्रक्रिया आदि) १८६० से १६३५ तक अंग्रेजों के बनाये हुए हैं । कौंसिल तथा गवर्नरों की धारा सभा के रूप में लोक सभा तथा विधान सभाएँ थोड़ा हेर-फेर कर खड़ी कर ली गयी हैं ।

संविधान के प्रारम्भ में ही यह India अर्थात् भारत का संविधान होगा लिखा है, जबकि India शब्द भारत शब्द का शब्दार्थ भी नहीं है और न भावार्थ ही है । अतः इण्डिया अर्थात् भारत का कोई तालमेल नहीं है ।, परन्तु संविधान निर्माता के अन्दर विदेशियत भरी हुई थी इसलिए इस शब्द का प्रयोग हुआ है ।

विधान के अन्तर्गत भारत कोई स्वतन्त्र इकाई नहीं है । यह कई राज्यों (स्टेटों) का समूह माना गया है । इसी नियम के अन्तर्गत कई प्रान्त नये बनाये गये । कश्मीर के लिए विशेष धारा है । मंत्री-मंडल अपने क्षेत्र की प्रजा पर शासन भी कर रहे हैं । उनका ज़ीवन स्तर हर प्रकार से पुराने जागीरदार या राजाओं के जैसा हो गया है । इसी प्रलोभन से आज देश में अनेक प्रान्तों की मांग उठ रही है । संविधान बनने से पूर्व भारत में जो भी रहते रहे हैं, वे सब भारत के नागरिक, बाद में आने वालों को स्वीकृति लेकर आना चाहिए या बसना चाहिए । सम्पूर्ण नागरिकों के लिए समान कानून होना चाहिए । परन्तु संविधान में लिखा गया है कि हिन्दू, मुसलमान, ईसाई नागरिक होंगे । हिन्दू की व्याख्या में बौद्ध, जैन, हिन्दू और सिख बताया गया है । आगे धारा २६-३० में कहा गया है कि इन नागरिकों में वर्ग विशेष को, (अल्पसंख्यकों को) जिनकी भाषा, लिपि, सम्प्रदाय, संस्कृति भिन्न हो, उन्हें वह सुरक्षित रखने का पूर्ण अधिकार होगा । वह अल्पसंख्यक अपनी शिक्षा संस्था भी अलग (सरकारी नियन्त्रण से रहित) चला सकते हैं । अल्पसंख्यक कौन होंगे, इसको परिभाषित नहीं किया गया है । सरकार उनको आर्थिक सहायता भी देगी । यह सब समाज में भेदभाव, अलगाव पैदा कराने वाले नियम हैं । इसी प्रकार के कानूनों से साम्प्रदायिक झगड़े पैदा होते हैं । अनेक धाराएं ऐसी हैं, जिनकी कोई व्याख्या संविधान में नहीं की गयी है । ऐसी धाराओं से राजनैतिक लोगों द्वारा जनता को भड़काने का अवसर मिलता है । संविधान की काफी मोटी पुस्तक है ५०० पृष्ठ होंगे । उन सबके सम्बन्ध में लिखना तो कठिन है, प्रमाण रूप से कुछ बातों का उल्लेख कर दिया गया है । इस सब का आशय यही है कि भारत के संविधान पर पुनः नये सिरे से विचार होना चाहिए ।

व्यवस्था का प्रस्तावित स्वरूप

भारतीय संस्कृति के अनुसार व्यवस्था का स्वरूप एक श्लोक में इस प्रकार है—

न राज्यं न च राजासीन्न दण्डो न च दण्डिक : ।
धर्मेणैव प्रजा : सर्वाः रक्षन्ति स्म परस्परम् ।।

किसी युग में न राज़ा, न राज्य और न दण्ड का विधान ही था । व्यक्ति इतने धार्मिक (चरित्रवान) थे कि अपना धर्म मान कर वे एक दूसरे की रक्षा करते थे । जब राजा की कल्पना की गयी, तब सर्वोत्तम व्यवस्था करने के कारण राम को आदर्श राजा माना गया । वर्तमान में व्यक्ति के अन्दर इतनी गहरी धर्म चेतना नहीं रह गयी है कि अपना कर्तव्य मान कर एक दूसरे की रक्षा करे और राम जैसा मर्यादित, नीतिज्ञ, न्यायप्रिय, करुणानिधान तथा त्यागी-तपस्वी मिलना भी कठिन है जिस को राजा मानकर सभी अधिकार सौंपे जा सकें । अतः अब एक संविधान की आवश्यकता है ।

भावी संविधान ऐसा हो—जिससे नागरिकों का अभिक्रम प्रगटे तथा समाज की एकता और देश की अखण्डता सुरक्षित रहे । व्यक्ति के अन्तर में नैतिकता, राष्ट्र के लिए बलिदान की भावना जागृत हो । राष्ट्र की प्रत्येक वस्तु में आत्मभाव हो, स्वार्थ का त्याग हो । सभी नर नारी परहित में रत रहें । देश में न कोई शोषक रहे और न कोई शोषित हो । वैकल्पिक व्यवस्था लाने के लिए देश की सभी राजनीतिक पार्टियाँ समाप्त की जायँ । प्रत्येक ग्राम, मुहल्ला या क्षेत्र में अपनी आबादी के अनुपात से पार्टी विहीन पंचायतों की स्थापना करें । हर पंचायत अपने ही क्षेत्र के पाँच चरित्रवान व्यक्तियों का यथा संभव सर्व समिति से चयन करे । ऐसी-ऐसी दस पंचायतों से एक-एक पंच लेकर दस के समूह की क्षेत्रीय पंचायत कायम हो । दस के समूह वाली पंचायतों से एक-एक पंच लेकर सौ की एक तथा हजार और दस हजार की एक क्षेत्रीय ईकाई स्थापित की जाय । दस हजार पंचायतों के चयन से राष्ट्रीय पंचायत स्थापित हो सकती है जो कि वर्तमान लोक सभा के समान होगी ।

पंचायतों का स्वरूप

प्रत्येक पंचायत अपने में पूर्ण स्वतन्त्र होगी । कोई भी पंचायत किसी पंचायत के अधीन नहीं होगी । जो भी पंचायतों का कर्तव्य है, उसका सही निर्वाह हो रहा है या नहीं, यह मतदाता देखेंगे और वे स्वयं जिम्मेदार होंगे ।

न्याय, शिक्षा, स्वास्थ्य अपने क्षेत्र की सुरक्षा और विकास के कार्य पंचायत के अधीन होंगे । प्रत्येक क्षेत्रवासी को रोजी-रोटी, रहने का स्थान देने की जिम्मेदारी पंचायत की होगी । अपने क्षेत्र के उत्पादित कच्चे माल से बनने वाली वस्तुओं का निर्माण करने की व्यवस्था पंचायत करेगी । अपने क्षेत्र के भूमि आदि के कर भी पंचायत निर्धारित करेगी और वसूल भी कर सकेगी । जो कार्य पंचायत की एक इकाई की शक्ति तथा सामर्थ्य से बाहर है, उसे दस पंचायतों की इकाई मिलकर करे । उससे अधिक सामर्थ्य की आवश्यकता होने पर १०० या हजार की इकाई मिलकर करें ।

प्रत्येक पंचायत एक दूसरे के यहाँ के विकास कार्यों के प्रयोग, उत्पादन, शिक्षा, सुरक्षा आदि व्यवस्थाओं के अनुभवों से लाभ उठाए । अपने अनुभव दूसरों को बताये ।

पंचायत क्षेत्र के अल्पसंख्यक, जाति या सम्प्रदाय विशेष के व्यक्ति को पंचायत के पंच या बहुसंख्यक प्रताड़ित न करें, हानि न पहुचायें, गरीबी से ऊपर उठाने में बाधक न बनें आदि, आदि ।

जीवन की अन्य व्यवस्थाओं के विषय में भी पंचायत सामयिक तथा दूरगामी आवश्यकताओं को समझ कर नीति निर्धारण करने की शक्ति रखेगी । न्याय, शिक्षा, स्वास्थ्य तथा अन्य विविध विषयों से सम्बन्धित नीतियों का निर्धारण मानव केन्द्रित मूल्यों को पोषण देने हेतु होगा । विलासिता और भोगवाद को प्रभावी नहीं होने दिया जायेगा ।

मुक्त विचार के लिए कुछ बिन्दु प्रस्तुत किये गये हैं । इस मुक्त चिन्तन में सभी सहभागी हो सकते हैं । ☐

अन्तर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय परिस्थितियों का विश्लेषण तथा विकल्प

श्री स्वामी वीरेश्वरानन्द जी महाराज

विज्ञान के युग ने दुनिया को एक छोटी इकाई बना दिया है । ग्रहों, उपग्रहों एवं सौर मण्डलों की खोजों ने पूरी दुनिया को एक नया रूप दे दिया है । इस युग के चिन्तकों और विचारकों के लिए विश्व से छोटी इकाई पर सोचना कालातीत हो गया है । राजनीतिकराष्ट्रों की सीमाएँ टूट रही हैं । विज्ञान और विचार की शक्तियों ने सारे राष्ट्रों के बन्द दरवाजे खोल दिये हैं । इस वजह से आज की राजनीति, अर्थनीति और संस्कृति विश्व-व्यवस्था के लिए मानव-जाति को बाध्य कर रही है ।

बदलता परिवेश

१६वीं शताब्दी का राजतंत्र (सामन्त-तंत्र) टूट चुका है। यत्र-तत्र इनके अवशेष दिखाई पड़ते हैं, जो प्रायः प्रभावहीन हैं । इसी तरह यूरोपियन देशों में जो राजतंत्र की जगह प्रजातंत्र आया, उसका लाभ लेकर यूरोप के पूँजीपतियों ने दुनिया में साम्राज्य विस्तार कर जनता का शोषण किया । पूँजी-वादी प्रजातंत्र एवं समाजवादी लोकतन्त्र को मानव-जाति के कटघरे में खड़ा कर दिया है, वह भी आखिरी दम ले रहा है । कभी भी राजतंत्र की तरह अपना प्रभाव खो बैठेगा । विश्व के राजनैतिक रंग मञ्च पर व्यवस्थाएं जिस तेजी से बदल रही हैं, उससे यह सिद्ध होता है कि सम्पूर्ण मानव-जाति अपनी समता, स्वतंत्रता के जन्म सिद्ध अधिकार के लिए जागृत हो गई है । दुनिया एक महाक्रान्ति (अभिनव-क्रान्ति) की ओर तेजी से बढ़ रही है, उसके इस बदलाव के रास्ते में कोई शक्ति ठहर नहीं सकती है । परिस्थितियों के गर्भ से ही क्रान्तियों का जन्म होता है। उसे कोई लाता नहीं, बल्कि लोग उसके निमित्त बनते हैं । क्रान्तियों के जो अगुआ होते हैं, उन्हें ही हम महापुरुष, युगपुरुष कहते हैं । वे सारा परिवेश बदल देते हैं ।

उपरोक्त परिस्थितियों के विश्लेषण से सिद्ध होता है कि आधुनिक युग की समस्याएँ राष्ट्रीय नहीं, बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय हैं । इनके निराकरण के लिए हमें अपने राष्ट्र के जागरण को विश्व जागरण के साथ जोड़ना होगा, तभी हम वास्तविक क्रान्ति के कर्ता बनेंगे । क्रान्ति द्रष्टा कभी पूर्वाग्रही नहीं होता । वह किसी युगपुरुष अथवा क्रान्ति-पुरुष को अन्तिम नहीं मानता । क्रान्ति मनुष्य जीवन में और समाज में हर क्षण हो रही है, जिसे हम देख नहीं पाते । जिस तरह मनुष्य जीवन में क्रान्ति का कारण नये जन्म के लिए मृत्यु होती है, उसी तरह सामाजिक जीवन में सभी पुरानी मान्यताएँ और संहिताएँ आमूल-चूल बदल जाती हैं । उसके लिए सिर्फ व्यवस्था परिवर्तन नहीं, बल्कि महाविप्लव अनिवार्य होता है । इसी विप्लव के गर्भ से नये समाज का जन्म होता है । महाविप्लव की परिस्थितियां जब बनती हैं, तब

समाज का निहित स्वार्थी वर्ग विप्लव को रोकने के लिए आम आदमी को, जिसका शोषण और दमन करता है, विप्लव का भय, अराजकता का भय दिखाकर भ्रमित और भयभीत करता है । जब परिस्थितियाँ हाथ से निकलती दीखती हैं तो वह वर्ग आम आदमी को तत्कालीन व्यवस्था में ही कुछ अधिकार देने की घोषणाएँ करता है । जिस तरह इस युग का पूँजीवादी लोकतंत्र कर रहा है । उसने दुनिया के अधिकांश भाग को सुविधाभोगी बनाकर अपना बन्धुआ मजदूर बना लिया है । राजनीतिज्ञों बुद्धिजीवियों को खरीद लिया है । इस प्रकार वह अपनी मानवता विरोधी व्यवस्था की जिन्दगी को बढ़ाता जा रहा है । इस व्यवस्था के असली चेहरे को पहचानने के लिए हमें अपने देश के प्रजातंत्र के असली चेहरे को पहचानना होगा, जो सालों से लगातार देश के विकास के नाम पर देश को पूँजी आधारित पश्चिमी औद्योगिक जाल में फंसाता चला जा रहा है ।

संसदीय प्रणाली की अक्षमता

सभी राजनैतिक दल यथास्थितिवाद के समर्थक हैं । उनकी आपसी प्रतिद्वन्द्विता, सत्ता बदल की राजनीति का ढोल बजा कर व्यवस्था परिवर्तन के लिए जनता को गुमराह करती रहती है । इन्हीं के स्वार्थ के लिए शक्ति सन्तुलन के रूप में दक्षिणपंथी एवं वामपन्थी दल कहे जाते हैं । जबकि सचाई यह है कि चरित्र की दृष्टि से इस संसदीय राजनीति में न कोई दक्षिण पंथी है, न वामपन्थी । सभी दल अवसरवादी मध्यम मार्गी हैं । संसदीय राजनीति के मार्ग से दुनिया में कहीं वास्तविक क्रान्ति नहीं हुई । इसे मार्क्स ने भी कभी स्वीकार नहीं किया, गांधी ने तो इसको वेश्या और बाँझ कहा । फिर भी अपने को क्रान्तिकारी मानने वाले मार्क्सवादी और गांधीवादी इसी की शरण में चले गये । इसलिए क्रान्तिकारियों का यह स्वधर्म है कि वह पूँजीवादी कथित लोकतंत्र की जिन्दगी बढ़ाने वाले नारों के बहकावे में न आवें । विश्व पूँजीवाद के बढ़ते हुए प्रभाव ने सारी दुनिया को इस समय इसी संसदीय प्रणाली को मानने के लिए बाध्य कर दिया है । ऐसी स्थिति में यह तो रणनीति के तौर पर उचित लगता है कि कुछ लोग संसदीय प्रणाली को बदलने के लिए संसद में जाकर अपनी आवाज बुलन्द करें, परन्तु क्रान्ति की क्षमता इसमें नहीं है यह याद रखें ।

क्रान्ति का ठहराव

पूँजीवाद लोकतंत्र की वर्तमान व्यवस्था में आमूल परिवर्तन के लिए संत विनोबाभावे ने सर्वोदय की भावनात्मक ऊर्जा को लेकर हृदय परिवर्तन और विचार परिवर्तन की प्रक्रिया से एक अभिनव क्रान्ति का प्रयास किया, लेकिन उनकी पंच महाशक्तियों के सहयोग से क्रान्ति की कल्पना एक पड़ाव पर जाकर रुक गयी । उनकी सेना के वरिष्ठ साथी सत्ता और सम्पत्ति वालों के लिए समर्पित हो गये । क्रान्ति की धारा कुण्ठित हो गई । उसमें से एक महापुरुष लोकनायक जयप्रकाशनारायण ने सामान्य जन की पीड़ा से पीड़ित होकर युवा शक्ति द्वारा सम्पूर्ण क्रान्ति की लड़ाई शुरू की । उनके भी अनेक साथियों ने सत्ता के सामने समर्पण कर दिया । इसलिए वह लड़ाई भी उनके जीवनकाल में ही एक पड़ाव पर यानी सत्ता परिवर्तन तक ही सीमित हो गई । इन दोनों महापुरुषों ने यद्यपि सत्ता पक्ष और विपक्ष की राजनीति को नकार कर तीसरा रास्ता अपनाया था, परन्तु अपने प्रयास में वे सफल न हो सके ।

13

मार्क्सवादी, समाजवादी, क्रान्तिवादी, गाँधीवादी, विनोबा और जे० पी० वाले वर्तमान सत्ता परिवर्तन की राजनीति के जाल में फंस गये हैं । ये सभी अपने रास्ते से भटक गये हैं । इसलिए सत्ता परिवर्तन की राजनीति को ही अब यह लोग व्यवस्था परिवर्तन की संज्ञा दे रहे हैं । काल चक्र घूम रहा है । परिस्थितियाँ बदल रही हैं । पुरानी क्रान्तिनीतियां, रणनीतियां, युगपुरुष कालातीत हो गये हैं । 'दुनिया की सभी राज्य व्यवस्थाएं आदमखोर हैं'— ऐसी घोषणा दुनिया के ५२ नोबेल पुरस्कार विजेताओं ने की थी । उन्होंने सम्पूर्ण मानव-जाति को इन व्यवस्थाओं के विरुद्ध संघर्ष करने का आवाहन किया था ।

राज्य व्यवस्थाओं के विषय में भारतीय दार्शनिकों एवं ऋषियों ने गम्भीरता से केवल विचार ही नहीं किया है, अनेक प्रयोग और अनुभवों के बाद समाज की सुख-शान्ति की स्थापना के लिए धर्मभाव का अधिष्ठान भी सुझाया है । स्पष्ट दिशा निर्देशक सूत्र है—

न राज्यं न च राजासीन् न दण्डो न च दण्डिकः ।
धर्मेणैव प्रजाः सर्वा रक्षन्ति स्म परस्परम् ।।

इस निर्देशन सूत्र में राज्य और दण्ड के विकल्प के रूप में परस्पर रक्षण के लिए धर्मभाव मान्य किया गया है । दुनिया के ५२ नोबेल पुरस्कार विजेताओं ने राज्य व्यवस्थाओं को आदमखोर तो कहा परन्तु उसका विकल्प नहीं सुझाया जबकि भारतीय मनीषियों ने धर्म के रूप में विकल्प भी प्रस्तुत किया है । □

विश्व-क्रान्ति की वैचारिक पृष्ठभूमि

श्री स्वामी हंसदास जी महाराज

संसार का संकट

आधुनिक विज्ञान और टेक्नालाजी के विकास ने समय और दूरी पर बहुत ही विलक्षण ढंग से विजय प्राप्त की है । परिणामस्वरूप संसार के किसी भी कोने की साधारण से साधारण घटना का प्रभाव सारे संसार पर पड़ता है । सभी उस घटना के विषय में सोचने को मजबूर हो जाते हैं । अतः कहा जा सकता है कि विज्ञान के विकास ने दुनिया को एक पारिवारिक इकाई के रूप में जीने को बाध्य कर दिया है । लेकिन दूसरी तरफ विज्ञान के विकास ने ही मनुष्य के हाथ में अद्भुत मारक अस्त्र भी दिये हैं, साथ ही भोग के अपार साधन प्राप्त करने की संभावना और क्षमता भी मनुष्य को दी है । यदि इस दुहरी वास्तविकता को न समझा गया तो भोग के साधनों पर प्रभुत्व जमाने की प्रतिस्पर्धा संसार में एक ऐसा संकट पैदा कर देगी, जिससे चारों तरफ बरबादी और तबाही नज़र आयेगी । इस तबाही या बरबादी के मुख्य कारण हैं—१. परिस्थिति की ना समझी, २. विज्ञान व टेक्नालाजी का दुरुपयोग, ३. राजनीतिक अव्यवस्था, ४. आर्थिक क्षेत्र में बढ़ते हुए उपभोगवाद के कारण पैदा हुई आर्थिक विषमता ।

व्यापक चेतना

संसार की इस तबाही का प्रभाव हर क्षेत्र में दिखाई दे रहा है । जाति, सम्प्रदाय, क्षेत्रवाद और संकीर्ण राष्ट्रवाद ने पारस्परिक अविश्वास को जन्म दिया है । यह अविश्वास एक तरफ तो शक्ति सम्पन्नों को संसार में प्रभुत्व जमाने की प्रेरणा देता है तथा दूसरी तरफ निर्बलों को संकीर्ण राष्ट्रीय राज्य स्थापित करने के लिए मजबूर करता है । संसार के समस्त प्राकृतिक साधनों पर प्रभुत्व जमाने के लिए सबल राष्ट्रों ने नये-नये तरीके ईजाद (अन्वेषित) किये हैं । उपभोग सामग्री पर प्रभुत्व प्राप्त करने की इस स्पर्धा ने संसार की जनसंख्या के बहुत बड़े भाग को गरीबी रेखा के नीचे जीने के लिए मजबूर कर दिया है । गरीबी रेखा को तो सब जानते हैं, लेकिन उपभोग की कोई सीमा नहीं है । इस उपभोगवाद को नियन्त्रित करने तथा गरीबी रेखा को घटाने के लिए एक अमीरी रेखा भी निश्चित करनी होगी । इसके लिए एक निश्चित सीमा से अधिक उपभोग करने वालों को असामाजिक तत्त्व घोषित करना होगा ।

इन तरीकों में सबसे प्रभावी तरीका वर्ग विद्वेष पैदा करने का रहा है । जाति सम्प्रदाय तथा स्थानीय सांस्कृतिक अस्मिताओं को उकसाकर पारस्परिक विद्वेष फैलाना तथा संकीर्ण राष्ट्र राज्य की भावनाओं को उभाड़ कर युद्ध कराना । परिणाम स्वरूप मानव समाज भौगोलिक राष्ट्रीय राज्यों में विभाजित हो गया है । अब तक सारे युद्ध इसी संकीर्ण राष्ट्रीय राज्य स्थापित

करने के क्षुद्र स्वार्थ के लिए लड़े गये हैं । एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को पराजित कर उसका शोषण और दमन करता रहा है । लेकिन विज्ञान के विकास के कारण मानव में एक नई चेतना का विकास भी हुआ है । यह जागतिक चेतना शोषण और दमन के प्रति विद्रोह कर रही है । बीसवीं सदी के अन्तिम चरण में सारे संसार में बौद्धिक चेतना व्यापक होती जा रही है । अब संसार मानने लगा है कि युद्ध से समस्याओं का समाधान नहीं हो सकता । शोषण और दमन के युग को समाप्त करने के लिए शान्ति और समृद्धि के नये रास्ते खोजे जा रहे हैं । नये रास्ते खोजने की यह युग-क्रान्ति किसी वर्ग या राष्ट्र की नहीं होगी, अब जो भी क्रान्ति होगी वह जागतिक होगी और जन-क्रान्ति होगी ।

विश्व-क्रान्ति अनिवार्य

समाज में सुखशान्ति की स्थापना के लिए अनेक प्रकार की राज्य-व्यवस्थाओं की खोज होती रही है । सभी राज्य-व्यवस्थाओं ने प्रशासनिक दंड-व्यवस्था के द्वारा राजनीतिक व आर्थिक नीतियों को संतुलित बनाने का प्रयत्न किया है । दंड-व्यवस्था को प्रभावी बनाने के लिए विज्ञान की मदद से शस्त्रास्त्र की खोज हुई । शस्त्रास्त्र की सहायता से प्राकृतिक सम्पदाओं पर प्रभुत्व जमाने की प्रतिस्पर्धा ने संकट पैदा किया है । जब तक यह स्पर्धा रहेगी, संसार में शान्ति स्थापित नहीं हो सकती । अतः प्राकृतिक सम्पदाओं पर एकाधिकार की प्रवृत्ति को समाप्त करने की प्रक्रिया खोजनी होगी । यह प्रक्रिया जन-क्रान्ति या विश्व-क्रान्ति की ओर बढ़ने का दिशा संकेत है । धीरे-धीरे सारे संसार में विश्व-क्रान्ति की चेतना उभर रही है । इस क्रान्ति के गर्भ से एक नई व्यवस्था जन्म लेगी, पुरानी व्यवस्थाओं में थेगली लगाने से काम नहीं चलेगा ।

वर्तमान विश्व-व्यवस्था ने विकास व प्रगति का मापदंड उपभोगवाद को बनाया है । कहा गया है कि जिस देश में बिजली, पानी, पेट्रोल, कपड़ा, साबुन, तेल, चीनी, घी आदि तथा विलासिता की अन्य सामग्री प्रति व्यक्ति अधिक खर्च होती है, वह विकसित देश है । विकास के इस मूल्यांकन को राष्ट्र से लगाकर प्रत्येक व्यक्ति तक सबने मान्यता प्रदान की है । इस मूल्यांकन के कारण सारे संसार में उपभोग सामग्री तथा प्राकृतिक संसाधनों पर एकाधिकार की छीना-झपटी हो रही है । अतः विकास की इस परिभाषा और प्रगति के इस मूल्यांकन के रहते हुए संसार में सुख-शान्ति की स्थापना संभव नहीं है । सुख-शान्ति के लिए उपभोगवाद की जगह मानवीय गुणों को विकास और प्रगति का मापदण्ड बनाना होगा ।

विश्व-क्रान्ति का दिशा संकेत

आज संसार में गरीबी-रेखा को तो सब जानते हैं, लेकिन उपभोगवाद की कोई उच्चतम सीमा निर्धारित नहीं है । इसको नियन्त्रित करने के लिए एक अमीरी-रेखा निर्धारित करनी होगी । एक सीमा से अधिक उपभोग करने वालों को असामाजिक तत्त्व घोषित करना होगा । विज्ञान व टेक्नालाजी के इस युग में उपभोग की सीमा निर्धारित न हुई तो प्रकृति की शक्तियों के शोषण का अन्त नहीं होगा । प्रकृति के साथ होने वाले इस बलात्कार के दुष्परिणामों के रूप में पर्यावरण के प्रश्न जटिल से जटिल होते चले जायेंगे । अतः विकास व प्रगति की वर्तमान परिभाषा को बदलना होगा ।

जिस देश के रहनेवालों के बीच सहज स्वाभाविकता, आपसदारी, स्वावलम्बन और साझेदारी के गुण जितने अधिक हों, वह देश उतना ही विकसित है । यह होगी विकास की नयी परिभाषा । इस प्रकार नयी विश्व-क्रान्ति का आधार मानव और मानवता होगी । राजनीतिक और आर्थिक नीतियों की दिशा सन्तुलन करने के लिए मनुष्य, समाज और प्रकृति के बीच पारस्परिक पूरक भाव को विकसित करना होगा । निःशस्त्रीकरण की प्रक्रिया को तेज करना होगा । सबल राष्ट्रों को निर्बल राष्ट्रों के शोषण का रास्ता छोड़ना होगा । भोग परायण सभ्यता का परित्याग करके, सादा जीवन उच्च विचार की सभ्यता को अपनाना होगा । उपभोक्तावादी तत्त्वों को समाज-विरोधी कह कर उनका बहिष्कार करना होगा । श्रम और बुद्धि के आर्थिक सामाजिक मूल्यांकन का भेद मिटाना होगा । काले-गोरे का नस्ल भेद, ऊंच-नीच का जातिभेद, साम्प्रदायिक विद्वेष तथा राज्यवादी राष्ट्रीयता के भेदभाव को मिटाने के लिए विश्व-स्तर पर एक वैचारिक आन्दोलन खड़ा करना होगा । कहना होगा—सच्चे विकास के लिए प्रतिद्वन्द्विता नहीं, सहयोग आवश्यक है । सहयोग और शान्ति के अर्थों को नये संदर्भ में समझना आवश्यक है । शेर और बकरी को एक ही घाट पर पानी पिलाने की व्यवस्था का नाम सहयोग नहीं है । यह सहयोग चैतन्य और सक्रिय होगा । यह मानवों के बीच का सहयोग होगा । मानव समाज में शेर और बकरी के रिश्ते को व स्वभाव को समाप्त करने का चैतन्य सहयोग होगा ।

सहयोगी समाज में आधुनिक विषमता मूलक समाज का अन्त होगा । समता पर आधारित समाज बनेगा । भौगोलिक राजनीतिक राष्ट्रीय राज्यों की सीमाएँ नहीं रहेंगीं । युद्धों का अन्त होगा । राष्ट्रीय सीमाएँ सांस्कृतिक एकता की जोड़ कड़ी होंगी । मूल्य परिवर्तन की इस महान् वैचारिक क्रान्ति से व्यक्ति, समाज और प्रकृति के बीच एक सन्तुलन पैदा होगा तथा व्यक्ति, से लेकर राष्ट्र तक की सब समस्याओं के समाधान का मार्ग प्रशस्त होगा । यही है विश्वक्रान्ति की वैचारिक पृष्ठ भूमि का संकेत । ☐

शासन बनाम स्वशासन

स्वामी श्री प्रज्ञानन्द तीर्थ जी महाराज

सजगता की कसौटी

'स्टेट वर्सिस पीपुल' 'राज्य बनाम जनता' यह एक ऐसा नारा है जो प्राचीन काल से किसी न किसी रूप में चला आ रहा है । इतिहास हमें जहाँ तक ठेल कर पीछे ले जाता है, उससे पता चलता है कि सजग व्यक्ति हमेशा शासन व शोषण अर्थात् अधर्म के विरुद्ध रहा है । अधर्म के विरुद्ध धर्म-युद्ध की परम्परा सदा-सर्वदा से चली आयी है । दुनिया के दूसरे देशों में भी ऐसे अनेक व्यक्ति हुए हैं, जिन्होंने अधर्म के खिलाफ धर्मयुद्ध किये हैं । प्राचीन यूनान में सुकरात एक ऐसा ही व्यक्ति था, जो स्टेट का इसी आधार पर विरोध करता था कि सभी बुद्धिमान व्यक्तियों को प्रत्येक बात विवेक की तराजू पर तौल कर और तर्क की कसौटी पर कस कर ही माननी चाहिए और प्रत्येक व्यक्ति की जीवन पद्धति उन्ही बातों पर आधारित होनी चाहिए, जो विवेकपूर्ण व तर्कपूर्ण हों । लेकिन तत्कालीन समाज ने सुकरात को जहर का प्याला पीने के लिए मजबूर किया । इसी क्रम में ईसा मसीह हुए, जिन्होंने तत्कालीन व्यवस्था को व्यक्तिगत स्वतंन्त्रता और भाई-चारे की भावना के लिए अवरोधक पाया । उन्होंने कहा कि यह हो सकता है कि ऊँट सुई के सुराख से निकल जाय पर शोषक (अमीर व्यक्ति) को ईश्वरीय राज्य में कोई स्थान नहीं मिल सकता । वे गरीबी मिटाकर व्यक्ति की आजादी व समानता लाना चाहते थे, इसलिए उनको सूली पर चढ़ा दिया गया । जॉन ऑफ आर्क ने मध्य कालीन यूरोप में शासकीय-व्यवस्था के विरुद्ध लोगों को संगठित किया था, इसलिए उनको जिन्दा जला दिया गया । आगे जाकर जब प्रसिद्ध वैज्ञानिक ब्रूनों ने इस अधर्म-व्यवस्था के प्रचलित विश्वासों को विवेक की तुला पर तोला और कसौटी पर कसा तो पाया कि सूर्य पृथ्वी के चारों और नहीं घूमता बल्कि पृथ्वी ही सूर्य के चारों ओर घूमती है । जब उसने इस सीधी-सादी बात का ऐलान किया तो वहाँ के पादरियों की गद्दी हिल उठी, और उन्होंने इसको भी जिन्दा आग में जला दिया ।

लोकशक्ति संगठित करने का प्रयास

मध्य पूर्व एशिया में हजरत मुहम्मद का आन्दोलन उन्हीं अन्धविश्वासों के खिलाफ था, जो तत्कालीन व्यवस्था के द्वारा आम लोगों पर पीढ़ी दर पीढ़ी लादे गये थे । सुकरात, ईसा, जॉन ऑफ आर्क और ब्रूनों तत्कालीन व्यवस्था के हाथों इसीलिए मारे गये क्योंकि उन्होंने तत्कालीन व्यवस्था के खिलाफ कोई शक्तिशाली हिंसात्मक संगठन खड़ा नहीं किया था, लेकिन हजरत मोहम्मद ने यह बात समझ ली थी, कि यदि उन रूढ़ियों को तोड़ना है, जिनको

तत्कालीन शासन अपने स्वार्थ के लिए लोगों पर लादता आया है, तो केवल विचार का प्रचार और उसके लिए जनता का सहयोग ही काफी नहीं है, उसको तो ईंट का जवाब पत्थर से देने के लिए लोकशक्ति को हिंसात्मक संगठन में बदलना होगा । यही कारण है कि संसार में हजरत मोहम्मद ही ऐसे पैगम्बर हुए जिन्होंने केवल दस वर्ष में स्थापित व्यवस्था के खिलाफ सफलतापूर्वक विद्रोह किया । उन हालातों में लोकशक्ति का जो ढांचा व्यवस्था के खिलाफ खड़ा किया जा सकता था, वह उन्होंने खड़ा कर लिया । यह दूसरी बात है कि लोकशक्ति को संगठित करने की उनकी यह सोच मानवीय विकास को ध्यान में रखते हुए बहुत ही अधकचरी थी । उन्होंने कामुकता, क्रूरता व धन के लालच को संगठन का आधार बनाया ।

भारत के सन्दर्भ में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता व आर्थिक समानता व भाई-चारे का विकास कुछ दूसरे ही ढंग से हुआ । देवासुर-संग्राम के रूप में धर्म-युद्धों की लम्बी परम्परा यहाँ रही है । राम-रावण संग्राम तथा महाभारत के रूप में धर्मयुद्ध की गाथाएँ बच्चे-बच्चे के मुँह से सुनने को मिलेगी । इन धर्म-युद्धों के बाद अनुभव के आधार पर मानव व्यवहार के लिए अनेक नीतियाँ बनी हैं, जिनमें मनुस्मृति व विदुरनीति व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को आधार मानकर सामाजिक सुरक्षा हेतु लिखी गयी थी । चाणक्य या कौटिल्य का अर्थशास्त्र आर्थिक-समानता लाने के उद्देश्य को ध्यान में रखकर लिखा गया । भारत में अधर्म-व्यवस्था पर बड़ी भारी चोट महात्मा बुद्ध और भगवान् महावीर ने की । इन दोनों ने रूढ़िगत धार्मिक मान्यताओं पर चोट करके उनकी जड़ों को हिला दिया । दोनों महापुरुषों का यह विश्वास था कि जो आदमी इस बात का ज्ञान प्राप्त कर लेता है कि मैं कौन हूँ, वही व्यक्ति अधर्म के विरुद्ध खड़ा हो सकता है । इसलिए उन्होंने अपने तरीके से इस सिद्धान्त को प्रतिपादित किया कि संसार में व्यक्ति ही केवल एक ऐसा प्राणी है जिसको कर्म करने व सोचने विचारने की पूरी स्वतन्त्रता है । वह अपने को अच्छे कामों में भी लगा सकता है और बुरे कामों में भी । इस प्रकार शुभ और अशुभ का विचार व्यक्ति को नैतिकता की ओर लाया । महात्मा बुद्ध और महावीर स्वामी के बाद भारत में पंथ-सम्प्रदायों में आपसी वैमनस्य बहुत बढ़ गया था । ऐसे समय में आद्यगुरु शंकराचार्य ने वेदान्त के आधार पर धर्म-क्रान्ति की पताका फहराई और नैतिक मूल्यों के साथ-साथ कर्म करने की पूर्ण स्वतन्त्रता का प्रतिपादन किया ।

स्वतन्त्रता बनाम समानता का संघर्ष

भारत में वैष्णव धर्म सबसे पुराना धर्म है । उसी से भारत के अन्य धर्म निकले हैं । बीज रूप में अहिंसा का पाठ इस देश को इसी वैष्णव धर्म ने पढ़ाया था । अहिंसा यानि उस रास्ते पर चलने का आग्रह, जो विवेक की तुला पर तोलने से और तर्क की कसौटी पर कसने से खरा उतरता है । विज्ञान की भी यही कसौटी है, परन्तु अहिंसा विज्ञान से आगे इसलिए चली जाती है क्योंकि वह नैतिक अनुशासन में व्यक्ति की स्वतन्त्रता और भाई-चारे की भावना बढ़ाती है । इसमें श्रद्धा और विश्वास का पुट भी रहता है । अहिंसा का विचार भारत में ही इसलिए पनप सका, क्योंकि भिन्न विचारों को सहन करने की स्वतन्त्रता यहाँ की संस्कृति में कूट-कूट कर भरी है । मध्य एशिया में मंसूर ने अन्-अल-हक कहा तो उसे

सूली पर चढ़ा दिया गया, पर भारत में कृष्ण से लेकर महात्मा बुद्ध और आद्यगुरु शंकराचार्य तक सभी को पूजा गया । यद्यपि उन सभी ने अपने-अपने सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया था ।

पश्चिमी जगत में धार्मिक अथवा राजकीय व्यवस्था में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता बनाम आर्थिक समानता का संघर्ष आज भी जारी है । कार्ल मार्क्स के सिद्धान्त को लेकर लेनिन ने आर्थिक समानता लाने के लिए जिस व्यवस्था को स्थापित किया, उसमें व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का गला घोट दिया गया था । यूरोप व अमेरिका की पूँजीवादी व्यवस्था में व्यक्ति की स्वतन्त्रता को कायम रखा गया तो आर्थिक समानता की बलि चढ़ानी पड़ी । जाहिर है कि राजतन्त्र की संसदीय शासन पद्धति द्वारा वैचारिक स्वतन्त्रता और आर्थिक समानता दोनों में से किसी एक को ही प्राप्त किया जा सकता है । वर्तमान राजनीतिक ढाँचों में दोनों को प्राप्त करना शक्य नहीं है ।

विज्ञान तथा टेक्नालॉजी ने जो उपलब्धियाँ व्यक्ति के हाथ में रख दी हैं, उनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि आर्थिक समानता और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता दोनों ही एक सिक्के के दो पहलू बनाये जा सकते हैं, बशर्ते मानव समाज की बुनियाद स्वशासन पर, धर्म पर आधारित हो । जब तक समाज, शासन की बागडोर संसद या किसी अन्य के हाथों में रखेगा, तब तक संसार में आर्थिक समानता और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अभाव बना ही रहेगा ।

विज्ञान और धर्म की परिपूरकता अपेक्षित

व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का अर्थ है कि हम जो भी कार्य करना चाहते हैं, जो विचार प्रकट करना चाहते हैं, उसकी हमें पूरी आजादी हो तथा उसके परिणामों को भोगने की जिम्मेदारी भी हमारी ही हो । आर्थिक समानता का अर्थ है कि संसार के सभी व्यक्तियों को भोजन,कपड़ा, मकान, शिक्षा, स्वास्थ्य और सांस्कृतिक जीवन में बराबरी का दर्जा हासिल हो । शासन व्यवस्था के तहत यह अनुभव आया कि आर्थिक समानता का दर्जा किसी न किसी अंश में व्यक्ति की स्वतन्त्रता का गला घोटता है और यदि व्यक्ति की स्वतन्त्रता अक्षुण्ण रखी जाती है तो किसी न किसी रूप में आर्थिक समानता का गला घुट जाता है । आधुनिक विज्ञान का मानना है कि सम्पूर्ण और सर्वांगीण सत्य के सन्दर्भ में 'कॉन्ट्रेरीज ऑर कम्पलीमेन्टरीज' अर्थात् एक ही सिक्के के दो पहलू विरोधी दशा में होते हुए भी एक दूसरे के पूरक होते हैं । उसी तरह से व्यक्तिगत स्वतन्त्रता व आर्थिक समानता एक दूसरे के विरोधी दीखते हैं, लेकिन सर्वांगीण और सम्पूर्ण विकसित समाज के सन्दर्भ में इन दोनों को सत्य पर आधारित एक दूसरे का पूरक होना अनिवार्य है । किसी भी शासन-व्यवस्था के तहत विज्ञान और धर्म एक दूसरे के विरोधी होते हैं, किन्तु इन दोनों का भी पूर्ण विकसित समाज के सन्दर्भ में पूरक होना अनिवार्य है । उदाहरण के लिए ईशोपनिषद् के पहले मन्त्र में इसकी परिपूर्ण व्यवस्था दी है—

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्
तेन व्यक्तेन भुंजीथाः मा गृद्धः कस्यस्विद्धनम् ।

अर्थात्—इस जगत के कण-कण में ईश्वर का घर है । अतः सब बराबर हैं । कोई छोटा-बड़ा, ऊँच-नीच नहीं है । सब स्वतन्त्र हैं । संसार में जो भी भोग सामग्री उपलब्ध है, उसे बाँट कर भोग करो । किसी के श्रम का शोषण न करो ।

गणित में एक सूत्र है किन्हीं दो वस्तुओं के पूरक होने की पूरकता की शर्तों का केवल पर्याप्त होना अर्थात् सिद्ध होना ही काफी नहीं है; उनकी व्यावहारिक आपूर्ति होना भी अनिवार्य है । किसी भी प्रकार की शासन-व्यवस्था में, आर्थिक समानता और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की पूर्ति के लिए, वैचारिक चेतना तथा आपूर्ति की व्यावहारिक व्यवस्था की, पर्याप्त और आवश्यक शर्तें, पूरी नहीं हो सकती । वे तो स्वयंशासी समाज में ही सम्भव हैं ।

स्वयंशासी समाज रूपी रथ के दो पहिये विज्ञान और धर्म हैं । उनपर चलकर व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और आर्थिक समानता को प्राप्त किया जा सकता है । विज्ञान ने टेक्नालॉजी के माध्यम से जो उपलब्धियाँ व्यक्ति को दी हैं, उनका किस प्रकार इस्तेमाल करना चाहिए, यह बात हमें धर्म और नैतिकता से सीखनी होगी । शासन-व्यवस्था इस सम्बन्ध में अयोग्य साबित हुई है । इसलिए कहा जा सकता है कि अच्छी से अच्छी शासन-व्यवस्था बुरी से बुरी स्वयंशासी व्यवस्था से भी बुरी होगी । क्योंकि ये शासन व्यवस्थाएँ आम आदमी पर शासन करने के लिए ही बनी हैं । इनका रूप मीनारनुमा होता है, जहाँ पर बुनियाद को कोई नहीं जानता, केवल चोटी ही दिखायी देती है, जबकि स्वयंशासी समाज सागर के समान होता है, जहाँ लहरें अपने आप एक के बाद एक उठती रहती हैं और सहज स्वाभाविक ढंग से एक दूसरे में अपने आप विलीन हो जाती हैं । वे एक दूसरे की पूरक बनते हुए गति प्रदान करती हैं, जबकि सम्पूर्ण सागर शान्त रहता है । यही तो सर्वांगीण और सम्पूर्ण सत्य है । यही है स्वयंशासी व्यवस्था जिसमें सहज स्वाभाविकता, आपसदारी, स्वावलम्बन और साझेदारी के तत्त्व मौजूद रहते हैं ।

भारतीय जीवन-दर्शन की यही विशेषता है कि उसमें धर्म आधारित स्वशासन को प्रधानता दी गयी है । कहा गया है—

न राज्यं न च राजासीन्न, दण्डो न च दंडिक : ।
धर्मेणैव प्रजाः सर्वाः रक्षन्ति स्म परपस्परम् ।।

अर्थात्—जहाँ समस्त जनता धर्मभाव से एक दूसरे की रक्षा करती है, वहाँ शासक और शासित तथा दण्ड देने वाला और दण्डित होने वाले नहीं रहते ।

यह भाव होने से वैचारिक स्वतन्त्रता और आर्थिक समानता दोनों एक साथ प्राप्त हो सकती है । वर्तमान युग में विज्ञान पर अध्यात्म के नियन्त्रण से यह सम्भव हो सकता है । यहीं से स्वशासन की धर्म की व्यवस्था प्रारम्भ हो सकती है । हिन्दू-जीवन-पद्धति इन्हीं आधारों पर विकसित हुई थी । इसलिए राजनीति की बात न कह कर राजधर्म की बात को स्वीकार करती है । राजधर्म की स्थापना के लिए ही हिन्दू-राष्ट्र भारत का उद्घोष किया जा रहा है । ❑

सावधान ! त्रिशूल आ रहा है

श्री स्वामी विष्णुदेवानन्द त्यागी जी महाराज

१५ अगस्त १९४७ को एक समझौते के अन्तर्गत भारत की राज्य व्यवस्था का संचालन भारतीयों के हाथ में आया, परन्तु प्रशासनिक-तन्त्र तथा कानूनी ढांचा ब्रिटिश साम्राज्यवादी ढंग का पुराना ही बना रहा । भारत के संविधान ने इसको १९३५ का फैडरल लॉ कहकर ज्यों का त्यों स्वीकार कर लिया है । इसलिए नये संविधान की उद्देशिका में लिखित सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न, समाजवादी, पंथ-निरपेक्ष, लोकतन्त्रात्मक, गणराज्य को स्थापित करने के संकल्पित उत्तम शब्दों का कोई अर्थ नहीं रह गया है । यह कोरा शब्द जाल है, जो ब्रिटिश साम्राज्यवादी व्यवस्था को चलाने के लिए बनाया गया था । प्रशासनिक-तन्त्र व कानूनी ढांचा, उद्देशिका के संकल्पित इन शब्दों को साकार करने की शक्ति नहीं रखता । गाँधीजी ने भी इस कानूनी ढांचे को काला कानून कहा था ।

उद्देशिका के विपरीत संविधान

संविधान की उद्देशिका में उल्लिखित आदर्शों का, संविधान स्वयं ही मजाक उड़ाता है । इस देश में मजहब के नाम पर हिन्दुस्तान के दो टुकड़े हो गये । मुसलमानों को पाकिस्तान मिल गया, फिर भी हिन्दू-मुसलमान झगड़े ज्यों के त्यों रहे । हिन्दुस्तान की आजादी के लिए इतनी जाने कुर्बान हुईं, लेकिन आजाद होने के बाद भी हमारे कान हिन्दुस्तान नाम सुनने के लिए तरस गये । किसी ने हिन्दुस्तान कह भी दिया तो वह साम्प्रदायिक हो गया । इस देश का वह नाम ही नहीं रह गया, जिस भारत-माता की आजादी के लिए लाखों कुर्बानियाँ हुईं । यह देश इण्डिया हो गया ।

वंदे मातरम् के नाम पर अनेकों ने आजादी के लिए शीष कटाये, फांसी पर चढ़े लेकिन राष्ट्रगान हो गया 'जन गण मन ....' जो कि १९१२ में जार्ज पंचम के स्वागत में गाया गया था । 'वंदे मातरम्' आज साम्प्रदायिक शब्द हो गया है । शहाबुद्दीन जैसे मुसलमान उसका उच्चारण करना तो दूर, उससे नफरत करते हैं । 'वंदे मातरम्' का आग्रह करने पर देश के पुनः बटवारे का भय दिखाया जाता है । इतना सब होने पर संविधान की उद्देशिका में लिखित प्रभुत्व सम्पन्नता कहाँ रह गयी ? जिस देश के संविधान में पंथ और मजहब के आधार पर अल्पसंख्यक और बहुसंख्यकों का बटवारा हो तथा अल्पसंख्यक के नाम पर मुस्लिम-तुष्टिकरण की नीति को पोषण मिलता हो, बहुसंख्यक पंथों को दबा कर रखा जाये, हिन्दू को परिभाषित करते समय केवल बौद्ध, सिक्ख व जैन का ही उल्लेख हो, कश्मीर को भारत से अलग रखा जाय, उस संविधान को देश की अखण्डता का रक्षक कैसे कहा जा सकता है ? इसी संविधान ने कश्मीर में दुहरी नागरिकता को मान्यता दी है, जो राष्ट्रभाव को

खण्डित करती है । इतने पर भी वहाँ से हिन्दुओं को निकाल कर बाहर किया जा रहा है। उनके विशाल पुरातन मन्दिरों को ध्वस्त किया जा रहा है, उनकी सम्पत्ति को जब्त करके दर-दर की ठोकरें खाने को मजबूर किया जा रहा है । यह सब करने की संविधान ही तो इजाजत देता है । इस संविधान के अल्पसंख्यक प्रावधानों के कारण ही रामकृष्णमिशन जैसे हिन्दू संगठन ने भी कहा है कि वह हिन्दू नहीं है । आर्य समाज, जैन, सिक्ख, बौद्धों की एक बड़ी जमात को हिन्दू से पृथक् करने की प्रेरणा देने वाला, मुसलमानों के लिए दुहरे कानून बनाने वाला संविधान पंथ-निरपेक्षता का स्वयं ही उपहास करता दीखता है ।

भारत की लूट आज भी जारी है । आज के लुटेरे विदेशी कम्पनियों के रूप में भारत में प्रवेश कर गये हैं । भारत का एक छोटा सा औद्योगिक समुदाय इन विदेशी कम्पनियों के साथ समझौता करके भारत के अर्थ-तन्त्र को खोखला बना रहा है । डंकल प्रस्तावों के रूप में यह समझौता डायन की तरह मुँह बाये खड़ा है । परिणाम स्वरूप भारत का औद्योगिक ढांचा चरमरा गया है । इस लूट को संविधान ही तो संरक्षण देता है । भारत की ७८% पूंजी केवल ७२ उद्योगपतियों के पास कैद है । इसी प्रकार खेती लायक भूमि का ८०% केवल २०% खाते दारों के कब्जे में केन्द्रित हो गया है । इसको संरक्षण देने वाला संविधान समाजवाद के संकल्प को कैसे पूरा करेगा ?

लोकतन्त्रात्मक गणराज्य के अन्तर्गत संविधान ने सभी अधिकार प्रशासन को सौंप दिये हैं । ग्राम-पंचायत, टाउन-एरिया, नगर-पालिका, ब्लाक-समिति एवं जिला-परिषद आदि की संरचना चुनाव प्रक्रिया द्वारा लोक सम्मति से होती है, लेकिन प्रशासनिक तन्त्र का जिला अधिकारी बिना किसी लोक से पूछे, इन लोकतन्त्रात्मक गणतन्त्र की इकाइयों को समाप्त करके ऐडमिनिस्ट्रेटर बैठा देता है । इतना ही नहीं, बहुमत से चुनी प्रान्तीय सरकारों को प्रधानमन्त्री अपनी एक कलम से समाप्त कर देता है । सर्वोच्च शक्तिशाली राष्ट्रपति को बिना नु-नच किये प्रधानमन्त्री के इशारे पर नाचना पड़ता है । यह कहना ठीक है कि लोकसभा एवं विधान सभाओं के गठन के लिए चुनाव होते हैं, परन्तु इन चुनी हुई सरकारों का कोई महत्व नहीं है, सर्वाधिकार तो लोक से अलग कहीं और ही छिपा रहता है । क्या यही लोकतन्त्रात्मक गणराज्य है ? जिसका संकल्प संविधान की उद्देशिका में किया गया है जिसमें लोक और गण प्रशासनिक-तन्त्र के नीचे दबा पड़ा है ।

समाज निर्णय करे

संविधान स्वयं अपनी ही उद्देशिका के विपरीत काम करे और सन्त उस तरफ सबका ध्यान खींचे, तब उस संवेदनशील सन्त को भिंडरावाला और इमाम बुखारी की लाइन में खड़ा कर दिया जाये, ऐसे बुद्धिजीवियों को क्या कहा जाय, इनका निर्णय तो खुला समाज ही कर सकता है ।

मुगल साम्राज्यवाद के चिह्न मिटाओ

ब्रिटिश साम्राज्यवाद से पहिले भारत में मुगल-साम्राज्यवाद का बोलबाला था । दिल्ली के तख्त पर मुगलों का बहुत लम्बे समय तक अधिकार रहा । मुगलों के पहले भी दिल्ली

की राज गद्दी कभी सूनी नहीं रही । कौरवों-पाण्डवों से लेकर आज तक दिल्ली-दरबार हमेशा राज-दरबार ही रहा है । लेकिन आज दिल्ली में पांडवों के पुराने किले के अलावा किसी हिन्दू राजा की बनाई कोई इमारत नहीं है, क्या मुगलों के पहले के हिन्दू राजा पेड़ों के नीचे रहते थे ? प्रश्न उठता है कि पृथ्वीराज चौहान जैसा बहादुर राजा दिल्ली में कहाँ रहता था ? उसके अलावा भी तो दिल्ली राजपूतों का दरबार रहा है । कहाँ गयीं वे इमारतें ? क्या उनको स्थापत्य कला का ज्ञान नहीं था ? मकान निर्माण की कला का विकास क्या मुगलों के जमाने में ही हुआ, जिनके बाप दादे रेगिस्तान में ऊँट की खाल के खेमों में रहते थे ।

चाँदी के ठीकरों पर बिके तथाकथित इतिहासकार और राज्यतन्त्र के चाटुकार लेखनी के धनी तथाकथित बुद्धिजीवियों की अक्ल पर मुझे तरस आता है । वे भूल गये हैं कि राजस्थानी स्थापत्य-कला के जैसलमेर के नमूने तथा मोहन जोदड़ो एवं हड़प्पा की खुदाई में निकाले गये अवशेषों के रूप में भारतीय स्थापत्य-कला आज भी संसार को चकित कर रही है । इस स्थापत्य-कला के धनी हिन्दुस्तान के राजाओं ने दिल्ली और आगरा में भी अपने रहने के लिए मकान बनाये होंगे परन्तु दिल्ली और आगरे की सारी बड़ी इमारतों को मुगलों के नाम से जोड़कर हिन्दुस्तान की अस्मिता को कलंकित किया गया है । इस संदर्भ में जब हम लाल-किला, जामा-मस्जिद, कुतुब-मीनार, ताजमहल एवं अजमेर-शरीफ की दरगाह तथा आगरा और दिल्ली में राजपूत राजाओं की बनाई इमारतों की खोज करते हैं तो ये तथाकथित बुद्धिजीवी हमारे त्रिशूल की नोंक को देखकर चीख उठते हैं । संविधान की आड़ में वर्तमान भारत सरकार मुगल साम्राज्यवाद के अवशेषों के संरक्षण का प्रावधान करके भारत की गौरवमयी परम्पराओं को नष्ट करने वालों को पोषण देकर हिन्दू-मुस्लिम सद्भाव को समाप्त कर रही है इसलिए मुगल साम्राज्यवाद के अवशेषों का परिवर्तन आवश्यक है । मुगल-गार्डन के नाम का एक बगीचा राष्ट्रपति भवन को कलंकित कर रहा है, उसके नाम तथा मुगल बादशाहों के नामों के मकान, सड़क, नगर एवं गावों के नामों का परिवर्तन आवश्यक है । ये अवशेष अत्याचारियों के प्रतीक हैं ।

आजादी की दूसरी जंग

नौ अगस्त १६४२ को अंग्रेजो भारत छोड़ो का दौर प्रारम्भ हुआ था । वह पूर्णता को तब प्राप्त हुआ, जब हिन्दुस्तान से जार्ज पंचम और विक्टोरिया महारानी की प्रतिमाओं के साथ-साथ सभी जालिम अंग्रेजों के प्रतीकों के रूप में स्थापित उनकी स्मृतियों को भारत-भूमि से समाप्त कर दिया गया । इसी प्रकार ६: दिसम्बर '६२ को श्री रामजी के आदेश से श्री हनुमानजी के रूप में उपस्थित कारसेवकों के पुरुषार्थ ने मुगलिया साम्राज्यवाद के प्रभाव को हिन्दुस्तान से मिटाने का सिलसिला प्रारम्भ कर दिया है । यह आजादी की दूसरी, बुनियादी जंग है, जिसमें हिन्दुस्तान की सांस्कृतिक अस्मिता तथा उसकी गौरवपूर्ण परम्पराओं को युगानुसार पुनः स्थापित करके आधुनिक सभ्यता की विभीषिकाओं से मुक्ति पाने की शक्ति प्राप्त कराने का पुरुषार्थ प्रारम्भ हुआ है ।

इस आजादी की दूसरी बुनियादी लड़ाई को मन्दिर-मस्जिद, हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष का रंग देने वाले हिन्दुस्तान और इस्लाम दोनों के दुश्मन हैं क्योंकि हिन्दुस्तान में रहने वाले मुसलमानों के लिए हिन्दुस्तान उनकी मातृभूमि है, अतः मातृभूमि पर से मुगली साम्राज्य के कलंकों को धोना उनका भी उतना ही कर्तव्य और अधिकार है, जितना किसी जैन, बौद्ध, सिक्ख, सनातनी, आर्यसमाजी, ईसाई, यहूदी आदि या अन्य पंथवालों का हो सकता है । हिन्दुस्तान में रहने वाले किसी मजहब के पूजा-स्थलों को तोड़ कर अपना पूजास्थल बनाने वाला या हिन्दुस्तान की अस्मिता को नष्ट करने वाला लुटेरा जालिम है, चाहे वह बाहर के देश से आया हो या हिन्दुस्तान का ही रहने वाला हो । वह उन सबका दुश्मन है, जो हिन्दुस्तान को अपनी मातृभूमि मानते हैं । हिन्दुस्तान में रावण, हिरण्यकश्यप, कंस, दुर्योधन, जयचन्द्र आदि दुष्टों व देशद्रोहियों की कोई प्रतिष्ठा नहीं है । लेकिन रसखान जैसे खुदापरस्त मुसलमानों के नाम पर आज भी वृंदावन में बिहारीजी का वर्ष में एक बार पठानी शृंगार होता है । महरौली की मजार, निजामुद्दीन औलिया की मजार, अब्दुल रहीम खानखाना तथा नेक सूफी सन्तों और सरमद जैसे मुसलमानों की मजारों का हम सब आदर करते हैं । किदवई और छागला जैसे देशभक्त मुसलमान हमारे लिए आदरणीय हैं, लेकिन बाबर के वंशजों मातृभूमि की अस्मिता को लूटने वालों तथा उनका साथ देने वालों को संरक्षण देने वाले तथा अपनी ही उद्देशिका के विपरीत व्यवस्था से इण्डियन-संविधान के रूप में भारत-माता को खण्डित करने वाले दस्तावेज पर त्रिशूल का प्रहार निश्चित है ।

सावधान ! त्रिशूल आ रहा है ।

- *गरीबों को राहत पहुँचाना पुण्य कार्य है ।*
- *अन्याय का प्रतिकार, अभाव या अन्याय का निराकरण करना मुक्ति कार्य है ।*
- *प्रचलित मूल्यों, मान्यताओं और पद्धतियों को बदलकर नये मूल्य, नयी मान्यता और नई पद्धतियाँ स्थापित करना क्रान्ति कार्य है ।*

हमारा काम क्रान्ति विचार का परिवेश निर्माण करना है, जिसके फलस्वरूप जनता के जीवन में अन्याय, अज्ञान, अभाव का निराकरण हो तथा आर्थिक विकास का उद्बोधन हो, ताकि वह पूरे समाज के लिए आकर्षण का विषय बने, तभी विकास और निर्माण कार्य क्रान्ति के पूरक होंगे ।

धीरेन्द्र मजूमदार

भारतीय-जीवन-दर्शन आधुनिक विज्ञान से आगे

श्री स्वामी रामदास जी महाराज

मानव समाज के लिए यह सौभाग्य की बात है कि आधुनिक विज्ञान अब धीरे-धीरे एक विश्व के उस दृष्टिकोण को अपनाने के लिए प्रयत्नशील है, जिसमें विज्ञान और शाश्वत नैतिक मूल्य परस्पर एक दूसरे के पूरक हो सकते हैं । अब यह विचार जोर पकड़ता जा रहा है कि विज्ञान और शाश्वत-मूल्य दोनों को एक साथ मानव-जीवन की समस्याओं को सुलझाने के लिए लागू किया जा सकता है और तभी कल्याणकारी विश्व का निर्माण होगा ।

विज्ञान आध्यात्मिक चेतना के निकट

वैज्ञानिक सत्य और नैतिक सत्य परस्पर विरोधी नहीं, बल्कि पूरक होते हैं । क्योंकि वैज्ञानिक शोध में भी उच्च-स्तर के नैतिक मूल्यों का अनुसरण करना पड़ता है । क्या इस बात की सम्भावना की जा सकती है कि एक महान वैज्ञानिक अनैतिक मूल्यों पर आचरण करता हो ? एक बार आधुनिक युग के महान वैज्ञानिक आइंस्टीन जब बहुत बुरी तरह से बीमार थे, उस समय उनसे पूँछा गया कि क्या वे मृत्यु से भयभीत हैं ? तो उन्होंने कहा, "मैं सब जीवों और प्राणियों में एक ऐसी समरसता का अनुभव करता हूँ कि मेरे लिए इसका कोई अर्थ नहीं है कि व्यक्ति का जीवन कहाँ से आरम्भ होता है और उसका अन्त कहाँ होता है ?" उन्होंने आगे कहा, "संसार में ऐसा कुछ भी नहीं जिसको छोड़ने में मुझे क्षण भर का भी विलम्ब हो । संसार की मोहमाया से मुक्ति पाने में उनको क्षण भर भी नहीं लगेगा ।" आइंस्टीन की यह नैतिक आस्था आध्यात्मिक चेतना के बहुत निकट है ।

आज के युग में विज्ञान व टेक्नोलॉजी को आध्यात्मिक दिशा दिये बिना नैतिक मूल्यों को कायम नहीं रखा जा सकता है । प्राचीन भारतीय दर्शन में नैतिक मूल्यों के आधार पर मानवेतर जीवों के बारे में भी सोचा जाता था, अब विज्ञान के क्षेत्र में भी वैसा ही चिन्तन हो रहा है । आधुनिक विज्ञान यह जानने को आतुर है कि मानव को छोड़ कर शेष प्राणियों में भी चेतना या मन का अस्तित्व है । क्या पेड़ पौधों को भी पीड़ा की अनुभूति होती है ? और क्या वनस्पति व अन्य एक कोशकीय जीवों में मन व चेतना का अस्तित्व है ? जाहिर है कि इस प्रकार की वैज्ञानिक शोधें नैतिक और शाश्वत-मूल्यों के क्षेत्रों में भी प्रवेश कर रहीं हैं । आज की स्थिति में सभी की समझ में आ गया है कि यदि मानव-विज्ञान के आशय, नैतिक दृष्टि से शुद्ध नहीं हुए तो मानव-सभ्यता का अस्तित्व ही मिट जाएगा । जिस प्रकार वैज्ञानिक शोधों में नैतिक मूल्य निहित हैं, उसी प्रकार नैतिक मूल्यों में विज्ञान का समावेश है । क्योंकि चेतना जगत के सारे जीवधारियों में भौतिकविज्ञान और रसायनशास्त्र के सभी नियम उसी प्रकार लागू होते हैं, जैसे अचेतन जगत के जड़ पदार्थों पर, क्योंकि भले ही वे

जीवधारी हों या जड़ पदार्थ हों, दोनों को बनाने वाली मौलिक इकाई परमाणु ही है, जिन पर भौतिकी व रसायन के नियम लागू होते हैं, फिर भले ही यह परमाणु जड़ में हो या चेतना में ।

शाश्वत प्रश्नों की खोज

आधुनिक विज्ञान उन शाश्वत प्रश्नों का उत्तर पाने का यत्न भी करने लगा है कि हम कौन हैं ? और इस जीवन का क्या अर्थ है ? अभी तक यह माना जाता था कि इन चिर-प्रश्नों का उत्तर बुद्धि व तर्क से परे है । पर इस क्षेत्र में जो खोज की गयी है, उससे पता चलता है कि यद्यपि इन शाश्वत प्रश्नों को समझना और उनके उत्तर देने का प्रयास करना स्वयं एक ऐसे अन्तहीन अनन्त की खोज करना है, जो इन चिर प्रश्नों की प्रकृति में निहित है । इनकी शोध के लिए विज्ञान का मौलिक अस्त्र, बुद्धि और विवेक-परक-तर्क तो अनिवार्य है ही, पर वह अपने में काफी नहीं है क्योंकि इनकी खोज तर्क से आगे बहुत दूर चली जाती है और अनुभूति का विषय बन जाती है । यह अनुभूति न तो अवैज्ञानिक होती है और न विवेकहीन, पर इसको प्रयोगशाला में विज्ञान के यन्त्रों से जाँचा परखा नहीं जा सकता, क्योंकि अनुभूति-जन्य शाश्वत-मूल्य विज्ञान की पहुँच के बाहर हैं । अर्थात् उससे आगे की चीज है । उदाहरण रूप में अहिंसा न तो अवैज्ञानिक है और न विवेकहीन, उसमें मानव समाज के विकास की ऐसी सम्भावनाएँ निहित हैं, जो विज्ञान की समझ से परे हैं । इसलिए यह उससे आगे की चीज है । यह तो जाहिर है कि जो विज्ञान से आगे की अवस्था होगी, वह भला कैसे अवैज्ञानिक और तर्कहीन हो सकती है ? क्योंकि विज्ञान तो हर एक चीज को तर्क की कसौटी पर कसता है । यह हो सकता है कि चेतना शून्य जड़ जगत के लिए अहिंसा का कोई स्थान न हो, पर जिस चीज में भी चेतना विद्यमान है, उसके लिए तो अहिंसा एक मूल्यवान निधि है ।

मानव की विरासत कर्म स्वातन्त्र्य

विज्ञान के सामने यह एक अर्थपूर्ण प्रश्न बन गया है कि क्या भौतिक जगत और मन दोनों का सहअस्तित्व सम्भव है ? इस संकल्पना को मानने के अलावा अब कोई चारा दिखायी नहीं देता क्योंकि चेतना तत्त्व सभी स्तरों पर विद्यमान है । जहाँ उस की अभिव्यक्ति की मात्रा एक कोशकीय प्राणियों में सबसे कम हो सकती है, वहाँ लगता है कि मानव में अधिकतम हो सकती है । क्योंकि इस सम्पूर्ण जगत में किसी काम को करने या न करने की स्वतन्त्रता केवल मानव को ही विरासत में मिली है । यह प्रत्येक मानव पर निर्भर है कि वह किसी काम को करता है या नहीं । यहाँ तक कि खाने-पीने, उठने-बैठने, घूमने के बारे में भी व्यक्ति स्वतन्त्र है । कुछ करने या न करने का यह विकल्प मानव समाज को विकास की अन्तिम सीढ़ी तक पहुँचा सकता है, यदि वह काम करने की स्वतन्त्रता का प्रयोग शाश्वत नैतिक मूल्यों को ध्यान में रखकर करे । यही वह केन्द्र बिन्दु है, जहाँ विज्ञान और नैतिक मूल्यों का सहअस्तित्व आवश्यक है । इस सम्बन्ध में नोबुल पुरस्कार विजेता और परमाणु ऊर्जा के जनक प्रो० नीलबोहर ने एक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है, जिसमें कहा गया है

कि परस्पर विरोधी एक दूसरे के पूरक होते हैं । इस सिद्धान्त का विज्ञान के क्षेत्र में सफलता पूर्वक प्रयोग किया गया है । परमाणु जगत का यह सिद्धान्त मानव समाज के क्रिया कलापों में भी विशेष रूप से लागू होता है । नीलबोहर का यह मत था, कि सोचने की स्वतन्त्रता ने मानव को एक विरोधाभास की स्थिति में खड़ा कर दिया है । जितने व्यक्ति उतने ही विचार हो सकते हैं । भारतीय जीवन में तो षट्‌दर्शन इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है । परस्पर विरोध मानव विचारों में अन्तर्निहित है । वैदिक जीवन-दर्शन का यही वह बिन्दु है, जहाँ परस्पर विरोधी भी सह अस्तित्व से रह सकते हैं ।

बोहर को विश्वास था कि एक दिन सहअस्तित्व का सोचने का तरीका प्रत्येक व्यक्ति की स्कूली शिक्षा का अनिवार्य अंग बन जायेगा और यह जीवन की चुनौतियों का सामना करने और समस्याओं को सुलझाने का मार्गदर्शन करेगा । भारतीय शिक्षा पद्धति में गुरु परम्परा से शिक्षा प्राप्त करने में परस्पर विरोधाभासी दिखने वाले षट्‌दर्शनों का अध्ययन उसका एक विशेष गुण रहा है । खुशी की बात है कि आधुनिक विज्ञान का एक मनीषी इस तथ्य पर पहुँच गया है । बोहर भारतीय-जीवन दर्शन से अनभिज्ञ थे । वे यह मानते थे कि सहअस्तित्व के सोच पहिले से ही विचार ने विज्ञान के क्षेत्र में एक महानतम क्रान्ति पैदा कर दी है ।

इसलिए यह कहना नितान्त युक्ति संगत है कि भारतीय-जीवन-दर्शन में आधुनिक विज्ञान से आगे की सोच पहिले से ही मौजूद है । □

रामायण का मेरुदण्ड चरित्र-निर्माण

श्री स्वामी ओंकारानन्द गिरि जी महाराज

'पठ रामायणं व्यास ! काव्य बीजं सनातनम्' सहित अनेक निर्विवाद तथ्यों एवं प्रमाणों के आधार पर अब यह सर्वमान्य हो चुका है कि 'रामायण' भूतल का प्रथम काव्य तथा अति प्राचीन ग्रंथ है । यदि यह कहा जाय कि कविकुल-गुरु महर्षि बाल्मीकि रचित रामायण वेद का ही रूप है तो अतिशयोक्ति न होगी—

'रामायणं वेद समं श्राद्धेषु श्रावयेद् बुधः'

इस महान् ग्रन्थ के परिप्रेक्ष्य में चरित्र-निर्माण के तत्कालीन स्वरूप एवं महर्षि द्वारा निर्धारित मानदण्डों का अवलोकन किया जाय ।

नगर एवं नागरिक

इक्ष्वाकुवंशी नरेशों का गौरवशाली इतिहास भारतीय संस्कृति की उज्जवल पताका फहराने में सर्वदा अग्रणी माना जाता रहा है । इन महापुरुषों की आदर्श परम्परा में अद्वितीय कर्म-धर्म-वीर, ज्ञानी-दानी हुए हैं । कौशल नाम से प्रसिद्ध जनपद की प्रमुख अयोध्या नगरी, जो सूर्यवंशियों की राजधानी रही, के वर्णन से तत्कालीन नागरिक संस्कृति और सभ्यता का आभास मिलता है । प्राचीन काल में भारत के नगर इस कोटि के होते थे ।

विमानमिव सिद्धानां तपसाधिगतं दिवि ।
सुनिवेशितवेशमान्तां नरोत्तमसमावृताम् ।।

बा० रा० बाल० ५।१६

-- देवलोक में तपश्चर्या से प्राप्त सिद्धों के विमान की भाँति सुव्यवस्थित प्रासादों के अन्तः पुरों का निर्माण अलौकिक था । अनेक श्रेष्ठ नरपुंगव पुरी में वास करते थे ।

इस पुरी के नागरिकों के विषय में आदिकवि कहते हैं—'यहाँ समस्त स्त्री-पुरुष धर्मशील, संयमी, सदा प्रसन्नचित्त, शील और सदाचार की दृष्टि से ऋषियों की भाँति निर्मल थे ।

सर्वे नराश्च नार्यश्च धर्मशीलाः सुसंयताः ।
मुदिताः शीलवृत्ताभ्यां महर्षय इवामला ।।

बा० रा० बाल० ६।६

सम्पूर्ण राज्य में एक भी मनुष्य मिथ्यावादी, दुष्ट, पर स्त्रीगामी न था । राष्ट्र एवं नगर में शांति का साम्राज्य था—

शुचीनामेकबुद्धिनां सर्वेषां सम्प्रजानताम् ।
नासीत् पुरे वा राष्ट्रे वा मृषावादी नरः क्वचित् ।
क्वचिन्न दुष्टस्तत्रासीत् परदाररतिर्नरः ।
प्रशान्तं सर्वमेवासीद् राष्ट्रं पुरवरं च तत् ।।

बा० रा० बाल० ७।१४-१५

भारतीय संस्कृति में चरित्र-निर्माण हेतु निर्धारित जिन सिद्धान्तों और सद्‌गुणों को आचरण में लाने का निर्देश दिया गया है, उनमें सर्वप्रथम है—अहिंसा

कौशल की विशेषता

चित्रकूट की पावन धरा पर जब रघुवंश के नरपुंगवद्वय विचित्र परिस्थितियों में परस्पर मिलते हैं, तब श्रीराम भरत को कुशल-क्षेम के बहाने जो विस्तृत उपदेश देते हैं उनमें यह प्रश्न भी पूछते हैं—'रघुनन्दन भरत ! जहाँ किसी प्रकार की हिंसा नहीं होती, वह अपना कौशल देश धनधान्य से सम्पन्न सुखपूर्वक तो रह रहा है न ?

हिंसा का अर्थ केवल किसी को मौत के घाट उतार देना ही नहीं, वरन् भारतीय दार्शनिक चिन्तन तो मनसा, वाचा भी किसी के हृदय को ठेस पहुँचाने को हिंसा मानता है । इसीलिए तो दशरथ-राज्य मन्त्रिमण्डल कें गुणों और नीति-सम्बन्धी विवरणों में ग्रन्थकार संकेत देते हैं—

अहितं चापि पुरुषं न हिंस्युरविदूषकम्

बा० रा० बाल० ७।११

'शत्रु भी अगर अपराधी न हो तो उसकी भी हिंसा नहीं करते । अयोध्या लौट चलने की प्रार्थना पर भरत का समर्थन करते हुए जब ब्राह्मण श्रेष्ठ जावालि नास्तिक मत का अवलम्बन लेकर राम को अपने तर्क द्वारा समझाने का प्रयास करते हुए इहलौकिक लाभ को अपना कर पारलौकिक लाभ को विस्मृत करने को कहते हैं—"प्रत्यक्षं यत्तदातिष्ठ परोक्षं पृष्ठतः कुरु।" तब उनके मत की निंदा करते हुए मर्यादा-पुरुषोत्तम घोषणा करते हैं कि—'सत्य, धर्म पराक्रम, समस्त प्राणियों पर दया, प्रिय भाषण, देव, अतिथि और ब्राह्मण पूजा को ही साधु पुरुषों ने स्वर्ग का मार्ग बताया है—

सत्यं च धर्मं च पराक्रमं च भूतानुकम्पाः प्रियवादितां च ।
द्विजातिदेवातिथि पूजनं च पन्थानमाहुस्त्रिदिवस्य सन्तः ।।

बा० रा० अयो० १०७।३१

सीता का परामर्श

विदेह राज के परम वैष्णव वातावरण में सुसंस्कृत विद्यासम्पन्न सीता ने प्रथम बार जब विराध का वध और गड्ढ़ा खोद कर उसका वीभत्स अंत भी अपनी आँखों देखा, तब वे उद्विग्न हो उठीं । सुतीक्ष्ण जी से विदा लेकर जब दोनों भाइयों ने दण्डकारण्य की ओर आगे प्रस्थान किया, तव विदेह कुमारी ने स्नेह युक्त वाणी में राम से अहिसां धर्म के विषय में जो कुछ कहा, वह अत्यंत भावपूर्ण विचार है । अरण्य काण्ड के ३२ श्लोकों का सम्पूर्ण नवम सर्ग ही इस पर प्रकाश डालता है ।

एक पक्षी की निर्मम हत्या से ग्रन्थरचना की प्रेरणा पाने वाले महर्षि, भगवती सीता के मुख से अहिंसा धर्म की जो व्याख्या करवाते हैं, वह स्तुत्य है—

क्व च शस्त्रं क्व च वनं क्व च क्षात्रं तपः क्व च ।
व्याविद्धमिदमस्माभिर्देशधर्मस्तु पूज्यताम् ।।

बा० रा० अर० २।२७

कहाँ तो शस्त्रधारण और कहाँ वनवास ? कहाँ क्षात्र धर्म और कहाँ हिंसा जैसा कठोर कर्म एवं कहाँ सब प्राणियों पर दयारूप तप ये परस्पर विरोधी जान पड़ते हैं, अतः आर्यपुत्र

हम लोगों को देशधर्म का ही आदर करना चाहिए । (इस समय हम तापसी वेश में और वन्य प्रदेश में हैं । अतः यहाँ अहिंसा धर्म पालन हमारा कर्त्तव्य है) यह है भगवती सीता का कान्तास्मित आदर्श चारित्रिक परामर्श !

अहिंसा विवेक

भगवान् राम अहिंसा की व्याख्या का परोक्ष निर्देश करते हुए भगवती सीता को समाधान करते हैं कि—'देवि ! अहिंसा का अर्थ कायरता नहीं है । ब्राह्मण एवं साधुओं के परित्राणार्थ मुझे उनके पास पहुँचने का उपक्रम करना था, वे मेरे पास आये । यह मेरे लिये अनुपम लज्जा की बात है, मैं उनके समक्ष प्रतिज्ञा कर चुका हूँ कि 'अपने सत्यव्रत के पालनार्थ आवश्यकता हो तो मैं तुम्हारा और लक्ष्मण का भी परित्याग कर सकता हूँ । यहाँ तक कि अपना जीवन भी अर्पित करने को तत्पर हूँ'—

अप्यहं जीवितं जह्यां त्वां वा सीते सलक्ष्मणाम् ।
न तु प्रतिज्ञां संश्रुत्य ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः ।।

बा० रा० उ० १०।१८

बालिवध के समय भी राम पर दोषारोपण करते हुए जब बालि अपनी मृत्यु को धर्म विरोधी बताता है—'अयुक्तं यदधर्मेण त्वयाहं निहतो रणे' तब भी अहिंसा धर्म का पालन करने वाले श्री राम कहते हैं—

न चे ते मर्षये पापं क्षत्रियोऽहं कुलोद्गतः ।
औरसीं भगिनीं वापि भार्यां वाप्यनुजस्वयः
प्रचरेत् नरः कामात् तस्य दण्डो वधः स्मृतः ।।

बा० रा० कि० १८।२२-२३

हरीश्वर ! श्रेष्ठ कुलोत्पन्न क्षत्रियोचित कर्तव्यानुसार तुम्हारे अपराध क्षम्य नहीं थे । कन्या, बहन, अनुजबधू को कामदृष्टि से देखने वाले के लिए मृत्यु दण्ड ही उपयुक्त विधान है । अहिंसा धर्मपालन का इससे उदात्त, और उदाहरण क्या हो सकता है ? कि वैरी को भी भाई शब्द से सम्बोधित किया जाय । जब विभीषण अपने भ्राता को अधर्मी, क्रूर निर्दयी, मिथ्यावादी तथा परस्त्री गामी कहकर उसका दाह संस्कार न करने को ही उचित ठहराता है तब श्रुतिसेतु पालक राम समझाते हैं—

'वैर तो मृत्यु तक ही होता है । मरने के बाद उसका भी अंत हो जाता है । हमारा प्रयोजन सिद्ध हो गया है, अतः जैसा रावण तुम्हारा भ्राता है, वैसे ही मेरा भी है, इसलिए उसका दाह-संस्कार करो ।

शील, संयम इन्द्रियनिग्रह या चरित्र बल भारतीय संस्कृत की अपनी विशेषता है । रामायण में आद्योपांत चरित्र-निर्माण के विषय में पग-पग पर दिशा-निर्देश दिये गये हैं परन्तु चरित्र के मेरुदण्ड के रूप मैंने केवल 'अहिंसा' का ही चित्रण किया है ।

बाल्मीकि रामायण चरित्र-निर्माण हेतु लिखा गया अद्भुत महाकाव्य है । इस ग्रंथ के महानायक श्रीराम जी की घोर तपश्चर्या क्या कम है ? इन्द्र के लिए भी जो समृद्धि स्पृहा का विषय हो, उस वैभवशाली राज्य को ठुकराकर वनवासी वेष में नंगे पाँव घूमने वाले तपः शिरोमणि तपस्वी राम को शतशः वंदन । उन्होंने उत्तम चरित्र के निर्माण का पथ प्रशस्त कर चरित्र-धर्म को महत्त्व दिया । ☐

एक सच्चाई

श्री स्वामी हंसानन्द सरस्वती जी महाराज

एक समय था जब भारतवर्ष जगद्गुरू कहलाता था । सारे संसार को आध्यात्मिकता का ज्ञान भारत ने दिया । संसार की असभ्य जातियों को सभ्यता का पाठ पढ़ाया । भारतवर्ष की सभ्यता और संस्कृति अत्यन्त प्राचीन है । ज्ञान के भण्डार कहे जाने वाले वेदों और उपनिषदों की रचना यहीं हुई । देश-देशान्तरों में व्यापार करने वाले भारतीयों द्वारा ही सारे संसार में भारतीय संस्कृति और ज्ञान का प्रसार हुआ ।

धर्म का स्वरूप

धर्म यहाँ अपने शुद्ध रूप में था । उसे सम्प्रदायों में बाँटा गया । सम्प्रदायवाद तो बहुत बाद में पनपा । प्रत्येक को अपने रास्ते पर चल कर ईश्वर की खोज करने तथा उपासना करने की पूरी छूट थी । परस्पर किसी भी प्रकार का विरोध नहीं था । शान्ति तथा संतोष से भरपूर प्रत्येक भारतीय का जीवन चल रहा था । जैन-बौद्ध साधना समानान्तर विकसित हुई । वह भी अनाग्रह की पक्षधर थी ।

संसार के मानचित्र पर ईसाई तथा इस्लाम सम्प्रदायों का उदय हुआ । यदि इन सभी सम्प्रदायों का गहराई से अध्ययन किया जाय तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि भारतीय साधना तथा धर्म के स्वरूप में इन सम्प्रदायों के मूल सिद्धान्त पहले से ही विद्यमान थे । भारतीय संस्कृति के लिए इनमें कोई नवीन बात नहीं थी । यह गलती हुई कि उक्त धर्मों के अनुयायियों ने बाद में धर्म के शुद्ध स्वरूप के स्थान पर साम्प्रदायिक रूढ़िवाद का पल्ला पकड़ लिया और अपने सम्प्रदाय को श्रेष्ठ मानने का अहंकार करने लगे । इस्लाम की धार्मिक कट्टरता और असहिष्णुता इसी का परिणाम है ।

भारतवर्ष अतुल धन-धान्य सम्पन्न था । प्राकृतिक साधनों और सम्पदा की भारत-वर्ष में कोई कमी नहीं थी । सोने की चिड़िया कहा जाने वाला भारतवर्ष विदेशियों की आँखों की किरकिरी बन गया । विदशियों के मन में भारत की सम्पदा प्राप्त करने का लालच उत्पन्न हुआ । समस्त विदेशी आक्रमणकारी हिंसक और बर्बर थे । चाहे वे यूनानी हों, शक हों, हूण हों, अथवा मंगोल हों, या फिर इस्लाम के अनुयायी तुर्क, पठान या मुगल कहे जाने वाले आक्रमणकारी रहे हों । इन आक्रमणों ने भारत की शान्ति भंग कर दी, भीषण नर-संहार किया और भरपूर लूट-पाट की । भारत के गौरव और वैभव को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया ।

इस्लाम के अनुयायियों की कट्टरता

भारत में इस्लाम का प्रवेश भी रक्तपात और लूट-पाट से प्रारम्भ हुआ । वे अपने साथ धार्मिक कट्टरता लाये । उन्होंने भारत के सांस्कृतिक वातावरण को भरपूर हानि पहुँचाई । मन्दिरों में मूर्ति-भंजन किया और मन्दिरों की सम्पत्ति के लूट लिया । सोमनाथ का मन्दिर

इस दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति का उदाहरण है । मन्दिरों को तोड़कर धार्मिक केन्द्रों को नष्ट कर दिया । तक्षशिला जैसे विद्या के विश्वस्तरीय केन्द्रों को हानि पहुँचाई और प्राचीन ग्रन्थों के विशालतम पुस्तकालयों को जला दिया । बलपूर्वक पकड़-पकड़ कर यहाँ के निवासियों को मुसलमान बनाया गया । स्त्रियों को अपमानित किया गया । बच्चों को जीवित ही दीवारों में चिनवा दिया गया । संक्षेप में उन्होंने भारतीय संस्कृति को अपने भरसक प्रयत्नों द्वारा नष्ट करने का प्रयास किया ।

इन स्थितियों में इस्लाम एक विरोधी सम्प्रदाय के रूप में सामने आया । इसलिये वह सम्प्रदाय अभी भी पूरी तरह से घुल-मिल नहीं सका है । इस्लाम की उपासना पद्धति के मूल में निराकार ईश्वर और एकेश्वरवाद का सिद्धान्त है, यह भारतीय साधना में पहले से ही विद्यमान था, इसलिये भारतीय, इस्लाम की उपासना पद्धति को तो स्वीकार कर सकते थे, कोई अड़चन नहीं थी, किन्तु खून-खराबे वाली इस्लामी-विकृति को नहीं अपना सकते थे । खून-खराबा करके इस्लाम के अनुयायियों ने अपने लिए घृणा और विरोध का वातावरण ही बनाया ।

मूर्ख बनाने वाला नारा

दुर्भाग्य यह है कि भारतीय मुसलमान आज यह भूल गये हैं कि वे मूलतः हिन्दू पूर्वजों की सन्तान हैं तथा अधिकतर धर्मान्तरित मुसलमान हैं । भारत-भूमि का अन्न खाते हैं, भारत का जल पीते हैं व भारत की वायु में सांस लेते हैं किन्तु भूल गये हैं कि वे भारतीय हैं । जिन्ना के समर्थक मुसलमान जब पाकिस्तान चले गये । वे पाकिस्तानी हो गये । तब यहाँ के मुसलमान भारतीय हिन्दुस्तानी ही बचे रह गये । इनके लिए हिन्दुस्तान में समान कानूनों की ही व्याख्या होनी चाहिए थी । लेकिन भारत में बचे मुसलमानों को मौलवियों तथा सरकार दोनों ने ही मूर्ख बनाया है और अलगाववाद को बढ़ावा दिया है । मुसलमानों को राष्ट्रवादी बनाये जाने की शिक्षा नहीं दी गयी है । मुसलमानों के पर्सनल लॉ को मान्यता देकर एक भारी भूल सरकार ने की है । मुसलमान दलाल नेताओं को संतुष्ट करके सरकार ने उन्हें अनुचित महत्व दिया और वोटों की राजनीति में पड़कर देश को तबाह करने में कोई कसर नहीं छोड़ी । धर्मनिर्पेक्षता का नारा देकर एक ओर हिन्दुओं का अपमान किया और दूसरी ओर आम मुसलमानों को भी मूर्ख बनाया । मौलवियों ने आम मुसलमानों में आधुनिक शिक्षा का प्रसार नहीं होने दिया और धार्मिक शोषण किया, उन्हें धर्मान्ध बनाया । "इस्लाम ख़तरे में है" का नारा लगा कर युद्ध कराये । यदि इस्लाम खतरे में है तो आजाद भारत में मुसलमानों की जंनसंख्या कई गुना कैसे हो गयी जबकि पाकिस्तान में हिन्दुओं की संख्या बराबर घट रही है ।

सच्चाई समझें

ईराक में अमेरिका ने मिसाइलों से हमला करके वहाँ के मुसलमानों को बड़ी संख्या में मारा तथा मस्जिदों को भी हानि पहुँचाई, तब विश्व के मुसलमानों ने अमेरिका का क्या बिगाड़ लिया ? अयोध्या में श्रीराम-मन्दिर, जो उनके जन्मस्थल पर स्थित था,उसी सामान से एक आक्रमणकारी मुसलमान बाबर द्वारा बनायी गयी मस्जिद कहे जाने वाले ढाँचे को यदि तोड़ दिया गया, इस भावना से कि भारतीय अपने पूर्वजों के प्रति अपनी आस्था को जीवित रखें,

आदर करें, संस्कृति का पुनरुत्थान करें तो एक हंगामा हो गया । जो ढाँचा तोड़ा गया, वह मस्जिद नहीं थी, न वहाँ नमाज अदा होती थी, न अजान दी जाती थी, न वहाँ मुअज्ज़न और नमाजी थे, न ही मस्जिद का प्रबन्ध देखने वाला कोई इमाम वहाँ था, न वहाँ शिया-सुन्नी बोर्ड उसकी देख-रेख कर रहा था, जबकि मन्दिर का पुजारी हमेशा से था और राम चबूतरे पर उपासना कार्यक्रम निरन्तर चलते थे । राजनीतिज्ञों ने गंदी राजनीति फैलाकर इस विवाद को बढ़ाया और हिन्दू-मुसलमानों के बीच वैमनस्य बढ़ाया ।

इन्हीं गंदी राजनीतिक नीतियों का परिणाम है कि कश्मीर भारत का अभिन्न अंग होते हुए भी अलग है । वहाँ से लाखों हिन्दू भगा दिये गये और मार डाले गये । वहाँ अनेक मन्दिर ध्वस्त कर दिये गये, भारतीय कहे जाने वाले मुसलमान संविधान फाड़ने और राष्ट्रीय ध्वज जलाने, भारत-माता को डाइन कहने तथा वन्देमातरम् गीत की अवमानना करने का साहस करने लगे । यह आम भारतीय राष्ट्रीय मुसलमान का साहस नहीं है । यह अराष्ट्रवादी मुसलमानों का कारनामा है, जो दिनों दिन बढ़ रहा है और इसके लिए सरकारी दलाल, राजनीतिज्ञ तथा अराष्ट्रवादी मौलवी मुसलमान उत्तरदायी हैं ।

अब यह समझ लेना चाहिए कि ऐसी स्थितियों का डटकर विरोध किया जायेगा । हम आज भी चाहते हैं कि भारत के हिन्दू और मुसलमान मिलकर भारतीय हो जायें । वे समान रूप से भारतीय संस्कृति का आदर तथा संरक्षण करें । इस सचाई को स्वीकार करने पर ही भारत में हिन्दू-मुस्लिम एकता बन सकेगी । ☐

हिन्दू दास नहीं रह सकता

श्री ब्रह्मचारी ओम चैतन्य जी महाराज

विचार स्वातन्त्र्य और सहिष्णुता इन दो गुणों के आधार पर वैदिक-संस्कृति युग-युगों से विकसित होती चली आ रही है । कहा गया है—

श्रुत धर्म इति ह्येकेनेत्याहुरपरे जनाः ।
न च तत्प्रत्यसूयामो न हि सर्वे विधीयते ।।

भारत के मनीषियों ने यह माना था कि ज्ञान की सीमाएँ नहीं हैं । वह असीम है । इसलिए वैदिक धर्म सतत् प्रगतिशील और नित्य-नूतन रहा है ।

मत परिवर्तन का आधार

भारत में वैदिक परम्परा के कारण सम्प्रदाय परिवर्तन के लिए कभी भय और लालच का सहारा नहीं लिया गया । शास्त्रार्थ द्वारा विचार बोध कराया गया है । सन्त-महात्माओं की वाणी का अनुसरण करके सम्प्रदाय भिन्नता के अनुसार कर्मकाण्डों का आचरण करने की पूर्ण स्वतन्त्रता भी रही है । कहा गया है—"एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति ।"

सत्य तो एक ही है । महापुरुषों ने अनेक तरह से उसका वर्णन किया है । उक्त वाक्य ने सबको अपनी समझ और शक्ति के अनुसार सत्य मार्ग पर चलने की छूट दी है । सत्य मार्ग पर, धर्म-मार्ग पर चलने के कर्मकाण्डों में काफी उदारता रखी गई है ।

धर्म के दस लक्षण दो भागों में विभक्त हैं—यम और नियम ।

यम—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, असंग्रह ।

नियम—शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान ।

"यमानि सेवे नित्यम् न नित्यम् नियमानि बुधाः ।"

यमों का आग्रह पूर्वक पालन करना है, पर नियम अर्थात् पूजा-पाठ, रहन-सहन, साधना के तरीके, ग्रन्थ-पाठ तथा ईश्वर-आस्था के विषय में सब स्वतन्त्र हैं । इसलिए भारत में अनेक सन्त-महापुरुष हुए, जिन्होंने समय-समय पर देश, काल, पात्र के अनुसार अनेक पंथों की स्थापना की । सब पंथों के पूजा-स्थल, पूजा-पद्धति, कर्मकाण्ड तथा ग्रन्थ अलग-अलग हैं, तो भी भारत में यह एक-दूसरे के साथ सामंजस्य से रहते हैं ।

वेद कहता है—

वामं वामं वो दिव्याय धाम्ने,
वसु वसु वः पार्थिवाय सुन्वते ।

समाज में सामंजस्य और प्रकृति में सौन्दर्य चाहिए । इस सामंजस्य के कारण सबको सब तरफ जाने की छूट है, लेकिन भय और लालच से नहीं ।

टकराव का कारण

अब प्रश्न उठता है कि अरब और यूरोप से आये इस्लाम और ईसाई सम्प्रदायों के साथ वह सामंजस्य क्यों नहीं बन पाया ?

उत्तर बहुत साफ है कि इन सम्प्रदायों को फैलाने वाले भारत में राज्याकांक्षा लेकर आये । इस्लाम के नाम पर या ईसाइयत का राज्य स्थापित करके तलवार और लालच से अपने मतावलम्बी बढ़ाने की प्रक्रिया ने इन सम्प्रदायों के प्रति दुराव का भाव पैदा कर दिया है । आज जब लोकतन्त्र की पद्धति के कारण राज्यसत्ता वोटों की गिनती पर आधारित हो गयी है तो इन दोनों सम्प्रदायों के राजनीतिज्ञों में अपनी संख्या बढ़ाकर अन्य मतावलम्बियों पर राज्य करने की आकांक्षा बहुत बलवती हो गयी है । राज्य आकांक्षी राजनीतिज्ञों ने भी वोट प्राप्त करने के लालच में पन्थ-निरपेक्षता के नाम पर मुस्लिम और ईसाई-सम्प्रदायों के प्रति तुष्टिकरण की नीति अपनायी और इन सम्प्रदायों के राजनीतिज्ञों की संकुचित सम्प्रदायवादी प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया है ।

इस्लाम और ईसाई सम्प्रदायों के कतिपय धर्माचार्य राज्याकांक्षा की पूर्ति के लिए सम्प्रदाय परिवर्तन का समर्थन करते हैं । हमारा कहना है कि राज्याकांक्षा के लिए डर या लालच से किया गया परिवर्तन, धर्म सम्मत नहीं है । यह अधर्म है । इस अधर्म कार्य को भारतीय संविधान पोषण देता है । यह अनुचित है । इस्लाम और ईसाई पंथों में बहुत सी अच्छाइयां हैं । इनके संस्थापक प्रभु ईशु और हजरत मुहमम्द ने इन्सानियत के उसूल कायम करने के लिए ही अपने को कुर्बान किया था । उनकी वाणी ने मानव-समाज का कल्याण किया है । उनके विचारों का हम आदर करते हैं । लेकिन भारत में इस्लाम व ईसाइयत के मानने वालों को वोट की राजनीति ने सम्प्रदायों के नाम पर विशेष सुविधाएँ देकर राष्ट्रीय धारा से अलग कर दिया है । अतः साम्प्रदायिक सद्भाव के लिये इन सम्प्रदायों की तरफ से समान कानून की मांग होनी चाहिए ।

लालच या भय दिखाकर धर्मपरिवर्तन करना अधर्म-कार्य माना जाना चाहिए । जो इस काम में लगे हैं, उनको अधर्मी घोषित किया जाना चाहिए ।

किसी भी पंथ या सम्प्रदाय के पूजा-स्थलों पर कब्जा करना या उनको नष्ट करना, अथवा उनको भ्रष्ट करना धर्म विरुद्ध माना जाना चाहिए ।

किसी समय इस्लाम सम्प्रदाय के आतताइयों ने हिन्दू सम्प्रदाय के पूजास्थलों को ध्वस्त करके उन पर कब्जा कर लिया था । उसे भी अधर्म कार्य घोषित करना चाहिए । भारत में इस्लाम सम्प्रदाय के नाम पर आतताइयों द्वारा यह दुष्कर्म किया गया था । एक धार्मिक-मुसलमान, धार्मिक-ईसाई, धार्मिक-हिन्दू इस अत्याचार की अवश्य निन्दा करेगा । इस आधार पर ऐसे मन्दिर, सम्बन्धित सम्प्रदायों को हस्तांतरित करने का निर्णय करना चाहिए । यदि ऐसा नहीं होता है तो भूत काल में हुए अधर्म-कार्यों के विरुद्ध प्रतिक्रिया होना स्वाभाविक है । हिन्दू समाज में दुष्ट, क्रूर और भ्रष्टों का कोई आदर नहीं होता । रावण जैसे विद्वान्, धनी, बलवान एवं उच्चकुल में पैदा हुए व्यक्ति को हिन्दू समाज कोई प्रतिष्ठा नहीं देता । हर प्रकार की दासता के विरुद्ध हिन्दू-समाज विद्रोह करता रहा है । वह अब दास नहीं रह सकता । □

गुण-दर्शन से साक्षात्कार

सन्त विनोबा

परमेश्वर ने ऐसी योजना की है कि किसी में कुछ गुण हैं और किसी में कुछ दूसरे ही प्रकार के गुण हैं । हर एक में गुणों के साथ अनेक दोष भी होते हैं । ऐसे भी लोग हैं, जिनमें अधिक गुण और एकाध दोष रहता है । लेकिन जो दोष होते हैं, वे देह के साथ जुड़े होते हैं । देह जाते ही खतम हो जाते हैं । गुण आत्मा के अंदर होते हैं । वे शाश्वत होते हैं और उनका अनन्त परिणाम होता रहता है ।

परमात्म-प्रतीति

हमको समाज में रहते हुए इस बात का हमेशा ख्याल रखना चाहिए कि नजदीकवाला जो मनुष्य है, उसमें कौन सा गुण है । गुण चुम्बक के समान होता है, जैसे लोह चुंबक होता है । मिट्टी में अनेक प्रकार के कण पड़े हों, तो उनको वह खींचता नहीं, लेकिन लोहकणों को एकदम खींच लेता है । वैसे, जहाँ गुण दीखें, तुरंत खींच लेना चाहिए । स्तवन करें, गुण-वर्धन करें । अपना भी गुण गाओ और दूसरों का भी गुण ही गाओ। इसी का नाम है परमात्मा का गुण-गान । परमात्मा को देखना हो तो वह गुणरूपेण मनुष्य में विद्यमान है । हमने किसी में गुण नहीं देखा तो समझना चाहिए कि हमको परमात्म-दर्शन नहीं हुआ । अगर यह कुंजी हाथ में आ जाये तो परमात्मा ऊपर सातवें आसमान पर नहीं बैठा रहेगा । गुण-दर्शन से खिंच कर हमारे पास आ जायेगा, क्योंकि गुण-दर्शन ही से भगवान का अवतरण होता है ।

अगर अब गुण-दर्शन की बात बुद्धि को जंच जाये तो साक्षात्कार को आधार मिलेगा । यह बात जब तक बुद्धि को ग्रहण नहीं होती, तब तक साक्षात्कार का प्रश्न पैदा नहीं होता । प्रथम बुद्धि को ग्रहण होना चाहिए । ग्रहण होने के बाद उसका अनुभव आना, दूसरी वस्तु है । कोई भी बात प्रथम बुद्धि को जँचनी चाहिए । बुद्धि को जंचना ज्ञान है और उसके बाद का अनुभव है विज्ञान का साक्षात्कार ।

मिसाल के तौर पर विश्व में करुणा भरी है, अब यदि बुद्धि को करुणा की आवश्यकता महसूस होगी तो फिर करुणा का जो अनुभव होगा, वह करुणा का साक्षात्कार होगा । लेकिन यह साक्षात्कार करुणा-गुण तक ही सीमित है । एक छोटा-सा साक्षात्कार है । इसके अलावा व्यापक साक्षात्कार भी होते हैं, जिसमें अनेक प्राचीन पुरुषों का भी संबंध आता है । उसके लिए हमें अपने को तैयार करना होगा ।

प्राचीन पुरुषों के सन्देश

रेडियो पर हम दूर की आवाज सुन सकते हैं लेकिन हमारे पास रेडियो सेट न हो, तो हम वह आवाज सुन नहीं सकेंगे । हम न सुन सकें तो भी वातावरण में वह भरी पड़ी है । साईन्स ने यह बात सिद्ध की है । वह आवाज ग्रहण करने की शक्ति चाहिए । ऐसी शक्ति जिसके पास होगी, उसको वह सुनायी देगी । गांधीजी की आवाज पकड़ कर रखी गयी है । रेकार्ड पर हम वह सुन सकते हैं । जब रेकार्ड शुरू होता है, तब जिन लोगों ने गांधीजी की आवाज सुनी है, उनको लगता है कि स्वयं गांधीजी ही बोल रहे हैं । भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को गीता कही, तब वह आवाज ऐसी ही पकड़ कर रखते, तो आज भी हम उसे सुन सकते थे । लेकिन ऐसा सेट उस समय उपलब्ध नहीं रहा होगा । वह आवाज पकड़ी नहीं जा सकी तो भी बात पक्की है कि भगवान श्री कृष्ण की आवाज वातावरण में फैली हुई है । वह ग्रहण करने की शक्ति जिसके पास होगी, उसको वह स्पर्श भी करेगी । आज भी अनेकों को स्पर्श करती है ।

नामदेव तुकाराम से पहले हुए । वे एक बार तुकाराम को स्वप्न में दिखाई दिये—

नामदेवें केलें स्वप्नामाजीं जागें
सांगिल लें काम करावें कवित्व

और कहा, 'तुका ! तुम्हें मेरा काम पूरा करना होगा । मैंने संकल्प किया था, वह मैं पूरा न कर सका । वह तुम्हें पूरा करना है ।' उसके बाद तुकाराम को काव्यप्रेरणा हुई, काव्यस्फूर्ति हुई । तब से वे भजन (अभंग) बनाने लगे । नामदेव की प्रेरणा से तुकाराम ने ज्ञानेश्वरी की रचना कर दी । इसका अर्थ क्या ? नामदेव की आत्मा ने, व्यापक स्वरूप में घूमते हुए, अनुकूल व्यक्ति मिलते ही उसको पकड़ा । उसके बाद तुकाराम को काव्य प्रेरणा हुई ।

इस तरह प्राचीन पुरुषों ने, जब तक वे देह में थे, व्यापक होने का कितना भी प्रयत्न किया हो, पर वे पूर्ण व्यापक बन नहीं सके । देह जाने के बाद, व्यापक स्वरूप में चारों ओर ढूँढ़ते रहते हैं—कोई अनुकूल आत्मा मिले और उसे हम संदेश दें । ऐसी छटपटाहट से वे ढूँढ़ते रहते हैं और ऐसी आत्मा मिलते ही उस को उनका स्पर्श होता है और संदेश मिलता है । उसे कहते हैं—साक्षात्कार । साक्षात्कार यानी प्राचीन पुरुषों का स्पर्श, यह बात साईन्स ने भी मान्य की है । प्राचीन महापुरुषों का इस प्रकार स्पर्श होता रहता है ।

परस्पर पूरकता

गौतम बुद्ध ने चालीस उपवास किये और उपवास के अंत में उन्हें करुणा का साक्षात्कार हुआ । मूसा ने भी चालीस उपवास किये थे । ईसा मसीह ने भी चालीस उपवास किये थे । इस प्रकार, चालीस उपवास की एक परंपरा ही दिखायी देती है । इसमें क्या सार भरा है ? चालीस उपवास करनेवाला कोई, जो पहले हो गया, दूसरों को स्पर्श करता है और प्रेरणा देता है । मेरा मानना है कि ईसा मसीह को गौतम बुद्ध का स्पर्श हुआ और प्रेरणा मिली । ईसा के जन्म के समय, कहा है, 'वाईज मैन ऑफ दि ईस्ट'(पूर्व के ज्ञानी लोग)' वहाँ उपस्थित

थे । मेरा अनुमान है कि वे बुद्ध के अनुयायी होंगे । वे उस समय वहाँ पहुँचे होंगे । उनका स्पर्श ईसा को हुआ होगा ।

ऐसी जानकारी उपलब्ध हुई है कि ईसा मसीह बढ़ई थे । बढ़ई के नाते उन्होंने तीस साल काम किया होगा । फिर आगे तीन साल उसका 'सेवा-काल' रहा । कुल जीवन तैंतीस साल का । पहले तीस साल उन्होंने क्या किया, इसकी जानकारी उपलब्ध नहीं । ऐसा दीखता है कि घूमते-घूमते वे तिब्बत पहुँचे । वहाँ बौद्धों का स्पर्श उन्हें हुआ और वे ज्ञान ले कर वापस गये । यह कल्पना अब रूढ़ हुई है । तो ऐसी आत्मा सर्वत्र स्पर्श करती है । यह बोलने की एक भाषा हुई । और ये स्पर्श करवा लेते हैं, यह बोलने की दूसरी भाषा हुई । अब वे करते हैं, या कि ये करवा लेते हैं, इसका निर्णय कौन करेगा ? दोनों हाथों से ताली बजी । तो ऐसी सजातीय आत्माएँ प्यासी होती हैं—ऐसा स्पर्श चाहती हैं और उनका व्यापक स्पर्श इन्हें सहजतया हो जाता है । यह सब होता है चैतन्य तत्त्व के कारण । वह चैतन्य तत्व सबमें है । इसे ईश्वर भी कहते हैं ।

चैतन्य मय सृष्टि

साईन्स ने भी माना है कि विश्व में चैतन्य तत्त्व होना चाहिए । साईन्स नास्तिक नहीं, आस्तिक भी नहीं । वह 'डाउटिंग' (अनिर्णीत) है । यही साईन्स का मुख्य लक्षण है । नास्तिकों को भी 'डाउटिंग' होना चाहिए । वे ईश्वर नहीं है, ऐसा निर्णय लेते हैं । मतलब वे साईन्स से भी ऊपर जा रहे हैं । ईश्वर नहीं है, कहने की साईन्स की तैयारी नहीं । साईन्स 'ईश्वर है' भी नहीं कहता और 'ईश्वर नहीं है' भी नहीं कहता । इसका निर्णय लेनिन ने किया । लेनिन से पूँछा गया कि मन किस चीज का बना है ? उन्होंने जवाब दिया : 'सृष्टि का बना है । सृष्टि का मन पर असर होता है और उससे मन बनता है ।' फिर पूँछा कि सृष्टि का स्वरूप क्या है ? जड़ कि चेतन ? तब लेनिन ने जवाब दिया कि 'यह प्रश्न अभी अनिर्णीत है, इसका निर्णय साईन्स करेगा, जो निर्णय देगा, वह मानना पड़ेगा ।' कल अगर साईन्स निर्णय दे कि यह सब चैतन्यमय है, तो ईश्वर एकदम अपने-आप ही सिद्ध होगा । जड़ तय हुआ, तो प्रकृतिमय यानी प्रकृति से विश्व हुआ, सिद्ध होगा । ईश्वर को साईन्स का आधार मिलेगा, आजकल साईन्स का झुकाव चैंतन्य की ओर है ।

अवतार मीमांसा

समुद्र होता है और उसमें लहरें आती हैं । वैसी ही लहरें चैतन्य में भी आती हैं । चैतन्य जड़ नहीं, वह लकड़ी जैसा बैठा नहीं रहता । उस पर लहरें उठती हैं । वे उठती हैं फिर नीचे गिरती हैं । स्तर में कोई अन्तर नहीं पड़ता । लहरें ऊपर उठती हैं और नीचे गिरती हैं । हम जिसको अवतार कहते हैं, वह यही है । एक लहर ऊपर आयी, वह एक संकल्प । दूसरी आयी दूसरा संकल्प । कुछ छोटे संकल्प होते हैं और कुछ बड़े संकल्प होते हैं । परमात्मा की समूची सृष्टि संकल्पमय है । संकल्प यानी योजना-पूर्व-व्यवस्था-(प्रीकनसेप्शन) । यह बात कि चैतन्य में लहरें आती हैं, यदि ध्यान में आये, तो अवतार की मीमांसा पूरी होगी । वस्तुतः आप, हम, सब अवतार ही हैं : लेकिन छोटी लहरें हैं । जब बड़ी लहर आयी, तब

लोगों ने उसको अवतार कहा, यद्यपि हम सभी अवतार हैं । (वैदिकों का मानना है कि वह एक से अनेक हो गया । अर्थात् वह जड़ चेतन सृष्टि के रूप में प्रकट हुआ) ।

चित्त-शुद्धि से एकाग्रता

अवतार की यह जो कल्पना है, वह मानने की किसी पर जिम्मेदारी नहीं । अब होता क्या है कि धार्मिक समुदाय जिनको अवतार मान लेता है, उनके कहे वचनों को दुहराकर उनका स्मरण करता है । ऐसा करके राम, रहीम, कृष्ण, करीम, ईश्वर, अल्लाह आदि के ध्यान में एकाग्र होने की कोशिश करता है । लेकिन चित्त-शुद्ध किये बिना एकाग्रता सधती नहीं । यह भी ईश्वर का अनुग्रह ही है । चित्त-शुद्ध किये बिना एकाग्रता सधती, तो एकाग्रता का दुरुपयोग होता । इसलिए प्रथम चित्त के मल धोने की साधना करनी चाहिए । लेकिन वैज्ञानिक कहता है कि बिना चित्त-शुद्ध किये किसी विशिष्ट काम के लिए एकाग्रता भी सध सकती है । डॉक्टर है । उसे कोई गंभीर, महत्त्व का ऑपरेशन करना हो, तो उसमें उसका चित्त एकाग्र होगा । उस समय डॉक्टर ज्यादा खा कर नही आयेगा, उपवास भी नहीं करेगा, संयमित आहार लेकर आएगा और पूर्ण एकाग्रता से काम करेगा । दूसरे-तीसरे विचार, उसके चित्त में आयेंगे ही नहीं । क्योंकि उसकी एकाग्रता को निमित्त मिला है । इसलिए चित्त तन्मय हुआ । निमित्त न हो तो चित्त एकाग्र क्यों होगा ? किसलिए एकाग्र होना है ? हमारी मर्जी है इसलिए ? इस तरह आपकी मर्जी के अनुसार चित्त एकाग्र नही होगा । उसको निमित्त चाहिए, इस तरह की एकाग्रता का अनुभव सब को आता है । परंतु अत्यंत एकाग्रता, यानी चित्त में कोई भी लहर न उठे, घंटों तक चित्त केवल शांत रहे, यह तभी सधेगा, जब चित्त शुद्ध होगा । अन्यथा, वह चंचल हो कर दौड़ेगा और एकाग्रता कभी सधेगी नहीं । इसलिए प्रथम प्रयत्न चित्त-शुद्धि का होना चाहिए, तब चित्त एकाग्र होगा ।

गुण-दर्शन से साक्षात्कार

प्रश्न उठता है कि चित्त-शुद्ध करने की प्रक्रिया क्या है ?

दुनियाँ में ऐसा एक भी मनुष्य निर्माण नहीं हुआ, जिसमें एक भी गुण न हो । एकाध गुण होगा ही । ऐसा भी मनुष्य नहीं, जिसमें एक भी दोष न हो । एकाध दोष होगा ही । तो अपना गुण देखें और उस गुण को बढ़ायें । यह गुण वर्धन प्रक्रिया है । जब गुण का अत्यंत उत्कर्ष होगा, तब चित्त-शुद्धि होगी और एकाग्रता सधेगी, एकाग्रता से साक्षात्कार होगा । सत्य के मार्ग में परमेश्वर के दर्शन होंगे । परमेश्वर के पास पहुँचने के बाद बाकी गुण अपने आप ही आयेंगे ।

सत्य, क्षमा, प्रेम, करुणा आदि अनेक गुण हैं, किसी एक गुण का विकास करते-करते बाकी सब गुण स्वयं ही प्राप्त होने लगते हैं । अतः इस झगड़े में पड़ने की जरूरत नहीं है कि कौन सा गुण प्रधान तथा कौन सा गौण है । सब गुणों का पारस्परिक सहयोग हो तो धर्म बनता है । वास्तव में धार्मिक होने का मतलब ही गुण-वर्धन है । गुण-वर्धन, साक्षात्कार का माध्यम है । अतः सिद्ध होता है कि धर्म का प्रमुख लक्षण है गुण-वर्धन तथा गुण-दर्शन । जब हम एक दूसरे के गुण-वर्धन तथा गुण-दर्शन का प्रयास करने लगेंगे तो आपस में प्रेम

बढ़ेगा । तो धर्म का दूसरा लक्षण हो जायेगा प्रेम । जहाँ प्रेम है, मुहब्बत है वहाँ सभी गुण सहजरूप में आने लगेंगे । जब जीवन में सहजता आती है तो सभी के साथ एकरूपता के भाव की प्रतीति स्वभाव बन जाती है । यह स्थिति सब में अपने क़ो और अपने में सब को देखने की दृष्टि प्रदान करती है, यही तो साक्षात्कार है । इस साक्षात्कार के लिए धर्म एक सरल रास्ता है ।

हरि व्यापक सर्वत्र समाना । प्रेम ते प्रकट होइ मैं जाना ।।

□

प्रार्थना

सुमति दो हम सबको भगवान्, करें सबका स्वागत सम्मान
सबको प्रेम सहित अपनाएँ, जीव मात्र को सुख पहुँचाएँ
करें नहीं अपमान, सुमति दो हम सबको भगवान्
सीखें सबकी सेवा करना, सीखें दु खियों का दुख हरना
हो न कभी अभिमान, सुमति दो हम सबको भगवान्
कभी न कष्टों से घबड़ाएँ, नर अधीर क़ो धीर बन्धाएँ
हों गम्भीर महान्, सुमति दो हम सबको भगवान्
अपना सा दुःख सबका जानें, अन्तरात्मा को पहचानें
रहे सदा यह ध्यान, सुमति दो हम सबको भगवान्
प्रभु हर नर नारी के अन्दर, जगे ज्ञान की ज्योति निरन्तर
नाशे तम अज्ञान, सुमति दो हम सबको भगवान्
सब मिलि ध्यान धरें हम तेरा, उठे अविद्या का सब डेरा
होवे आत्मज्ञान, सुमति दो हम सबको भगवान्
विद्या विनय विवेक बढ़ाएं, काम क्रोध मद लोभ हटाएँ
पालें वेद विधान, सुमति दो हम सबको भगवान्
अनिल अनल जल व्योम मही में, तिर्यग देव नर असुर सभी में
करें तेरी पहचान, सुमति दो हम सबको भगवान्
वेदों का उपदेश यही है, सद्गुरु का संदेश यही है
हो सबका कल्याण, सुमति दो हम सबको भगवान्
सदा सुखी हों सब नर-नारी, ऋद्धि सिद्धि युत जनता सारी
बढ़े ज्ञान विज्ञान, सुमति दो हम सबको भगवान्
अन्तिम यही विनय है मेरी, रहे आप की कृपा घनेरी
देहु भक्ति वरदान, सुमति दो हम सबको भगवान्

श्री स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज

गोवंश-रक्षण : एक वैज्ञानिक दृष्टि

श्री स्वामी ज्ञानानन्द जी रामायणी

बीसवीं सदी के आधुनिक इन्सान को यह बड़ा अजीब लगता है कि कुछ लोग गोवंश को पवित्र मानकर उसके बध पर रोक लगाने की माँग करें या कृषि प्रधान देश के लिए बैल और गोबर संरक्षण के लिए गोवध रोका जाय । कहा जाता है कि इस विज्ञान के युग में क्या बैल से खेती करने की बात करते हैं ? बूढ़ी होने पर भी गाय या बैल को काटा न जाय, यह तो समझ में आने लायक बात है ही नहीं ।

ऊपर के सवाल ऐसे हैं जिनको वैज्ञानिकता के नाम पर गोवध के लिए समर्थन प्राप्त करने हेतु इस्तेमाल किया जाता है । यह सही है कि केवल रिवाज या रूढ़ि के नाम पर आमतौर से आर्थिक प्रश्नों को नहीं सोचना चाहिए । क्योंकि इस युग में पशु ही नहीं, मनुष्य भी एक आर्थिक इकाई मात्र बन गया है । अतः गोवध बन्दी के प्रश्न को वैज्ञानिक दृष्टि से तथा आर्थिक दृष्टि से यदि समर्थन नहीं मिलता है तो सचमुच इस युग में गोधन का बचाना संभव नहीं है । इसीलिए गाय के साथ बहुसंख्यक समाज का भावनात्मक सम्बन्ध होते हुए भी वह रोज कटती चली जा रही है । जिस आर्थिक और वैज्ञानिक पहलू पर हम गाय के प्रश्न को समझने की कोशिश करते हैं, विज्ञान की वह भूमिका और अर्थ की वह दृष्टि गाय को नहीं बचा सकेगी । वह क्या है ?

दो भूमिका

विज्ञान की दो भूमिकाएँ साफ-साफ हैं—

१. प्रकृति की शक्तियों का और उसमें उपलब्ध खजानों का मनुष्य के लिए भोग-सामग्री उत्पन्न करने तथा बहुसंख्यक समाज पर प्रभुत्व कायम करने के लिए उपयोग किया जाय ।

२. प्रकृति की शक्तियों और उसमें उपलब्ध खजानों का मानव कल्याण के लिए उपयोग करने के लिए प्रकृति के नियमों को समझें तथा मनुष्य, समाज और प्रकृति का संतुलन कायम रखते हुए उसका उपयोग करें ।

उपरोक्त दोनों दृष्टियाँ अपने में पूर्ण हैं । हर दृष्टि की एक जीवन-पद्धति होगी । वह जीवन-पद्धति तब तक चलती रहेगी, जब तक उसके पीछे जो दृष्टिकोण है, वह कायम रहेगा ।

पहला दृष्टिकोण सर्वनाश की दिशा में मनुष्य को ले जा रहा है । क्योंकि इस दृष्टिकोण के कारण ही भोगवाद की सभ्यता बढ़ी है जिसने व्यक्ति, समाज और प्रकृति तीनों के जीवन अनुबन्धों को तोड़कर असंतुलन पैदा किया है । इसी असंतुलन के परिणाम स्वरूप गोधन

की उपयोगिता उसके माँस, चमड़े, चर्बी, सींग आदि तक सीमित रह गयी है । गोदुग्ध को भी स्थान है लेकिन उसके लिए गाय नित्य प्रति एक हाड़-माँस की मशीन का रूप लेती जा रही है । इस असंतुलन से मानसिक और वायुमंडलीय प्रदूषण नित्य प्रति तीव्र गति से बढ़ता चला जा रहा है । सारी दुनियाँ के आम आदमी का ध्यान विज्ञान के प्रति पहले किस्म के दृष्टिकोण के फलस्वरूप होने वाले सर्वनाश की ओर जा रहा है । सोचने-विचारने वाले अल्पसंख्यक मनुष्य समुदाय में इसके कारण एक चिन्ता भी पैदा हुई है । अतः उनकी तरफ से विज्ञान के प्रति दूसरे प्रकार के दृष्टिकोण की वकालत होने लगी है । मानव समाज को यदि सर्वनाश से बचाना है तो प्रकृति की शक्तियों और उसमें संग्रहीत खजानों के उपयोग के प्रति सही दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है । इस दृष्टिकोण को संतुलित दृष्टिकोण कहा जायगा ।

गोवध बन्दी के लिए सबसे पहला काम यह करने की जरूरत है कि वैज्ञानिक चिन्तन की दिशा सही बने, वर्ना जो ऊपर सवाल उठाये गये हैं, उनका सही जवाब नहीं मिल सकेगा ।

धार्मिक भावना

गोवध बन्दी के लिए दूसरा आधार हिन्दुओं की धार्मिक भावना का है । इस भावना का आधार बहुत मजबूत है । हिन्दू गाय को माता मानते हैं अतः उनकी पूज्य भावना गाय के साथ जुड़ी है । यह भावना मात्र धार्मिक ही नहीं, बल्कि इसके पीछे वैज्ञानिक, सांस्कृतिक और आर्थिक आधार हैं । फिर भी यदि माना जाय कि यह मात्र धार्मिक भावना है तो क्या बहुसंख्यक जनता के पूज्य गोधन का अल्पसंख्यकों के लिए वध करना उचित है ?

बहुसंख्यक जमात की धार्मिक भावना की अवहेलना, धर्म निरपेक्षता कभी नहीं हो सकती । यह तो अल्पसंख्यकों से राजनीतिक लाभ लेने हेतु उनको नाजायज प्रोत्साहन देना है । जिस प्रकार बहुसंख्यक जमात के लिए अल्पसंख्यक जमात के हित और भावनाओं को ठेस पहुँचाना वर्जित है उसी प्रकार अल्पसंख्यकों को भी बहुसंख्यकों की सांस्कृतिक और धार्मिक भावनाओं का आदर और सम्मान करना चाहिए । यदि हिन्दुओं के लिए 'गाय' माता के समान है तो अन्य मतावलंबियों को यह अधिकार कदापि नहीं है कि वे गाय के वध को अपने धार्मिक अनुष्ठान का अंग मानें । इस आधार पर गोवध जारी रखना भारत की बड़ी जमात के साथ सरासर अन्याय है । आज अपने देश में धर्म-निरपेक्षता के नाम पर राजनीतिक लाभ उठाने का षड्यन्त्र चल रहा है, जिसका पूरी शक्ति से विरोध होना चाहिए ।

आर्थिक जीवन का आधार

गोवध बन्दी के लिए अन्य ठोस आधार भी हैं । भारत कृषि प्रधान देश है । यहाँ की खेती का मुख्य आधार बैल हैं । विकेन्द्रित अर्थ-व्यवस्था के लिए विकेन्द्रित चालक शक्ति के रूप में बैल के अलावा दूसरी शक्ति हो ही नहीं सकती । मशीनों से खेती करने की कल्पना बहुत अच्छी है, लेकिन क्या आज भारत में एक प्रतिशत कृषि भी मशीनों से हो रही है ? डीजल और पेट्रोल की इतनी बड़ी तंगी के रहते क्या सम्भव है कि पूरे यातायात के साथ

ही सारी की सारी खेती भी मशीनों से हो जायेगी ? यह एकदम असम्भव है । इसलिए चालक शक्ति के रूप में बैल का स्थान महत्त्वपूर्ण है । गाय इन बैलों की जननी है । कौन ऐसा मूर्ख होगा जो चालक शक्ति को जन्म देने वाली गाय का वध करेगा ?

गाय भारत के आर्थिक जीवन का आधार है । सोच समझकर ही उसे माता का स्थान दिया गया है । यह बात शाहंशाह अकबर ने भी समझ ली थी और अपनी सल्तनत में गोहत्या बन्द करा दी थी । किन्तु भारत में अँग्रेजी राज आने के बाद से गायों का कटना पुनः शुरू हो गया । क्योंकि उन्हें अपने गोरे सिपाहियों के लिए गोमांस चाहिए था । शासन करने के लिए हिन्दू-मुसलमानों को लड़ाये रखने का उन्होंने एक कारगर तरीका अपनाया ।

मौलिक प्रश्नों के लिए राजनीतिक दांव पेंच

बहुसंख्यक हिन्दू और अल्पसंख्यक मुसलमानों को आपस में लड़ाये रखने के लिए अँग्रेजों ने गाय को माध्यम बनाया था । आज के राजनेता भी उससे अछूते नहीं हैं । भारत की सरकार अल्पसंख्यक मुसलमान और ईसाइयों को खुश करने के लिए गोवध बन्दी कानून बनाने में हिचकती है । क्या विडंबना है कि इस प्रकार के मौलिक प्रश्नों को भी राजनीतिक जोड़-तोड़ और राज्याकांक्षा के लिए उलझा दिया जाय ।

गोवध बन्दी की दृष्टि से तीसरा प्रश्न है—बूढ़े और असमर्थ पशुओं के उपयोग का । सवाल उठता है कि बूढ़ी गाय, बूढ़े बैल, निकम्मे गोधन का क्या करें ? यह सवाल हर जगह काफी जिम्मेदार लोगों द्वारा उठाया जाता है । इस सवाल की आड़ में बहुत ही अच्छे गाय-बैल, बछड़े-बछिया सैकड़ों की तादाद में रोज काटे जाते हैं ।

इस सवाल के जवाब में हम भी एक सवाल करना चाहते हैं, यदि बूढ़े और असमर्थ पशुओं को ही काटा जाता है तो फिर काफ-लेदर के नाम से जो चमड़ा बाजार में बिकता है, वह कहाँ से आता है ? क्रिकेट की बाल पर बढ़िया से बढ़िया बैल गाय के पुट्ठे का चमड़ा कहाँ से आकर इस्तेमाल होता है ? बूढ़े गाय बैल में उत्तम लुगदीदार मांस तो निकलता नहीं, वहाँ तो हड्डी का ढांचा मात्र ही होता है । गोमांस और गाय के चमड़े का व्यापारी क्या यह बता सकता है कि यदि बूढ़े और असमर्थ गाय बैल ही काटे जावें तो उनका गाय के चमड़े और गाय के गोश्त का व्यापार कितने दिनों तक चल सकेगा ?

डीजल पेट्रोल के लिए पर-निर्भरता

भारत कृषि-प्रधान देश है । इस देश की ८० प्रतिशत जनता खेती पर ही निर्भर है । खेती के धन्धे की चालक शक्ति बैल है । यदि बैल का संरक्षण नहीं होता है तो इस देश की आर्थिक रीढ़ ही टूट जायेगी । इसलिए हम कहते हैं कि बैल भारत के आर्थिक जीवन की बुनियादी कुंजी है ।

Bullock is the key motive power of Bhartiya Economy.

कहा जाता है कि खेती ट्रैक्टर आदि यंत्रों से कर ली जायेगी । लेकिन कभी सोचा है क्या, कि यदि खेती के लिए पेट्रोल और डीजल पर निर्भर रहना शुरू कर दिया तो आजादी

कितने दिनों ठहरेगी ? पूरे भारत में कुछ हजार एकड़ खेती नमूने के लिए ट्रैक्टर से कर लें वह शायद सम्भव हो, लेकिन व्यापकरूप से यह होना सम्भव नहीं है, क्योंकि जनसंख्या की वृद्धि और तीव्रता से टूटते हुए सामूहिक परिवारों के कारण जमीन के बहुत छोटे-छोटे टुकड़े हो रहे हैं, जिन पर ट्रैक्टर से खेती करना सम्भव नहीं है । सम्भव भी हो तो डीजल पेट्रोल के लिए पर-निर्भरता बढ़ेगी । जिस दिन डीजल और पेट्रोल वाले देश चाहेंगे, आपको गुलाम बना लेंगे या तो फिर आपके लिए यह आवश्यक हो जायेगा कि डीजल और पेट्रोल वाले देशों पर आपका प्रभाव हो ।

बैल एक ऐसी चालक शक्ति है, जिनकी फैक्ट्री खेत के पास खेत में ही बनी हुई है । इस चालक शक्ति की सुरक्षा अत्यन्त आवश्यक है ।

इसलिए भारतीय संविधान के नीति निदेशक सिद्धान्तों में गाय की रक्षा को स्थान दिया गया है ।

उसी पर बल देने हेतु विनोबाजी कहते थे कि भारत के आर्थिक जीवन की बुनियादी कुंजी गोधन को सुप्रीम कोर्ट की रूलिंग के अनुसार बचाओ वर्ना भारत की आर्थिक हालत गिरती चली जायेगी ।

किसी कारखाने के जेनरेटर को ही जला दिया जावे तो वह कारखाना कैसे चलेगा ?

Cow is the main generator for generating decentralised form of Energy (Bullock, power) which is the key power for Bhartiya Economy.

सांस्कृतिक गरिमा

इसलिए हमारी माँग केवल इतनी है कि भारत के आर्थिक जीवन की चालक शक्ति को पैदा करने वाली गाय की रक्षा करो । भारत के अर्थशास्त्री बहुत होशियार थे । उन्होंने उपरोक्त तथ्य को समझा था और इसीलिए गाय की सांस्कृतिक गरिमा का निर्माण किया और उसे मनुष्य परिवार का अंग बनाकर उसे माता का स्थान दिया—यह कोई साम्प्रदायिक भावना नहीं थी । इस देश में राज्य और व्यवस्थाएँ तो बदलती रहीं, लेकिन मुसलमानी काल तक गोरक्षा की यह सांस्कृतिक गरिमा अक्षुण रही ।

अँग्रेज भारत को आर्थिक, सांस्कृतिक और वैचारिक रूप से पूर्णतः पंगु करना चाहते थे इसीलिए उन्होंने हमारे सारे प्रेरणा केन्द्रों को ध्वस्त करने के कार्यक्रम बनाये । आधुनिकता के नाम पर शिक्षा व्यवस्था, कुटीर उद्योग और गोमाता की आर्थिक और सांस्कृतिक मान्यताओं को उन्होंने ही हमारे सहयोग से समाप्त कर दिया । भारत के पढ़े-लिखे विद्वान् कहे जाने वाले अँग्रेजों के मानस पुत्र आज भी उसी व्यवस्था को ज्यों का त्यों चला रहे हैं । यदि हिन्दुस्तान को एक सक्षम और स्वतंत्र-राष्ट्र के रूप में खड़ा होना है तो उसे अपनी अतीत की उपयोगी और गरिमामय धरोहरों की रक्षा करनी होगी और पश्चिम की अन्धी नकल से बचना होगा । ☐

पुरातन अनुभव : वैज्ञानिक चिन्तन

श्री स्वामी प्रदीप दास जी महाराज

एक कहावत सुना करते थे—

कस्तूरी का हिरन ज्यों फिर फिर ढूंढ़े घास ।

गुरूजी ने इसका अर्थ बता दिया था कि कस्तूरिया हिरन की नाभि में कस्तूरी होती है । उसकी खुशबू जब हिरन को आती है तो वह खुशबू के साधन को इधर-उधर घूम-घूम कर घास में ढूंढ़ता है । बात कुछ समझ में नहीं आती थी लेकिन गुरूजी के डर से कुछ कह भी नहीं पाते थे ।

समझ की कमी

दुनिया में ऐसे कस्तूरिया हिरनों की कमी नहीं है । भारत को ही लें तो यहाँ के वैज्ञानिक, योजनाकार, विशेषज्ञ, राजनेता तथा समाज सेवक सभी भारत की समस्याओं का हल खोजने के लिए दुनिया भर में मारे-मारे फिरते हैं । जिन मुल्कों के पास पांच हजार वर्ष से अधिक का अनुभव नहीं है, उनकी नक्ल करके अपनी समस्याओं को हल करने का प्रयास कस्तूरी के हिरन जैसा ही तमाशा है । भारत के पास लाखों साल का अनुभव है । इस अनुभव के साथ यदि आधुनिक विज्ञान को जोड़कर चलें तो हमारी समस्या का अभिनव हल निकल सकता है । हमारे लाखों साल के अनुभवों का लाभ दूसरे देश उठा रहें हैं लेकिन हम स्वयं इधर-उधर भटक रहे हैं ।

लाखों वर्ष के अनुभव के बाद भारत में कुछ ऐसी बुनियादी चीजों की खोज हुई है जहाँ तक पहुँचने में पिछले पांच दस हजार सालों से विकसित हुई सभ्यताओं को थोड़ा समय और लगेगा । भारत की महत्वपूर्ण खोजों के कुछ नमूने इस प्रकार हैं—

• वैवाहिक सम्बन्धों में बँधी परिवार के रूप में एक इकाई, • ग्रामीण-जीवन, • स्वावलम्बी आर्थिक संयोजन, • स्वायत्तता के आधार पर पंचायती-व्यवस्था, • कृषि प्रधान उत्पादन-पद्धति, • भावनात्मक तथा वैचारिक स्वतन्त्रता, • विश्व-वन्धुत्व के रूप में 'अस्मिन् ग्रामे विश्वं पुष्टम् अनातुरम्' का सूत्र, • शाकाहारी भोजन और ऊर्जा का अखण्ड स्रोत गोमाता आदि-आदि ।

यह सही है कि अनुभव से जो खोजें हुईं उनमें विकृति आई, उनके सतत विकास की चेष्टा एक स्थान पर आकर रुक गयी । यह भी सही है कि पिछले चार सौ वर्षों में जो नई शोधें हुईं, उनका भी समावेश हमारे जीवन में नहीं हुआ है । लेकिन इसका अर्थ तो यह नहीं होता है कि हमारे पास जो थाती है, उससे विमुख होकर हम भटकते फिरें ।

भारतीय-दृष्टि

इस देश का पढ़ा-लिखा आधुनिक कहा जाने वाला विद्वान् जब गाय को माता कहने में मुँह बिचकाता है तो हमें उसके अज्ञान पर हंसी आती है । सोचना चाहिए कि पुराने शास्त्रियों ने कितनी सूझ-बूझ और मनोवैज्ञानिक ढँग से ऊर्जा की बुनियादी शक्ति का हर एक परिवार में प्रवेश करा दिया । उसे परिवार के सदस्य का स्थान दे दिया । यह अलग बात है कि अज्ञान के कारण धीरे-धीरे गिरावट आई । गाय माता के रूप में ऊर्जा के स्रोत की खोज ने एक ऐसी जीवन-पद्धति की दिशा बताई है, जिसके द्वारा मानव-जीवन को समग्र और सम्पूर्णता के साथ जिया जा सकता है ।

आज के आधुनिक वैज्ञानिक विकास की दृष्टि लेकर जरा सा भी अपने अन्दर झाकेंगे तो दुनिया के सामने एक नये जीवन का रूप पेश किया जा सकेगा । इस वैज्ञानिक दृष्टि से गाय माता की एक मामूली सी देन, उसके बछड़े और गोबर का अध्ययन किया गया तो पाया कि हम किस कदर अज्ञान के अन्धकार में पड़े हैं । हर भारतीय अनुभव और खोज के प्रति हमारी वैज्ञानिक दृष्टि बनेगी तो हमारे सवाल स्वयं ही हल होते नजर आयेंगे । आज के ऊर्जा संकट में गो-माता हमारी मदद के लिए तैयार खड़ी है । हम ही उसकी तरफ से आँखे मूंद लें तो वह बेचारी क्या करेगी ?

ऊर्जा-स्रोत

सन् १९८२ के सरकारी आंकड़ों के अनुसार गोधन (गाय, बैल, बछड़े, बछिया) की संख्या अठारह करोड़ अठासी लाख थी । इस गोधन से प्रति वर्ष औसत करीब साठ करोड़ टन गोबर मिल सकता है । आंकड़ों के अनुसार ३० प्रतिशत गोबर जलाने के काम में आ जाता है । शेष ४० करोड़ टन को यदि विधिवत् खाद बनाने के काम में लायें तो इसमें कचरा मिट्टी आदि मिलाकर करीबन दो सौ करोड़ टन खाद प्रतिवर्ष बन सकती है । चार टन खाद प्रति एकड़ के हिसाब से एक वर्ष के गोबर की यह खाद पचास करोड़ एकड़ जमीन के लिए पर्याप्त होगी । इस समय भारत में करीब चालीस करोड़ एकड़ भूमि पर खेती होती है । इसका अर्थ यह हुआ कि केवल गोधन के दो तिहाई गोबर से भारतवर्ष की खेती के लिए खाद मिल सकती है । कृत्रिम खाद के कारखानों में जो धन लगाया गया है उसके कुछ अंशों को भी यदि गोबर से खाद बनाने के काम में लगाया जा सके तो पर्याप्त उत्तम खाद मिल सकती है ।

गोबर का दूसरा उपयोग गैस के रूप में संभव है । प्रति वर्ष साठ करोड़ टन गोबर से यदि गोबर-संयत्र द्वारा गैस निकाल ली जाती है तो भी खाद में कोई कमी नहीं आयेगी, ऊपर से ईंधन मुफ्त में मिल जाएगा । एक टन गोबर से १२० घनफुट गैस मिलती है । पन्द्रह घनफुट गैस से एक हार्स पावर का इंजिन एक घंटे तक चलाया जा सकता है । इसका अर्थ यह हुआ कि एक टन गोबर से एक हार्स पावर का इंजन आठ घँटे चलाया जा सकेगा । साठ करोड़ टन गोबर से बीस हार्स पावर के एक लाख इंजिन प्रतिदिन लगातार आठ घंटों के हिसाब से तीन सौ दिन तक चलाए जा सकते हैं । शक्ति का इतना बड़ा खजाना गोधन के केवल गोबर में छिपा है । अभी उसके दूध का हिसाब तो अलग ही है ।

गोबर के अलावा पेशाब भी सर्वोत्तम खाद है । घर के अन्दर छिपी इस शक्ति को इस्तेमाल करने की योजना न बनाकर देश के कर्णधार दुनियाँ के कोने-कोने में जाकर विकास के रास्ते तलाश रहे हैं । (कस्तूरी का हिरन ज्यों फिर फिर ढूंढ़े घास)

कहा जाता है कि भारत की गाय दूध कम देती है । गाय को केवल दूध के मापदण्ड से नापना तो छोटी चीज है । उसका मूल्यांकन तो मुख्यरूप से बैल, गोबर और पेशाब के उपयोग से ही होना चाहिए । भारत की गायों में यह खूबी है कि वे दूध भी देती हैं और शक्ति के रूप में बैल भी । गोबर और दूध के अलावा आठ करोड़ बैलों से चार करोड़ हार्स पावर ऊर्जा तो सतत प्राप्त होती ही रहती है । लेकिन इस तरफ हमारा ध्यान नहीं है ।

सन् १९८२ के ही सरकारी आंकड़ों के हिसाब से भारत में ४० करोड़ एकड़ भूमि पर खेती होती है । खेती करने के लिए चार करोड़ हल, बैलों के द्वारा । छः लाख बीस हजार हल भैंसों द्वारा और एकतीस हजार हल ट्रैक्टरों के द्वारा चलते हैं । इस प्रकार ९० प्रतिशत खेती आठ करोड़ बैलों से, ५ प्रतिशत खेती बारह लाख चालीस हजार भैसों से और ५ प्रतिशत खेती एकतीस हजार ट्रैक्टरों से हो रही है ।

संतुलित जीवन की उपेक्षा

कहा जाता है कि विज्ञान ने अनेक शक्ति स्रोतों का विकास किया है । इनके रहते हुए फिर बैल की शक्ति के ही पीछे पड़े रहना कहाँ की समझदारी है ? यह ठीक है कि विज्ञान नें शक्ति के स्रोतों की खोज की है, उनका भी उपयोग समझ-बूझ कर हो । उनका बहिष्कार करने की बात नहीं है । लेकिन जब तक विज्ञान की उपलब्धियों को सबके पास तक न पहुँचाया जाय, तब तक वर्तमान सुविधाओं को नष्ट तो नहीं करना चाहिए । साथ ही यह भी देखना चाहिए कि जो शक्ति सहज प्राप्त है, उसका भी विकास हो । विज्ञान का विकास टेक्नालॉजी के रूप में हुआ है, वह सबके पास पहुँचा नहीं, लेकिन वर्तमान शक्ति के स्रोतों को नष्ट करना शुरू कर दिया है । बैल के विकल्प के रूप में विज्ञान का विकास तो अभी इतना ही हुआ कि भारत में केवल ५ प्रतिशत खेती ट्रैक्टरों से होती है, जबकि ३० प्रतिशत बैल काटकर डीजल की भेंट कर दिये जाते हैं । दूध की एक बूंद भी विज्ञान ने नहीं बढ़ाई लेकिन अमृत समान दूध देने वाली गायें काट डालीं । विज्ञान के विकास का अर्थ यह तो नहीं होना चाहिए कि जीवन का संतुलन ही नष्ट कर दिया जाय ।

विज्ञान के विकास के चक्कर में सन् १९७३ से भारत के गोधन पर एक भारी संकट आया है । विदेशी मुद्रा कमाकर डीजल, पेट्रोल खरीदने के लिए भारत सरकार ने भारी मात्रा में गोमांस का निर्यात बढ़ाना शुरू कर दिया । आंकड़े अपनी कहानियाँ स्वयं बोल रहे हैं—

१९७३-७४ में	२००० टन गोमांस का निर्यात हुआ ।		
१९७५-७६ में	५३७५	,,	,,
१९७६-७७ में	११४४०	,,	,,
१९७७-७८ में	२६४००	,,	,,
१९७८-७९ में	८००००	,,	,,

निर्यात का यह सरकारी आंकड़ा दिनोदिन बढ़ता जा रहा है । इस आंकड़े के अलावा चोरी छिपे इससे भी कई गुना मांस का निर्यात होता है । राजस्थान की सीमा से जीवित गाय, बैल भी मांस के लिए पाकिस्तान के मारफत अरब देशों को निर्यात किये जाते हैं ।

सन् १६८२ के सरकारी आंकड़ों के हिसाब से १६६१ से १६८२ तक गोधन की संख्या करीब-करीब एक जैसी ही रही, जितने पशु नये पैदा हुए, करीब उतने ही मर गये । उसके अनुसार गोधन की संख्या नीचे लिखे अनुसार रही है—

दूध न देने वाली बछिया	५३१८१०००
दूध देने वाली गाय	४५५८७०००
बैल व बछड़े	६००३२०००
	१८८८०००००

सन् १६८६ की पशुगणना को देखने से पता चला कि इन आंकड़ों में भारी कमी आई है । आंकड़े निम्नानुसार हैं—

सन्	दूध न देने वाली बछिया	दूध देने वाली गाय	बैल व बछड़े
१६८२	५३१८१०००	४५५८७०००	६००३२०००
१६८६	४२६४७०००	३०३८७०००	७७५२४०००
गोधन की कमी	१०५३४०००	१५२०००००	२२५०८०००

इस तरह से ४८२४२००० चार करोड़ बयासी लाख, बयालीस हजार गोधन कम हो गया । यह कुल गोधन का २६.६८ प्रतिशत होता है । एक तरफ तो भारत में दूध की आवश्यकता बढ़ रही है, दूसरी तरफ दूध देने वाला गोधन कतल किया जा रहा है । एक तरफ ऊर्जा के रूप में डीजल और पेट्रोल की तंगी बढ़ रही है, दूसरी तरफ बैलों को कतल करके शक्ति संकट उपस्थित किया जा रहा है ।

२८ जुलाई १६८० के हिन्दुस्तान टाइम्स में पी०टी०आई० की सूचना के अनुसार भी दूध न देने वाली बछियों की संख्या २५.७७ प्रतिशत घटी है । दूध देने वाली गायों की संख्या १६.६१ प्रतिशत घटी है । इस सारी स्थिति को देखकर गोधन के कतल को रोकना आवश्यक हो गया है । भारत में सबसे अधिक कतल बम्बई स्थित देवनार कतलखाने में होता है । वहाँ हो रही गोधन की बरबादी के आंकड़े—

१६७३-७४ में देवनार कतलखाने में ६६७८६ बैल काटे गये ।
१६७४-७५ में " " ७५५३८ "
१६७५-७६ में " " ८६८१६ "
१६७५-७७ में " " ६११६० "
१६७७-७८ में " " १०७२४० "
१६७६-८० में " " ११६२४८ "
१६८०-८१ में " " १२१६५६ "

यह तो एक कतलखाने के आंकड़े हैं । इसके अलावा भी बैलों का वध जोरों से हो रहा है । छः वर्ष में बैल काटने की कानूनी ढंग से सरकारी संख्या ही करीब दुगुनी हो गयी है । गैर कानूनी ढंग से जो कतल होती है, उसका कुछ हिसाब ही नहीं है । इसी प्रकार कलकत्ता के कतलखाने में गायों का कतल होता है । कलकत्ता के एक कतलखाने के आंकड़े—

१९७५-७६ में	एक कतलखाने में		५५५५०	गायें कटी
१९७६-७७ में	"	"	७१९८८	गायें, बैल कटे
१९७७-७८ में	"	"	८२८५०	"

इसके अलावा कलकत्ता में करीब एक सौ अधिकृत तथा अनधिकृत कतलखाने और भी हैं, जिनमें हजारों गायें रोज काटी जाती हैं । ये गायें कलकत्ता दूध के लिए लायी जाती हैं लेकिन छः सात महीने दूध देने के बाद जब सूख जाती हैं तो अच्छे मूल्य पर कतलखाने में काटने को बेच दी जाती हैं । कलकत्ता में गाय, बैल काटने का आंकड़ा करीब पचास लाख तक वार्षिक पहुँच जाता है । केरल के मुख्य-मन्त्री ने १० मई १९८९ को एक पत्र में लिखा था कि हर वर्ष केरल में केवल चौदह लाख गाय बैल काटे जाते हैं ।

संकट निवारण का उपाय

एक तरफ तो देश में भारी ऊर्जा संकट है, दूध की कमी है और दूसरी तरफ तेजी से गाय, बैल काट कर मांस निर्यात किया जा रहा है । भारत संकट में है । इस संकट से बचने का उपाय है गोवंश का संरक्षण । पुरातन अनुभव और वैज्ञानिक-चिन्तन हमको मजबूर कर रहा है कि गोधन की कतल को बन्द करने की आवाज बुलन्द करें तथा ऊर्जा के स्वावलम्बी स्रोत का पूरा संरक्षण एवं विकास करें । ▢

दूध से उपचार

- ☆ *मन्द बुद्धि वाले बच्चों को गाय के दूध में दो-तीन बादाम रोज घिसकर उबालकर पिलायें, एक महीने के नियमित प्रयोग से अवश्य लाभ होगा ।*
- ☆ *कान में दर्द हो, तो गाय के दूध में गन्ने का सिरका मिलाकर कान में डालें, दर्द गायब हो जायेगा ।*
- ☆ *मोटापे से बचने के लिए गाय का दूध शहद में मिलाकर पियें ।*
- ☆ *पेट में गैस की शिकायत हो तो शहद और सोंठ गोदुग्ध में मिलाकर लेने से छुटकारा मिल जाता है ।*
- ☆ *भाँग का नशा अधिक चढ़ गया हो तो गाय के दूध में गाय का घी मिला कर पिला दें । थोड़ी देर में नशा उतर जायेगा ।*
- ☆ *हाथ पैर या होंठ फटने पर दूध की मलाई को क्रीम की तरह लगाइए, सब ठीक हो जायेंगे ।*

सिक्ख समुदाय की याचिका

जत्थेदार राम सिंह अकाली, वरिष्ठ उपाध्यक्ष, श्री तख्त हरिमंदिर जी साहिब, पटना साहिब, पटना, बिहार एवं अन्य व्यक्तियों की विनम्र याचिका यह दर्शाती है कि—

१. गोवंश के प्रति श्रद्धाभक्ति, सम्मान, धार्मिक भावना एवं आस्था देश के करोड़ों सिक्खों के हृदय में प्रारम्भ से चली आ रही है । भारतीय संविधान में किसी भी व्यक्ति की धार्मिक भावना की अवहेलना या निरादर की स्वीकृति नहीं दी गयी है, फिर भी गोवंश की हत्या हो रही है और करोड़ों सिक्खों की धार्मिक भावना एवं आस्था को चोट पहुँचायी जा रही है ।

२. गोवंश की हत्या से भारतीय संविधान के भाग-३ की धारा २५ में भारतीय नागरिकों को दिए गए धार्मिक स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार का हनन होता है, क्योंकि गोवंश ही हत्या से देश के करोड़ों सिक्खों की धार्मिक भावना एवं आस्था को बुरी तरह से आघात पहुँच रहा है । हम सिक्खों को अपना धर्म मानने और उसके अनुरूप आचरण करने में बहुत बड़ी बाधा हो रही है ।

३. भारत के कोटि-कोटि सिक्खों, नामधारी सिक्खों तथा सम्पूर्ण हिन्दुओं के निजी विश्वास, श्रद्धाभक्ति, धर्म, संस्कृति, धार्मिक भावना एवं आस्था की रक्षा एवं सम्मान के लिए सम्पूर्ण गोवंश की हत्याबन्दी का विषय किसी भी प्रकार का समझौता, आर्थिक नाप-जोख और हर प्रकार के विवाद से परे है ।

४. देश की बहुत सी राज्य सरकारों ने गोवंश की हत्या के लिए लिंग एवं उम्र भेद के आधार पर भिन्न-भिन्न तरह के कानून बनाये हैं, जब कि किसी भी सरकार को गोवंश की हत्या के लिए कानून बनाने का अधिकार नहीं है चूँकि गोवंश की हत्या से सिक्खों और हिन्दुओं की धार्मिक-स्वतंत्रता के मौलिक अधिकारों का हनन हो रहा है । भारत में किसी भी सरकार को कोई भी ऐसा कानून बनाने का अधिकार नहीं है, जिससे किसी नागरिक के किसी मौलिक अधिकार का हनन होता हो । भारतीय संविधान भाग-३, अनुच्छेद-१३, खण्ड-२ में दिये गये आदेश का खुल्लम-खुल्ला उल्लंघन देश की राज्य सरकारें कर रही हैं । हमारी धार्मिक-स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार का जबरन हनन कर हमें गुलामी का जीवन जीने के लिए विवश कर दिया गया है ।

५. अंग्रेजों की गुलामी से छुटकारा मिलने के बाद जब हम आज़ाद हुए, तो ऐसा महसूस हुआ था कि अब हमें अपना धर्म मानने और तदनुसार आचरण करने में कोई बाधा नहीं होगी । सम्पूर्ण गोवंश की हत्या बन्द हो जाएगी । लेकिन दुर्भाग्य से आज तक ऐसा नहीं हुआ ।

गोवंश की हत्या हमारे धर्म एवं संस्कृति के विरुद्ध है । गोवंश ही हत्या देखना, गोवंश की हत्या सहन करना, गोवंश की हत्या करनेवालों के साथ दोस्ती करना और जहाँ तक

अपना वश चले, गोवंश की हत्या करनेवालों के साथ रहना, उठना-बैठना, जाना-आना, खाना-पीना, बात करना—सब हमारे धर्म के विरुद्ध है । गोवंश की हत्या करने एवं कराने वाले और गोमांस खाने वाले हमारे जानी दुश्मन हैं । यह हमारे अन्तःकरण की बात है । पूरे देश में जब तक सम्पूर्ण गोवंश की हत्या बन्द नहीं होगी, तब तक सिक्खों समेत हिन्दुओं और मुसलमानों एवं ईसाइयों के साथ आपसी प्रेम एवं भाईचारा की आशा करना महान् मूर्खता है ।

६. कट्टरपंथी मुस्लिम शासकों ने जल्लाद और क्रूर कसाई बनकर हमारे गुरुओं और सिक्खों को इतनी शारीरिक यातनाएँ दीं कि उनका स्मरण कर हमारे हृदय काँप जाते हैं और खून खौल जाता है । अनुदार कट्टरपंथी मुसलमानों द्वारा सिक्खों और सनातनी हिन्दुओं पर नाना प्रकार के जुल्म ढाहे जा रहे थे, और उन्हें सताया जा रहा था । सिक्खों और सनातनी हिन्दुओं के दिल को दुखाने के लिए गोवंश की हत्या की जाती थी । यह दुर्भाग्य एवं महान् दुःख की बात है, कि स्वतंत्र भारत में अपनी सरकार होते हुए भी गोवंश की हत्या द्वारा आज भी हम सिक्खों और सनातनी हिन्दुओं के दिल को असहनीय दुःख दिया जा रहा है ।

७. गो, गरीब तथा अपने धर्म एवं संस्कृति की रक्षा के लिए सद्गुरु श्री गुरु अर्जुन देव जी महाराज तपते हुए तावे पर बैठाये गये और उनके सिर पर गर्म बालू डाला गया । भाई मती दासज़ी को, आरा से चीर कर दो भाग कर दिये गये। भाई दयाल जी डेग खौलते हुए गरम पानी में डाले गये । भाई सतीदास जी के शरीर को प्रत्येक जोड़ पर काटा गया । सद्गुरु श्री तेग बहादुर जी महाराज का सिर धड़ से अलग कर दिया गया । सद्गुरु श्री गुरु गोविन्द सिंह जी महाराज के दो पुत्र धर्म-युद्ध में शहीद हुए और दो पुत्रों को औरंगजेब ने दिवाल में जिन्दा चुनवा दिया । यह त्याग और बलिदान उस धर्म और संस्कृति की रक्षा के लिए हुआ, जिस धर्म एवं संस्कृति का प्राण गोरक्षा एवं गोभक्ति है ।

८. सद्गुरु श्री राम सिंह जी के नेतृत्व में नामधारी सिक्खों का त्याग और बलिदान गोवंश हत्या बन्दी हेतु ही हुआ था, जो जग जाहिर है । महाराजा रणजीत सिंह के (सिख राज) समय गो-हत्यारे को प्राण दण्ड दिया जाता था । पहले तो अंग्रेजों ने भी इस कानून को लागू रखा, परन्तु हिन्दू-मुस्लिम लड़ाई करवाने के अपने स्वार्थ के लिए बाद में उन्होंने गोवध की आज्ञा दे दी । अमृतसर सरोवर के निकट ही बूचड़खाना बनाया गया । नामधारी सिक्खों ने कसाइयों को मारा और गौओं को मुक्त किया । चार नामधारी सिक्खों को प्राण-दण्ड तथा दो को काला पानी (अण्डमान) भेजा गया । इसी प्रकार लुधियाना जिला तथा मालेरकोटला आदि स्थानों पर नामधारी सिक्खों ने गोहत्या करने वाले बूचड़ों और अंग्रेजों को मारा और बूचड़खानों को बन्द किया । बहुत से नामधारी सिक्खों को तोपों से उड़ा दिया गया । सद्गुरु श्रीराम सिंह जी को देश निकाला दिया गया । इस प्रमाण से भी जाहिर है कि गोवंश की हत्या हमारे सिक्ख धर्म के विरुद्ध है ।

९. हिन्दू समाज में ऊँच-नीच का भेदभाव मिटाते हुए जुल्मी विधर्मियों से अपने धर्म, संस्कृति एवं गोवंश की रक्षा के लिए सद्गुरु श्री गुरु गोविन्द सिंह जी महाराज ने एक स्थायी सेना तैयार करने के उद्देश्य से १६९९ में खालसा पंथ (पवित्र पंथ) सजाया और पंच-ककार के साथ सिक्ख धर्म की स्थापना की ।

१०. भारतीय संविधान ने हम सिक्खों को कृपाण आदि शस्त्र धारण करने की स्वीकृति तो दी है, लेकिन गोवंश की हत्या के कारण हमारा शस्त्र धारण निष्फल हो गया है, चूँकि कृपाण आदि शस्त्र धारण के उद्देश्य की पूर्ति नहीं हुई । हमारा धर्म गोहत्या करने-कराने वालों पर कृपाण आदि शस्त्र प्रहार का आदेश देता है । अपने धर्म, संस्कृति और गोवंश की रक्षा के लिए ही सद्गुरु श्री गुरु गोविन्द सिंह जी महाराज ने हम सिक्खों को कृपाण आदि पंच-ककार धारण कराया था और अमृत छकने का विधान बनाया था ।

११. इस प्रकार हर व्यक्ति को सरलता पूर्वक जानकारी है कि गोवंश की हत्या हमारे सिक्ख धर्म के विरुद्ध है और इससे हमें अपने धर्म पालन में भारी बाधा हो रही है । गोवंश की हत्या सहन करना सिक्ख धर्म के विरुद्ध है जिसका प्रमाण दशम पातशाह सद्गुरु श्री गुरु गोविन्द सिंह जी महाराज की निम्नलिखित वाणी है जो हमें गोवंश की हत्या बन्दी हेतु मर-मिटने के लिए प्रेरित कर रही है—

'गुरु गोविन्द सिंह जी की वाणी'
भगवती-स्तुति (छक्के देवी से)

राग आशा छत्रताल

यही देही आज्ञा तुरक गहि खपाउँ ।
गउ-घात का दोख जग सिऊँ मिटाऊँ ।।
यही आस पूरण करहु तुम हमारी ।
मिटे कष्ट गउअन छुटे खेद भारी ।।
यही बीनती खास हमारी सुनीजे ।
असुर मारकर रच्छ गउअन करीजे ।।
यही देहि वर मोहि सतगुरु धियाऊँ ।
असुर जीत कर धर्म नउबत बजाऊँ ।।

१२. यह ध्यान देने योग्य बात है कि सिक्ख धर्म इस्लाम और मुसलमानों के विरुद्ध नहीं, है, बल्कि सिक्ख धर्म सभी धर्मों के प्रति आदर भाव रखता है, लेकिन हमारे धर्म पर जो अत्याचार और जुल्म हुए हैं और हो रहे हैं, हम उसी के विरोधी हैं । गोहत्या नहीं करने वाले तथा गोमांस नहीं खाने वाले मुसलमानों के प्रति हमारे हृदय में आदरभाव होने का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि श्री अमृतसर के गुरुद्वारा स्वर्ण मन्दिर की नींव सांई मियाँ मीर नामक एक महान् फकीर से रखवायी गयी थी ।

१३. देशवासियों की धार्मिक भावना एवं आस्था की रक्षा करना अर्थात् भारतीय नागरिकों के धार्मिक स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार की रक्षा एवं सम्मान करना केन्द्रीय सरकार का परम कर्त्तव्य है । इसीलिए गोवंश की हत्या बन्दी का विषय केन्द्रीय सरकार का विषय बनता है । केन्द्रीय सरकार अविलम्ब पूरे देश में सम्पूर्ण गोवंश की हत्या पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगाने के लिए एक सार्वदेशिक सशक्त केंन्द्रीय कानून बनावे और इस कार्य में एक क्षण का भी विलम्ब नहीं करे ।

तदनुसार याचिका दाता प्रार्थना करते हैं कि केन्द्रीय कानून बनाकर पूरे देश में सम्पूर्ण गोवंश की हत्या पर अविलम्ब पूर्ण प्रतिबंध लगाया जाय ।

तदनुसार याचिका दाता आपको करबद्ध होकर सदा प्रार्थना करेंगे ।

क्रम सं०	याचिका दाता के नाम-पता	हस्ताक्षर
१.	जत्थेदार राम सिंह अकाली वरीय उपाध्यक्ष, प्रबन्धक समिति, श्री तख्त हरमंदिर जी साहिब पटना साहिब, पटना, बिहार	
२.	सरदार जुगेश्वर सिंह, शाहगंज, पटना - ६	
३.	सरदार गुरमीत सिंह, मदरसा गली, पटना सिटी	
४.	गुरदेव सिंह विद्रोही, लोदीकटरा, पटना सिटी, पटना - ८	
५.	सरदार राम सिंह उर्फ माथुर सिंह, रानीपुर खिड़की, पटना - ८	

रामदेव राम, संसद सदस्य (लोक सभा)
विभाजन संख्या - ४८६
द्वारा प्रतिहस्ताक्षरित

सन्तों का दायित्व

श्री स्वामी महेशानन्द सरस्वती जी महाराज

सन्तों के द्वारा सदैव राष्ट्र एवं भारतीय संस्कृति की रक्षा हुई है । सन्त राष्ट्र की परोक्ष अपरोक्ष अमूल्य निधि हैं, जिसका वर्णन उपनिषद्, पुराण, रामायण, महाभारत आदि ग्रन्थों में पाया जाता है । सन्तों के गुणगान में रामचरित मानस में क़हा है—

भरत विनय सादर सुनिय, करिय विचारि बहोरि ।
करब साधु मत, लोकमत नृपनय निगम निचोरि ।।
जड़ चेतन गुन दोषमय, विश्व कीन्ह करतार ।
संत हंस गुनगन गहैं, पय परिहरि वारि विकार ।।

यहाँ मैं थोड़े में यह कहूँगा कि यद्यपि सन्तों के अनेक अर्थ होते हैं तो भी सन्त का सर्वमान्य अर्थ है—'साधु' (खासकर सरल सात्विक साधु) फिर और भी विचार कर देखें तो केवल विरक्त और त्यागी साधु ही नहीं; गृहस्थ और कर्मयोगी महात्मा भी सन्त कहे जाते हैं । हमें यदि सन्तों के गुण और लक्षण जानना है तो बाल की खाल निकालने से काम नहीं चलेगा, हमें उनका गुणगान करना चाहिए । उत्तम सन्तों का उदाहरण लेकर उनपर विचार करना चाहिए । यों तो संसार में सभी जगह सन्त हैं, परन्तु भारत तो सन्तों और महात्माओं की खान ही है ।

सेवा सभी सन्तों की करनी चाहिए । सत्संग भी सभी सन्तों का करना चाहिए । संसार में सन्तों का स्थान सबसे ऊँचा है । देवता और मनुष्य, राजा और प्रजा, गरीब और अमीर— सभी सन्तों को अपने से बढ़कर मानते हैं । सन्त का जीवन ही सार्थक जीवन होता है । अतएव सभी लोगों को सन्त-भाव की प्राप्ति के लिए भगवान् की शरण लेनी चाहिए ।

जिसका जीवन कमल के पत्ते पर पड़े हुए जल के समान तरल और अत्यंत चंचल है, उस जीव की जीवन वीणा शीघ्र ही शान्त हो जायेगी । स्त्री-पुरुष, यश-वैभव, धन-सम्पति आदि सभी सुख देखते ही देखते पानी के बुलबुले की तरह विलीन हो जायेंगे । इस अनित्य संसार में आकर, अनित्य जीवन धारण कर, अनित्य सुख-ऐश्वर्य में डूबकर आत्म कल्याण को नहीं भूलना चाहिये । दुष्कर संसार-सागर से शीघ्र पार उतरने का सहज और सरल उपाय एक मात्र सत्संग है । सत्संग ही भव-सागर से पार ले जाने वाला दृढ़ जहाज है । साधु-संग को छोड़ कर अन्यत्र शान्ति कहाँ है ? संसार रूपी भीषण बन में भटकते हुए थके-माँदे और प्यासे जीव के लिए संत-जीवन ही जलाशय स्वरूप हैं । उस जलाशय में डुबकी लगाते ही क्लान्त जीव के तपते हुए प्राण और मन शीतल हो जाते हैं । अतएव इस भयंकर संतापों में सन्त पुरुष ही हारे-थके तथा त्रिताप से जलते हुए जीव को विश्राम और शान्ति देने में समर्थ हैं । जैसे सन्त की अपार महिमा है, वैसे सत्संग की महिमा भी असीम है । सन्तों की शक्ति ऐसी अमोघ है कि उनके सत्संग मात्र से मूढ़ व्यक्ति भी ज्ञानवान् हो जाता है ।

सन्तों का भी कुछ दायित्व होता है । आज के इस वर्तमान परिप्रेक्ष्य में जहाँ प्रत्येक व्यक्ति अपनी संस्कृति और अपने आदर्श को छोड़कर स्वार्थ सिद्धि में लगा हुआ है । राजनेता भी इसी उधेड़-बुन के साथ अपनी कुर्सी को बचाने हेतु तुष्टिकरण की नीति अपनाते हुए, जाति-जाति में, धर्म-धर्म में एक दूसरे को लड़ाने की नीति अपनाये हुए हैं, जिससे राष्ट्र का अहित हुआ है और हो रहा है । यदि इस ओर संतों ने ध्यान न दिया तो देश, हिन्दू जाति, किस गर्त में जाकर मिलेगी, यह कह पाना शक्य नहीं है । इसलिए प्रत्येक सन्त का यह परम दायित्व है कि देश एवं हिन्दु जाति को ऐसी दिशा दें, जिससे राष्ट्र का उत्थान हो, संस्कृति का उत्थान हो, मानव-मानव में सद्‌भाव और प्रेम हो । यदि यही क्रम रहा तो महन्त-मण्डलेश्वर, आश्रमधारी जो मात्र अपने परिसर की ही रक्षा करने में तत्पर हैं, आगे आने वाली पीढ़ी उन्हें धिक्कारेगी देश-हित में आगे न बढ़ने के लिए । राष्ट्र, हिन्दू-जाति, संस्कृति के सुरक्षित रहने पर ही, आश्रम, मठ, मन्दिर आदि की रक्षा हो सकती है । आज देश में जो कुछ हुआ या हो रहा है, वह किसी भी बुद्धिजीवी से छिपा नहीं है । पूरा राष्ट्र सन्तों की ओर दृष्टि लगाए हुए है कि इनके द्वारा हमें सन्मार्ग मिले । इस कार्य में सन्तों के माध्यम से हिन्दू जाति में कुछ जागृति आई भी है, लेकिन जितनी जागृति होनी चाहिए, वह नहीं है । इसके लिए अब सन्तों को साधना, जप-भजन आदि के साथ-साथ वन-वासियों में, पिछड़े लोगों में जाकर अलख जगानी होगी । सभी को अपने मतभेदों को भुलाकर मान-सम्मान की अनदेखी करके आगे बढ़ना होगा । हिन्दू-राष्ट्र का सपना साकार करने का यही मार्ग है ।

भारतीय शास्त्र, पुराण, इतिहास इस बात के साक्षी हैं जब जब देश पर आपदायें आई हैं, सन्तों ने ही देश की बागडोर संभाली है और वही मार्गदर्शक हुए हैं । इस विषम परिस्थिति में पुनः सन्तों पर बहुत बड़ा दायित्व आ गया है । बिना सन्तों के मार्ग-दर्शन के यह कार्य संभव नहीं है । साथ ही साथ राजनीतिज्ञों की कलुषित भावनाओं से भी हमें सदैव सतर्क रहना होगा । तभी हमें इस कार्य में सफलता मिलेगी ।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत् ।
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

❑

हिन्दुस्तान टाइम्स, नई दिल्ली, २२ फरवरी, १९९१ : जर्मनी की (Institute of Social Medicine and Epidemiology) द्वारा वर्ष १९८५ में प्रारम्भ किये गये सर्वेक्षण की अब तक की रिपोर्ट के अनुसार शाकाहारियों के रक्त में यूरिक एसिड की मात्रा कम रहती है उनके गुर्दे बेहतर कार्य करते हैं व उनमें सामान्य रक्तचाप व आदर्श कोलेस्टेरोल सीमा वालों का प्रतिशत मांसाहारियों की अपेक्षा बहुत अधिक है। शाकाहारियों का भोजन उन्हें अधिक स्वस्थ व निरोग रखता है ।

हिन्द-दर्शन

हिन्द एक ही है, उसके भाग नहीं हैं ।

हिन्द करोड़ों हिन्दियों की प्यारी माता है ।

हिन्द को इस दुनियाँ में महान् कार्य करना है ।

हिन्द की रक्षा दुनियाँ का सबसे बड़ा पर्वत करता है और वह अजित है ।

हिन्द सन्त-साधु-त्यागी और वीर पुरुषों से भरा है ।

हिन्द जिस समुद्र की गोद में सोया हुआ है, उसकी शक्ति आरोग्यप्रद है ।

हिन्द प्रकृति मां का बगीचा है, उसमें सुन्दर, रम्य झरनें, पवित्र नदियाँ तथा महान् तपस्वी पुरुषों द्वारा पवित्र किए हुए वन-उपवन हैं ।

हिन्द की रज मेरे लिए पवित्र कण है ।

हिन्द में हो गए अनेक वीर और पवित्र पुरुषों का खून मेरी नसों में बहता है ।

हिन्द में जन्में हुए ऐसे महापुरुषों की हड्डियों से ही मेरी हड्डियाँ बनी हुई हैं ।

हिन्द के भूतकाल में हुए और भविष्य में होनेवाले हिन्दियों के बीच हमेशा का सम्बन्ध है और उनका सम्बन्ध मेरे साथ है ।

हिन्द की सब कौम और सब धर्म के पुत्र मेरे भाई हैं ।

हिन्द ज़ैसा दूसरा कुछ भी इस दुनियाँ में मुझे प्यारा नहीं है ।

हिन्द का असल जमाना सतयुगी था और वैसा फिर होगा ।

हिन्द के स्त्री-पुरुष नीतिमान, शूरवीर और स्वदेशाभिमानी हैं ।

हिन्द की नारी नम्र, पवित्र और परोपकारी है ।

हिन्द के लिए हरेक़ नर-नारी को अपनी जान एवं माल अर्पण करने चाहिये ।

हिन्द के हरेक पुत्र के लिए एक ही देश, एक ही प्रेम, एक ही हेतु एवं एक ही कार्य है ।

हिन्दी भाइयों की सेवा यही मेरी जिन्दगी का ध्येय है और यही मेरा आधार है ।

इसलिए हे माता ! मुझे तेरी सेवा करने में (तू) सहायक हो । ☐

मो० क० गांधी

जय जगन्नाथ

श्री स्वामी मुक्तानन्द सरस्वती जी महाराज

दो शक्तियाँ

मनुष्य अपने सुख तथा समाधान के लिए जिन दो शक्तियों का सहारा लेता है । वे हैं १. धर्म की शक्ति, २. राज्य की शक्ति ।

सारे संसार में इन दोनों शक्तियों का अपने ढंग से विकास हुआ । प्रश्न उठता है कि धर्म क्या है ? संक्षेप में धर्म, जीवन जीने की वह कला है, जिससे मनुष्य, प्रकृति तथा समाज के बीच सहज सन्तुलन बना रहे । धर्म की शक्ति श्रद्धा और विश्वास है ।

धर्म के आधार पर जीने की कला को दो विभागों में बांटा गया है । एक है सन्तुलन के शाश्वत आधार वाले अहिंसा व्रत और दूसरा देश, काल, पात्र के अनुसार समय-समय पर धर्म गुरुओं का मार्गदर्शन ।

पहले विभाग में आम तौर पर पाँच यम हैं, पहला है परस्पर शान्ति, अमन व प्रेम का व्यवहार, दूसरा है, व्यक्ति, प्रकृति और समाज के प्रति संयमित जीवन, तीसरा है पारस्परिक सत्याचरण, चौथा पारस्परिक जीवन में बुद्धि, श्रम, तथा प्रकृति की शक्तियों की चोरी न करना, पांचवा है आवश्यक अथवा अनावश्यक वस्तुओं का संग्रह कर समाज में अभाव पैदा न करना ।

दूसरे विभाग में आमतौर पर पांच नियम हैं, जो देश, काल, पात्र के अनुसार बदलते रहते हैं । पहला है—व्यक्तिगत एवं सामाजिक दिनचर्या में स्वच्छता, दूसरा है नित्य उपभोग सामग्री का प्रमाण, तीसरा है—व्यक्तिगत जीवन में गुण वर्धन का अभ्यास, चौथा है—गुण व ज्ञान वर्धन के लिए सत्संग एवं स्वाध्याय, पांचवाँ है—श्रद्धा और विश्वास की शक्ति के विकास हेतु ईश्वर का स्वरूप व धारणा ।

शाश्वत तथा परिवर्तनशील नियमों के लिए समय-समय पर धर्म-गुरुओं ने देश-काल-पात्र के अनुसार मार्गदर्शन किया । उससे धर्म के शाश्वत सिद्धान्त तथा कर्मकांड के विधि-निषेध बने । दुनियाँ के अनेक भागों में धर्म-गुरुओं ने कर्मकांड के आधार पर अनेक गुरु-पंथ स्थापित किये हैं । विज्ञान के विकास के कारण जैसे-जैसे आवागमन के साधन बढ़ते गये, विभिन्न कर्मकांडों पर आस्था रखने वाले व्यक्तियों का आपस में मिलन हुआ । इस मिलन ने एक तरफ तो एक-दूसरे के कर्मकांडों को प्रभावित किया तथा दूसरी तरफ कर्मकांडों के आधार पर पांथिक (साम्प्रदायिक) दायरों को बढ़ने का अवसर प्रदान किया ।

ये पांथिक (साम्प्रदायिक) दायरे मनुष्य को भावात्मक क्षेत्र में प्रेरणा देते रहे । शाश्वत

जीवन-मूल्यों के कर्मकांडों का प्रसार-प्रचार भी होता रहा । पूर्व काल में राज्य-तन्त्र का इस प्रकार के प्रचार-प्रसार से कोई सम्बन्ध नहीं था । क्योंकि राज्य-शक्ति का कार्य मुख्य रूप से स्थूल जगत में नीति सन्तुलन बनाये रखने का था । इस नियमन के लिए उसको दंड-शक्ति से आभूषित किया गया था । दंड-शक्ति का विकास दुष्ट-शक्ति के दमन तथा सज्जन-शक्ति के रक्षण के लिए किया गया था । परन्तु यह तो आवश्यक नहीं है कि दंड-शक्ति हमेशा सज्जनों के ही नियन्त्रण में रहेगी । क्योंकि दंड-शक्ति में अपना तो कोई विवेक होता नहीं, वह जिसके हाथ में रहती है, उसके पक्ष में काम करती है । इसलिए कभी-कभी राज्य-तन्त्र की दंड-शक्ति से सज्जनों का दमन तथा दुष्टता का प्रचार-प्रसार होने लगता है । समाज में जब ऐसी स्थिति पैदा होती है तो राज्य-तन्त्र अर्थात् दंड-शक्ति के नियमन के लिए धर्म-तन्त्र को क्रियाशील होना पड़ता है । क्योंकि राज्य-तन्त्र जब दंड और कानून की शक्ति का उपयोग अधर्म के पक्ष में करने लगता है तो धर्म की शक्तियाँ अधर्म का नाश करने के लिए राज्य-तन्त्र को चेतावनी देती हैं । राज्य-दंड यदि निरंकुश होकर धर्म-तन्त्र को पथ-भ्रष्ट करके उसको निर्मूल करने पर ही उतर आये तो फिर धर्म की शक्तियों को अधर्म के खिलाफ धर्म-युद्ध की घोषणा करनी पड़ती है ।

राज्यतंत्र का षड्यन्त्र

वर्तमान समय में राज्य-तन्त्र की कानून और दंड की शक्ति ने बहुत ही युक्ति पूर्वक धार्मिक क्षेत्र में अनीति और भ्रष्टाचार का प्रवेश करा दिया है । धर्म-प्राण लोगों पर असामाजिक तत्त्व हावी हो गये हैं । इस प्रकार सच्चे धार्मिक-पुरुषों को शक्तिहीन बनाने का राज्य-तन्त्र षड्यन्त्र कर रहा है । साथ ही वर्तमान राज्य-तन्त्र धार्मिक-शक्ति के पक्षधर अनेक गुरुपंथों को आपस में लड़ाने का सुनियोजित प्रयास कर रहा है । इस षड्यन्त्र के तहत राज्य-तन्त्र मध्यस्थ -बन कर उनका न्याय करने का ढोंग करेगा । इस प्रक्रिया से हरेक गुरु-पंथ तेज हीन होकर, धर्म का साथ छोड़कर अपने-अपने दायरे का संरक्षण करने के लिए राज्य-तन्त्र के साथ मिलकर अनीति और अधर्म को पोषण देने लगेगा ।

भारत में उपरोक्त स्थिति का नंगा रूप प्रकट हो रहा है । गत पांच सौ वर्षों से राज्य-तन्त्र की धर्म-विरोधी गतिविधियों के कारण भारत में अनेक पांथिक-संगठन असमाजिक तत्त्वों के हाथ की कठपुतली बन गये हैं । इस स्थिति का लाभ उठाकर राज्य-तन्त्र बड़ी तीव्रता से सभी प्रमुख धार्मिक स्थानों को अपने नियन्त्रण में लेकर उनकी पवित्रता नष्ट कर रहा है । ऐसी स्थिति में असहाय जन साधारण अधर्म की चपेट में आकर असुरक्षा, अभाव और अज्ञान के अन्धकार में जीवन जीने के लिए मजबूर हैं । जन साधारण बड़े कष्ट और आंतरिक वेदना से कराह उठता है और कहता है—भगवान् के यहाँ देर तो है पर अन्धेर नहीं । इस कराह से उसे आशा बँधती है कि कहीं न कहीं कोई धार्मिक-शक्ति प्रकट होगी और वह इस बढ़ती हुई अनीति और अधर्म का नाश करके धर्म की पुनर्स्थापना करेगी ।

धर्म की यह शक्ति कहाँ से प्रकट हो, इस तलाश में मैंने भारत के अनेक धर्म स्थानों तथा गुरु-पंथों के संचालकों के दर्शन किये हैं । जब जगन्नाथपुरी पहुँचा तथा आर्द्रभाव से दर्शन करने गया तो अन्दर से आवाज आई—कलिकाल में अधर्म के नाश तथा पुनः धर्मस्थापना की शक्ति का उदय भगवान् जगन्नाथ के उत्कल प्रदेश से होगा ।

यह आवाज सुनकर मैं चक्कर में पड़ गया । सोचने लगा कि जिस जगन्नाथ मन्दिर पर राज्य-तन्त्र की काली छाया पड़ चुकी है, जिस उत्कल प्रदेश के पैंतीस हजार मठ अधिकांश असामाजिक तत्त्वों के हाथ में पहुँचकर राज्य-तन्त्र की दया पर सिसक रहे हैं, जिस उत्कल प्रदेश का सामान्य जन गरीबी, अज्ञान और शोषण की भट्टी में जल रहा है, भला वहाँ से यह शक्ति कैसे प्रकट हो सकती है ? प्रश्न बहुत टेढ़ा था । उलझन सुलझ नहीं रही थी । परन्तु भगवान् जगन्नाथ की शरण में आने पर जो आवाज सुनी, वह भी तो निर्रथक नहीं हो सकती । इस आशा को लेकर उत्कल प्रदेश के जन जीवन में प्रवेश करना शुरू किया ।

जन-जीवन के सम्पर्क में आने पर देखने को मिला कि उत्कल प्रदेश के प्रत्येक घर में तथा जनता के हृदय में तो जगन्नाथ स्वयं विराजमान हैं । सभी पंथों सम्प्रदायों को मानने वालों के लिए भगवान् जगन्नाथ उनके अपने परिवार के सदस्य बनकर बैठे हैं । ऐसा दर्शन मुझे भारत के किसी भी क्षेत्र में नहीं हुआ । बस फिर तो भगवान् जगन्नाथ की अन्तः प्रेरणा की सच्चाई में कोई शंका नहीं रही । अपने अन्दर जो आशा की झलक पैदा हुई, उसे लेकर उत्कल प्रदेश की युवा-शक्ति से सम्पर्क किया । शिक्षित-अशिक्षित सभी के अन्दर सुप्त धर्मभाव का ऐसा दर्शन हुआ, जो आम तौर पर अन्यत्र नहीं हुआ था । उत्कल प्रदेश की इस धर्म-भूमि से कलिकाल में धर्म-युद्ध का श्रीगणेश किया जा सकता है । ऐसा विश्वास बन रहा है, क्योंकि उत्कल की भूमि पर जगन्नाथ भाव का उदय होता है । जगन्नाथ भाव का अर्थ है सर्व सामान्य की तेजस्विता । ☐

प्रियप्राया वृत्तिर्विनय मधुरो वाचि नियमः
प्रकृत्या कल्याणी विधि-रणव-गीतः परिचयः ।
पुरो वा पश्चाद् वा तदिद-मवि-पर्यासत-रसम्
रहस्य साधूना-मनुपधि विशुद्ध विजयते ।।

जीवन का परम पुरुषार्थ

श्री स्वामी प्रज्ञानन्द सरस्वती जी महाराज

प्रत्येक व्यक्ति अपनी आकांक्षाओं के अनुसार उन्नति के लिए सर्वदा प्रयत्नशील रहता है । केवल मनुष्य की बात नहीं, पशु-पक्षी कीट-पतङ्ग भी अपनी उन्नति के लिए खाद्य-संग्रह तथा सञ्चय आदि करते हैं । पशु-पक्षियों में बौद्धिक विकास नहीं है, क्योंकि उनके आहार-विहार तथा निवास की परिपाटी में किसी भी प्रकार का परिवर्तन दिखाई नहीं पड़ता । चिड़िया युग-युगान्तर से जिस प्रकार घोंसला बनाती थीं, आज भी उसी प्रकार बनाती है । पर मनुष्य हर दृष्टि से नित्य नवीन खोज करते हुए अपना जीवन का स्तर बदलने में जुटा है ।

पुरुष की चाह

पुरुष जो चाहता है, उसे पुरुषार्थ कहा गया है "पुरुषैरर्थ्यते इति पुरुषार्थः" यही पुरुष शब्द भी दार्शनिक परिभाषा से कहा गया है—पुरीषु शेते इति, अर्थात्—शरीर रूपी पुरी में जो शयन करता है । सुतरां प्रत्येक शरीर में जो चैतन्य सत्ता या भगवत् सत्ता विद्यमान है, उसे ही पुरुष शब्द से सम्बोधित किया जाता है । महाभारतकार 'धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष' रूपी चार पुरुषार्थ निरूपण करते हुए मोक्ष को ही परमपुरुषार्थ के रूप में प्रतिपादन करते हैं ।

जीवन धारण के लिए यद्यपि अर्थ एवं काम की पूर्ण अपेक्षा की जाती है, तथापि अर्थ और काम भी धर्मानुसार ही प्राप्त एवं परिहार करने की व्यवस्था शास्त्रकारों ने दी है ।

धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः ।

अर्थात्—धर्म के बिना जीवन पशु के ही समान है ।

धर्म कोई मज़हब नहीं है । यह तो मनुष्यों को मनुष्यत्व देने वाली एक अनमोल पद्धति है । उपनिषद् में धर्म का लक्षण बताया गया है, जो कि मनुस्मृति में भी है—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेय शौचमिन्द्रिय निग्रहः ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ।।

—मनुस्मृतिः ६-९२

धृति (धैर्य), क्षमा, दम, अस्तेय (चोरी न करना) शौच (पवित्रता) इन्द्रियों को वश में करना, ज्ञान, विद्या, सत्य, क्रोध का त्याग—ये दश धर्म के लक्षण हैं । महाभारत आदि शास्त्रों में भी धर्म के जिन लक्षणों का निरूपण किया गया है, वे सभी इन लक्षणों के अन्तर्गत ही आ जाते हैं । यदि सम्यक् प्रकार से इन दश लक्षणात्मक धर्म का अध्ययन करके उसका आचरण करते हैं तो आचरणकर्त्ता को अवश्य ही परम गति मोक्ष की प्राप्ति होती है ।

धनात् धर्मः ततः सुखम् ।

जीवन-यात्रा लक्ष्य की ओर ले जाने के लिए अर्थ की आवश्यकता है । पर वह धन भी धर्म मार्ग से ही प्राप्त होना चाहिए । सुना जाता है कि एक रात किसी बादशाह ने देखा कि अपने खजाना के अन्दर बत्ती जल रही है, तत्काल वहाँ पहुँचे एवं देखा कि खजाञ्ची कुछ हिसाब मिलाने में लगे हुए हैं । पूछने से ज्ञात हुआ कि हिसाब में कुछ धन बढ़ रहा है । बादशाह ने कहा—बढ़ ही रहा है तो कल हिसाब मिला लेना, घटा तो नहीं, फिर चिन्ता किस बात की ? खजाञ्ची ने उत्तर दिया—पता नहीं, किस गरीब का अंश हमारे राजकोष में आ गया है । उसकी आह, राजकोष को लगे, उससे पहले ही क्यों न हम उसका हिस्सा उसे वापस दे दें । धर्मोपार्जित धन ही जीवन में सुखप्रद हो सकता है । दान देने में दुर्योधन में किसी भी प्रकार की न्यूनता नहीं थी । पर धन का मूलस्रोत अधर्म जन्य रहा, अतः उसे श्रेय प्राप्त नहीं हुआ । श्रीमद्भागवत में तो दान, भोग नाश ये तीन गति ही धन की बतायी गयी हैं । जो व्यक्ति दान या भोग नहीं करता, उसका धन अवश्य ही तीसरी गति 'नाश' को प्राप्त होता है । जैसे उपार्जित धन का एक अंश राजकोष में जाता है, उसी प्रकार एक अंश धर्मार्थ व्यय करना चाहिए । धन के द्वारा धर्मानुष्ठान करने से सुख अवश्य ही मिलेगा । 'धनाद्धर्मः ततः सुखम्' ।

उत्तर मीमांसा में भी मोक्ष के लिए धर्म की आवश्यकता पर बल दिया गया है । धर्मशास्त्र के अनुशासन के द्वारा जब अन्तःकरण शुद्ध होगा, तभी भगवत् साक्षात्कार अथवा स्वरूप ज्ञान की अनुभूति होगी । इसीलिए अद्वैत मत प्रतिपादक भगवान् शङ्कराचार्य जी महाराज ने परमार्थक हेतु ब्रह्मनिरूपण एवं व्यवहार हेतु कुमारिल भट्ट की नीति अनुसरण करने का निर्देश दिया—व्यवहारे भट्ट नय इति' ।

मन को भटकने से रोकने वाला संस्कार

तृतीय पुरुषार्थ है काम । प्रत्येक पार्थिव शरीर के मूल में पिता-माता की काम वासना कारण रूप है । उपादान कारण कार्य में अनुस्यूत रहता है, यह शाश्वत नियम है । इस काम-वृत्ति का धर्म ही नियन्त्रण करता है । इसकी जहाँ उपेक्षा की जाती है, वहीं व्यभिचार उत्पन्न होता है । विदेशों में (उपरोक्त धर्म के आधार पर) विवाह व्यवस्था अनियन्त्रित रहने के फलस्वरूप इन दिनों में 'एड्स' रोग से लोग त्रस्त हैं ।

यौवनावस्था में जिस प्रकार एक युवक का मन युवतियों की ओर खींचता है, उसी प्रकार एक युवती का मन भी युवकों की ओर खींचता है । दो मनों को परिणय सूत्र में बाँध देने का काम धर्मशास्त्र करता है, जिससे सुन्दर संसार-जीवन व्यतीत करते हुए व्यक्ति परमार्थ की ओर बढ़ सकता है । इसलिए प्राचीन काल से ही ऋषियों ने चतुराश्रम की व्यवस्था दी है ।

ब्रह्मचर्य आश्रम जीवन की नींव है । जिस प्रकार नींव की मजबूती के बिना मकान मजबूत नहीं हो सकता, उसी प्रकार सुदृढ़ ब्रह्मचर्य के बिना सम्पूर्ण जीवन ही सार शून्य है । ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठा होने पर पितृ ऋण से मुक्त होने के लिए अथवा कामशक्ति की निवृत्ति के लिए गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने की व्यवस्था है । समय रहते हुए ही सांसारिक वासनाओं से अपने को दूर रखते हुए उपासना में मनोनिवेश करने के लिए वानप्रस्थाश्रम की व्यवस्था की गई

है । अन्त में पुत्रेषणा, वित्तेषणा तथा लोकेषणा परित्याग पूर्वक संन्यासाश्रम स्वीकार करने का प्रावधान है ।

दशलक्षणकं धर्ममनुतिष्ठन्समाहितः ।
वेदान्तं विधिवच्छ्रुत्वा संन्यसेदनृणो द्विजः ।।

—मनुस्मृतिः ६-२४

उपरोक्त दश लक्षण वाले धर्म का पालन करता हुआ द्विज सावधान चित्त होकर वेदान्त उपनिषद् आदि को विधिवत् (श्रीगुरुमुख से) सुन कर ऋणत्रय से छुटकारा पाकर संन्यास स्वीकार करे ।

व्यावहारिक जीवन में धर्म-अर्थ-काम की अपेक्षा है, पर इन तीनों में किसी की भी नित्यता सिद्ध नहीं है । पारमार्थिक सत्ता में इनकी स्थिति स्वप्न की तरह मिथ्या है । व्यावहारिक सत्ता में भी धर्म स्वर्गादि सुख देता है, पर कृष्यादि के द्वारा उत्पन्न शष्यादि की तरह क्षयशील है, सुतरां अनित्य है । अर्थ द्वारा व्यक्ति सुविधा लाभ करने में समर्थ होता है, पर ये सुविधाएं जबतक आर्थिक सामर्थ्य रहता है, तबतक ही रहती हैं । दुःख की आत्यन्तिक निवृत्ति अर्थ से नहीं हो सकती । धन रहता है बाहर, काम रहता है मन में और धर्म किया जाता है विवेक से । अनात्म पदार्थ, जो मन को कलुषित करके रखता है, कभी शुद्ध अन्तःकरण में प्रकाशित होने वाले आत्मतत्त्व का बोध करा नहीं सकता । काम इन्द्रियों को निस्तेज कर देता है—'सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेजः' (कठ० उ० १-२६) काम के द्वारा आजतक कोई भी व्यक्ति तृप्त नहीं हुआ है । चाहे काम कैसा भी हो वह मनुष्य को जीर्ण ही कर देता है । धन द्वारा जिस प्रकार लोभाग्नि प्रशमित नहीं होती, उसी प्रकार भोग के द्वारा कभी कामाग्नि भी शान्त नहीं होती—

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ।।

—मनुस्मृतिः २।२४

विषयों के उपभोग से इच्छा कभी शान्त (पूरी) नहीं होती, बल्कि घी से अग्नि के समान वह इच्छा फिर बढ़ती ही जाती है ।

विचार से यह प्रतीत होता है कि धर्म की तरह अर्थ और काम पुरुषार्थ होने पर भी इनमें धर्म ही संयमता लाता है । जिस प्रकार ब्रेक बिना गाड़ी विपद सम्मुखीन होती है, उसी प्रकार धर्म के बिना जीवन भी विपदग्रस्त ही समझना चाहिये । अतएव अर्थ एवं काम तो नित्य सुख स्वरूप मोक्ष प्रदान कर नहीं सकता, वह भी धर्म के बिना विपरीत दिशा में ही गति करेगा और धर्म का फल यद्यपि साक्षात् मोक्ष नहीं है, तथापि वह अन्तःकरण को शुद्ध करके मुक्ति-मार्ग में अग्रसर करता है ।

जगत् में ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं है, जो कि दुःख चाहता हो । वह धर्मानुष्ठान करे, या अर्थोपार्जन करे अथवा कामातुर होकर जीवन नष्ट करे, इन सब क्रियाओं के पीछे उसकी दुःख-निवृत्ति तथा सुख-प्राप्ति की इच्छा रहती है । महाभारत समर के बाद माता कुन्ती ने भगवान् के निकट दुःख की प्रार्थना की—

विपदः सन्तु नःशश्वत्तत्र तत्र जगद्गुरोः ।
भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भव दर्शनम् ।।

—श्रीमद्भागवत

हे जगद्गुरु श्री कृष्ण ! मुझे सम्पद नहीं, विपद चाहिए । सम्पद में व्यक्ति भगवद्विमुख हो जाता है, पर जब भी मेरे सामने विपदा आई है, उसी समय विपदभञ्जन मधुसूदन आप आकर उपस्थित हुए हो । माता कुन्ती ने यह जो विपद की प्रार्थना की, वह भी भगवद्रसास्वादन रूप आनन्द के लिए ही है । व्यक्ति सबेरे से शाम तक अथक परिश्रम करते हुए कुछ पारिश्रमिक प्राप्त करता है सुख पूर्वक जीवन-यापन के लिए। पशु-पक्षी, कीट-पतङ्ग भी आहारान्वेषण से आरम्भ करके प्रत्येक क्रिया सुख पूर्वक जीवन निर्वाह के लिए ही करते रहते हैं । पर साधारण मनुष्य तथा पशु-पक्षियों का प्रयास सीमित एवं अज्ञानावृत होने के कारण यथार्थ सुख-प्रद नहीं होता । अतएव यथार्थ आनन्द का अनुभव कराने के लिये मोक्ष मार्ग का निर्देश किया गया है ।

मोक्ष

दर्शन शास्त्रों में मोक्ष के स्वरूप के बारे में मतभेद रहने पर भी मोक्ष को जीवन का चरम एवं परम पुरुषार्थ स्वीकार किया गया है । मोक्ष ही हर दर्शन का अन्तिम लक्ष्य है । मोक्ष के लिए प्रयास न करने वाले व्यक्ति को तो भगवती श्रुति आत्मघाती बताती है—"आत्महनो जनाः" (ईशावास्योपनिषत्-३) सुतरां नित्य-आनन्द स्वरूपता प्रापक परम पुरुषार्थ रूप मोक्ष ही मानव जीवन का एक मात्र प्रयोजन और लक्ष्य है । ☐

दिल्ली में प्रदूषण

भारत की राजधानी नई दिल्ली में प्रति तीन व्यक्तियों में से एक प्रदूषण से सम्बन्धित बीमारियों से पीड़ित है । प्रदूषण के हिसाब से राष्ट्रीय स्तर पर इस तरह की घटनाएँ दिल्ली में बारह गुना अधिक है । एक रिपोर्ट अनुसार गये दशक में दिल्ली में प्रदूषण मात्रा ७५% से अधिक की वृद्धि हुई है । भारी मात्रा में वायु प्रदूषण का एक मुख्य कारण पेट्रोल डीजल से चलने वाले वाहन हैं, जो वायु प्रदुषण में ६०% तक भागीदार होते हैं । २० लाख से अधिक वाहनों के द्वारा १००० टन से अधिक प्रदूषण कारकों का उगलाव किया जाता है, जब कि बम्बई जैसे औद्योगिक शहरों में यह मात्रा ५७५ टन है ।

चूँकि वाहनों से निकलने वाले प्रदूषण कारक अधिक समय तक नीचे रहते हैं इसलिए इनका, मानव स्वास्थ्य पर शीघ्र असर होने लगता है, जिससे श्वास आदि की बीमारी बहुत जल्दी हो जाती है ।

मानव रे ! तू हंस बन

सुमति देवी गोयल

उस परमपिता परमात्मा ने जब सृष्टि का निर्माण किया तो साथ ही साथ वेदों का ज्ञान भी दिया, जिससे मनुष्य-मनुष्य बन सकें । वेद कहता है 'मनुर्भव' अर्थात् मानव सच्चा मानव बन कर तू स्वयं भी सुखी हो और अपने सम्पर्क में आने वालों को भी सुखीकर ।

यजुर्वेद के १२वें अध्याय के १४वें मन्त्र में वेद भगवान् ने हंस के माध्यम से मनुष्य को चेतावनी दी है—

हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्ष सद्दोता वेदिषदतिथिदु रोणा संत् ।।

हे मानव ! यदि तू जीने की कला सीखना चाहता है तो हंस बन अर्थात् हंस के गुणों को धारण कर ।

हंस की छः विशेषताएँ हैं:—

पहली विशेषता है 'अनासक्ति' । हंस गंगा की श्वेत लहरों में भी तैरता है और यमुना की कृष्ण धारा में भी तैरता है, रमण करता है । गंगा में तैरते समय अधिक श्वेत नहीं होता और यमुना जल में तैरते समय म्लान होकर काला नहीं होता । वह जैसा उस प्रभु ने बनाया है, वैसा ही रहता है । सुख में फूलता नहीं और दुःख में रोता नहीं । प्रभु विश्वासी ऐसे ही होते हैं । गीता में भी कहा है—

दुःखेष्वनुद्विग्न-मनाः सुखेषु विगत स्पृहः ।

अतः हे मानव तू भी हंस की विशेषता को धारण कर ।

दूसरी विशेषता है 'न्याय प्रियता' । वह अत्यन्त न्यायप्रिय है । 'नीर-क्षीर विवेक' दूध का दूध और पानी का पानी अलग-अलग कर देना । मनुष्य बहुत गलतियाँ करते हैं, मोह में पड़कर विवेक की दृष्टि खो बैठते हैं और फलस्वरूप दुःख के सागर में डूब जाते हैं । अपनी सन्तान के विषय में, पास पड़ोस के विषय में, रिश्तेदारों के विषय में पक्षपात रहित न्यायपूर्वक व्यवहार नहीं कर पाते, और दुःख क्लेशों के शिकार बन जाते हैं । अतः हे मानव तू विवेकी बन, विवेक से कार्य कर, तभी सुखी बन सकेगा ।

तीसरी विशेषता है कि वह अपने गंतव्य स्थान को नहीं भूलता । समस्त संसार में उसे कितने ही कमलों से भरे सुन्दर-सुन्दर सरोवर मिलें, किन्तु वह उनमें नहीं उलझता, वह उनके आकर्षण में नहीं फंसता । वह सीधा मानसरोवर जाकर ही दम लेता है । अतः हे मानव तू भी इस संसार के आकर्षणों में मत फ़ँस । मानव शरीर का मुख्य उद्देश्य है—प्रभु की प्राप्ति,

उसी लक्ष्य की पूर्ति कर, क्योंकि प्रभु की प्राप्ति मानव शरीर से ही हो सकती है, अन्य शरीरों से नहीं, अन्य शरीर तो केवल भोग योनियाँ ही हैं ।

हंस की चौथी विशेषता है 'या हंसा मोती चुगे, या भूखों मर जाय' इस सूक्ति का तात्पर्य है, कि धर्म की कमाई खाना । आज के युग में प्रायः सब यही कहते हैं, कि व्यापार और सत्य दोनों परस्पर विरोधी हैं । मैं कहती हूँ, सत्य की कमाई ही असली कमाई है । सत्य की कमाई ही फलीभूत होती है । आजकल प्रायः यह देखा जाता है, जो काला धन कमाते हैं, चोर-बाजारी करते हैं, उन्हें नाना प्रकार के रोग लग जाते हैं, रात को नींद नहीं आती, दिल धड़कता रहता है, नींद की गोली खा-खा कर सोने का प्रयत्न करते हैं । उनकी आत्मा हर समय कचोटती रहती है। अतः वेद कहता है—हे मानव तू धर्म की कमाई खा जिससे तू स्वयं भी सुखी रहेगा और अपने परिवार को भी सुखी रख सकेगा ।

पाँचवी विशेषता है—'अनर्गल वार्तालाप का निषेध' अर्थात् व्यर्थ की बातें न करना । मार्ग में बगुले मिलते हैं, वे हंस से बातचीत करना चाहते हैं, किन्तु वह चुपचाप अपने मार्ग का पथिक बना रहता है । अतः वेद कहता है, हे मानव, तू भी मूर्खों के साथ बातें करके अपना समय नष्ट न कर ।

छठी विशेषता है, 'स्थानान्तरित होने पर मानसिक स्थिरता' यदि किसी कारणवश हंस को सरोवर भी छोड़ना पड़े तो उसमें हंस की हानि नहीं है, सरोवर की ही हानि है, क्योंकि हंस तो गुणी है । उसका क्षीर-नीर विवेक उसके साथ जायेगा, उसके गुणों को तो कोई छीन नहीं सकता । वह अपने गुणों के कारण जहाँ जायेगा, वहीं शोभा का पात्र बन जायेगा । अतः वेद कहता है कि हे मानव तू भी स्थानान्तरित होने पर घबरा मत । तू भी जहाँ जायेगा, वहीं अपने गुणों के कारण शोभा व श्रद्धा का पात्र बन जायेगा । ☐

परमवीर चक्र विजेता नायक यदुनाथ सिंह जिन्होंने १९४८ में कश्मीर के मोर्चे पर अपने अद्भुत पराक्रम व शौर्य से अकेले ही अनेकों पाकिस्तानी हमलावरों को मार गिराया था, पूर्णतया शाकाहारी थे । फौज में भी वे शाकाहारी भोजन करते थे जबकि अन्य सभी लोग मांसाहारी-भोजन करते थे । एक बार अंग्रेज अफसर ने उनका चालान किया और कहा कि यदि वह शाकाहारी भोजन करेगा तो युद्ध कैसे लड़ेगा । इस पर यदुनाथ सिंह ने उत्तर दिया कि शाकाहारी भोजन अधिक पौष्टिक है । आप किसी भी दो मांसाहारियों से मेरी कुश्ती करवा दें, यदि मैं जीता तो मुझे शाकाहारी भोजन ज्यादा दिया जाए और अगर मैं हारा तो मैं मांसाहारी भोजन ग्रहण करूंगा । कुश्ती में यदुनाथ सिंह की जीत हुई और अंग्रेज अफसर ने न केवल उसे शाकाहारी भोजन की इजाजत दीं अपितु शाकाहार की प्रशंसा भी की और कहा कि मैं भी अब शाकाहारी भोजन करूंगा ।

जागे हिन्दू हिन्दुस्तान

श्री शरद कुमार साधक

हम हिन्दुस्तानी हैं। हिमालय से हिन्द महासागर तक फैला भू-भाग हिन्दुस्तान कहलाता है।[१] जो इसे अपनी पितृभूमि और पुण्यभूमि मानते हैं, वे हिन्दू हैं।[२] "हिन्दू किसी विशेष या संकीर्ण धर्म का नाम नहीं है। यह भारतवर्ष के इतिहास का एक जातिगत परिणाम है। यह परिणाम मनुष्य के शरीर, मन तथा हृदय की बहुतेरी विचित्रताओं को अनेक सदियों से एक आकाश, एक आलोक, एक भौगोलिक नद-नदी, पर्वत-अरण्य के बीच से ले जाते हुए आज हमारे अन्दर विकसित हुआ है।"[३]

विकास यात्रा

युगाब्दियों पूर्व विकास यात्रा आरम्भ हुई। मत्स्यावतार, कच्छपावतार, वृषभावतार, नृसिंहावतार और पूर्णावतार के रूप में हम निरन्तर आगे बढ़े। हिमालय से हिन्दमहासागर तक फैले हमारे परिवार में पाँच सौ प्रकार के जीव, दो हजार किस्म के पक्षी तथा तीस हजार जाति के जन्तु शामिल हैं। 'जिओ और जीने दो' हमारा उद्घोष था, जिसे अब 'जिलाओ और जिओ' के रूप में मान्यता मिल रही है। हम सबको सुखी स्वस्थ देखना चाहते हैं।[४] तुलसी-दल को जल चढ़ा कर भोजन करना, वृक्ष-नदी पर्वत को विभूति मानना, गाय को माता का विरुद देना हमारी वैचारिक सम्पन्नता है। गोरक्षण हेतु महाराज दिलीप तथा कबूतर की रक्षा हेतु शिवि को समर्पित होना धर्म है। धर्म का मूल दया है।[५] दयालु व्यक्तियों की संतान शेर का शिकार करके नहीं, वरन् शेरों के साथ खेल कर खुश होती है। उन्हीं के पुरुषार्थ से यह भोग भूमि कर्मभूमि कहलायी है। कर्मवीर चलते हैं तो सतयुग होता है, खड़े होते हैं तो त्रेता, बैठते है तो द्वापर, और सोते हैं तो कलियुग होता है। सात्विक कर्म सुख-प्रद होते हैं। राजसिककर्म[६] दुःखप्रद और तामसिक कार्य अज्ञानप्रद। इसलिए निष्काम कर्म की विधि सीखकर हम कर्मफलों से मुक्त हो जाते हैं।[७] जीव-विज्ञान ही हमारा जीवन-विज्ञान है। वैज्ञानिक की भांति हमारी शोध का परिणाम है :

कहे सुणे सो मानवी, सैण् लखे सो साध।
मन की लखे सो देवता समझे अगम अगाध।।

---

१. हिमालयं समारम्य यावदिन्दु सरोवरम्। तं देवनिर्मितं देशं हिन्दुस्थान प्रचक्षते।।
२. आसिन्धोः सिन्धु पर्यन्ता यस्य भारत भूमिका। पितृभूः पुण्य भूश्चैव रा वै हिन्दुरिति स्मृतः।।
३. रविन्द्र ग्रन्थावली १३।१७५
४. सर्वेऽत्र सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।
५. दया धरम का मूल है, पाप मूल अभिमान। तुलसी दया न छांड़िये जब लगि घट में प्राण।।
६. कर्मणः सुकृतस्याहुः सात्विकं निर्मलं फलम्। रजस्तु फलं दुःखमज्ञानं तमसःफलम्।
७. अनिष्टमिष्टं मिश्रं च त्रिविधं कर्मणः फलम्। भवत्यत्यागिनां प्रेत्य न तु सन्यासिनां क्वचित्।।

जीवन शैली

हम बड़ों का आदर करते हैं । बराबर वालों से मैत्री रखते हैं । छोटों के प्रति वात्सल्य दिखाते हैं । हमारी चर्या में उदारता, अहिंसा, करुणा, शौर्य और कर्तव्यनिष्ठा तो है ही, सज्जनता, सेवा एवं भ्रातृत्व भी है । वेद, उपनिषद्, पुराण, आगम, त्रिपिटक, रामायण, महाभारत, गीता आदि ग्रन्थों का अध्ययन हम किताबों की तरह नहीं करते, वरन् धर्म-ग्रन्थ मानकर उनका पारायण करते हैं । ऐसा करना जिन्हें रुचिकर नहीं लगता, उन्हें स्वतन्त्र चिन्तन करने की छूट है । हर हिन्दू जानता है कि श्रुतियाँ और स्मृतियाँ अनेक हैं ।[१] पूजा-प्रार्थना, जप-तप भी स्वैच्छिक है । आस्तिक पूरी श्रद्धा के साथ अपना मंतव्य प्रतिपादित कर सकते हैं, उसी प्रकार नास्तिकों को खंडन करने की भी छूट है । जैमिनि, व्यास, गौतम, कणाद, कपिल, श्री नारायण, पतञ्जलि आदि आस्तिक दार्शनिकों के प्रति जितना पूज्य भाव है, उतना ही पूज्यभाव चार्वाक, जैन, बौद्ध दार्शनिकों के प्रति है । वैदिक विद्वानों ने २४ अवतारों में जैनों के तीर्थंकर ऋषभदेव और महात्मा बुद्ध को स्थान दिया है ।[२] इसी तरह जैनाचार्यों ने वैदिक देवताओं की स्तुतियाँ की हैं[३]। अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत, शुद्धाद्वैत, की भाँति क्षणिकवाद और स्याद्वाद से विचार संपदा बढ़ी है । आचार सबको प्रिय रहा और वह यह कि जो हम अपने लिए चाहते हैं, वही दूसरों के लिए चाहें तथा जिसे हम अपने लिए अहितकर मानते हैं, वैसा ही दूसरों के लिए भी मानें ।[४] सनातन, आर्यसमाजी, जैन, बौद्ध आदि के सहजीवन का यही राज है । परस्पर विरोधी आचरण सभी के लिए अधर्म है और अविरोधी आचरण धर्म ।[५] महापुरुषों के उपदेशों की विविधता उनके अनुयायियों की योग्यता का स्तर भिन्न होने के कारण है । कुशल वैद्य के समान उन्होंने रोग के अनुसार औषध दी है ।[६]

कमजोर-पक्ष

हिन्दुस्तानियों का जीवनदर्शन योग मूलक, श्रमप्रधान, समन्वय पोषक है । पुरुष सूक्त तथा नासदीय सूक्त के समय वैदिक-अवैदिक परम्पराओं ने गंगा-यमुना की धाराओं के समान आपस में मिलकर सनातन हिन्दुत्व का रूप लिया ।[७] उपनिषद् कालीन ऋषि वेदों के प्रमाण के बदले अपने अनुभव,व्यक्तिगत ईश्वर के स्थान में अमूर्त और अनिर्वचनीय ब्रह्म और यज्ञों की जगह नैतिक आचरण पर बल देने लगे ।[८] तीर्थंकर महावीर ने ३६३ एवं बुद्ध ने ६२ सम्प्रदाय वालों के साथ संवाद किये । जनता को वाद-विवाद से बचाया । उनके निर्वाणोपरान्त १२-१२ वर्ष के दो अकाल पड़े । व्यवस्था छिन्न-भिन्न हुई । स्वामी विवेकानन्द के शब्दों में "राज्य-रक्षा, भोग-विलास, परिवार की पुष्टि और सबसे बढ़कर पुरोहितों की तुष्टि

---

१. श्रुतयो विभिन्नाः स्मृतयोऽपि भिन्नाः नैको मुनिर्यस्य वचः प्रमाणम् ।
२. धर्मशास्त्र का इतिहास (चतुर्थभाग) ४८३-४८४
३. ब्रह्मा वा विष्णुर्वा हरो जिनो वा नमस्तस्मै । आचार्य हेमचन्द्र
४. श्रूयतां धर्म सर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम् । आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ।
५. धर्मं यो बाधते धर्मो न स धर्मः कुधर्मकः । अविरोधात्तु यो धर्मः स धर्मः सत्यविक्रमः ।।
६. चित्रा तु देशनैतेषां स्यात् विनयानुगुण्यतः । यस्मात् ऐते महात्मानो भव्यव्याधि भिषग्वरा : । हरिभद्र
७. निरीश्वरवादः भारतीय एवं पाश्चात्य पृ० २८ डॉ याकूब मसीह
८. प्राचीन भारत पृ० १०४ डा० राजबलि पाण्डेय

के लिए राजा लोग प्रजा का धन सोखने लगे ।"[1] उन पर विदेशी आक्रमण हुए । लगभग एक हजार वर्षों के दौर में जो आक्रमणकारी आकर हिन्दुस्तान में बस गये, उन्हें हिन्दुओं ने अपना लिया । वे घुल-मिल गये । जो भोग मूलक, हिंसाप्रधान, मजहबी जीवन के हामी थे, वे लगभग आठ सौ वर्षों तक मुगल-शासन के तहत राजपूतों, जाटों, मराठों, सिक्खों से लड़ते ही रहे । इसलिये १७वीं सदी के अन्त में अंग्रेजों ने इस देश पर कब्जा कर लिया । इतिहास विद डॉ० ताराचन्द ने लिखा है—"दे केम, दे सा, एण्ड दे कांकर्ड ।" पं० जवाहर लाल नेहरू ने और स्पष्ट किया है कि "जो भी विदेशी यहाँ आये, वे शायद ही हिन्दुस्तान को वास्तव में जीत सके, अंग्रेज भी नहीं । उन्होंने सिर्फ हिन्दुस्तान की फूट का फायदा उठाया[2] । जाति व्यवस्था का विकार एवं आपसी फूट हिन्दुस्तान की कमज़ोरी रही ।

विदेशी प्रहार

विदेशी इतिहासकारों ने हिन्दू-संस्कृति पर प्रहार किये । उन्होंने हिन्दुस्तान को असभ्य कहा । सबको सभ्य बनाने का अधिकार स्वयं ग्रहण कर लिया और भारत का इतिहास लिखकर बताया कि यहाँ सदा से असभ्य लोग रहते आये हैं । आर्य बाहर से - पश्चिम से आये । यहाँ आकर उन्होंने विकास किया और यत्र-तत्र सभ्यता का निर्माण किया । मैकाले ने पूर्णाहुति करते हुए लिखा कि "भारत की सारी अच्छी पुस्तकें एक छोटी सी अलमारी में रखी जा सकती हैं" ।[3] अनेक इतिहासकार आज भी भारत को इसी दृष्टि से देखते हैं । हिन्दू उनका प्रतिकार नहीं कर सके । लोगों के हृदय से मोहावरण दूर करने हेतु महाभारत के रूप में लिखा इतिहास भी उन्हें याद न रहा । आपसी मतभेदों के कारण उनकी अस्मिता आहत हुई । 'हिन्दी हैं हम, वतन है हिन्दोस्तां हमारा' गाने के बावजूद हम अपनी भाषा-भूषा के प्रति हीन भावों से भर गये ।

जातक कथाओं में बुद्ध के ५४७ घटना प्रसंग तथा बोधिसत्वों द्वारा किये गए कार्य मात्र कहानी का अंग बन गये । बौद्ध वाङ्मय यथार्थ से काट कर रख दिया गया । उसकी प्रामाणिकता के प्रति प्रतिबद्ध संघ ने अपनी पहचान खो दी ।

जैनागम में स्पष्ट उल्लेख है कि जब लोग अरण्यवास से हटकर भवनवासी बने, तब गाँवों और नगरों का निर्माण हुआ । ऋषभदेव ने उन्हें असि (शस्त्र) मसि (शास्त्र) कृषि (उत्पादन) तथा ऋषि-विज्ञान सिखाया । वे कर्मयुग के पहले राजा थे । उनका ज्येष्ठ पुत्र भरत अयोध्या का शासक बना और अन्य राजाओं को जीतकर चक्रवर्ती कहलाया । उसी के नाम पर इस देश का नाम भारत पड़ा ।[4] भारतवासी उत्तरोत्तर विकसित हुए । उस युग में जैन धर्म के २० तीर्थंकर हुए । वह युग एक कोडा-कोडी सागर तक रहा ।[5] उसके पश्चात चार तीर्थंकर और हुए । इन चौबीस तीर्थंकरों की गौरव गाथा गाते हुए भी जैन उन्हें ऐतिहासिक सिद्ध

१. वर्तमान भारत, पृ०-२ (षष्टम् संस्करण १९६४)
२. नेहरू ने कहा था, पृ० ८२-८३, गिरिराज शरण
३. भारत दर्शन की भूमिका, पृ० ६, डॉ० मोहनलाल तिवारी
४. संस्कृति के चार अध्याय, पृ०१२७, श्रीरामधारी सिंह दिनकर
५. जैन दर्शन मनन और मीमांसा, पृ० १६, मुनिनथमल

करने का साहस खो बैठे, जबकि अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी के छः छः आरों का विशद विवरण उन्हें सुलभ है । बीस कोडा-कोडी सागर के कल्प वाला कालचक्र क्या केवल किताबी है ?

लोक व्यवहार में काल विचार का साधन पंचांग है । मानव शरीर, चित्त, बुद्धि, एवं भावना का संबन्ध योग, लग्न, ग्रह, वार, तिथि से है । ये पाँचों सूर्य, चन्द्र, ग्रह नक्षत्र तथा वायुमण्डल के प्रभाव से जुड़े हैं । जन्म, नामकरण, विवाह, यात्रा, खेती, कारोबार के लिए पंचांग का उपयोग किया जाता है । लाखों वर्षों के अनुभव की इस उपयोगिता को सिद्ध करने में भारतवासी असमर्थ रहे । यह शास्त्रीय अवधारणा अप्रभावी रही । कलि-काल ने प्रज्ञा को ग्रस लिया । ८ लाख ६४ हजार वर्ष का द्वापर, १२ लाख ९६ हजार वर्ष का त्रेता, १७ लाख २८ हजार वर्ष का सतयुग और ४३ लाख २० हजार वर्ष की चतुर्युगी तर्क पर खरी उतारने की किसी ने हिम्मत नहीं की ।

हिन्दू, हिन्दू को काटने लगा । 'विश्व-बन्धुत्व' की बात करने वाले हिन्दुस्तानी, मजदूर बनाकर अन्य देशों में ले जाये जाने लगे ।

पुनर्जागरण

स्वामी विवेकानन्द की सिंह गर्जना से सांस्कृतिक चेतना जगी । उन्होंने दरिद्र-नारायण की उपासना का सूत्र दिया । महात्मा गाँधी ने उसके अनुरूप रचनात्मक कार्य खड़ा कर देशवासियों को स्वतन्त्रता संग्राम में सहभागी बना लिया, लोक-शक्ति प्रकटी । गुलामी की बेड़ियाँ टूटीं, पर वास्तविक आज़ादी नहीं मिली । मुस्लिम-तुष्टिकरण की नीति अपनाने के बावजूद मुसलमानों ने देश का विभाजन कराया । अलग पहचान के आग्रही मुसलमान पाकिस्तान गये । हिन्दुस्तान में रहने वाले सभी धर्म सम्प्रदाय वाले अपने मन पर अपनी दुर्बलताओं पर विजय पाये बिना सोचें कि क्या वास्तविक आज़ादी मिल सकती है ? उसके लिए हर हिन्दुस्तानी को इतिहास से सबक लेना होगा और हेय, ज्ञेय उपादेय का विचार करते हुए नया इतिहास लिखना होगा । "उसका मन उदार, सहिष्णु, नूतन भावों की जागरूकता से स्वागत करने वाला है । अनुशासन व अंकुश की अपेक्षा वह उच्च आदर्श, त्याग की भावना, स्वगत कर्म प्रेरणा से अधिक द्रवित होता है । उस मन की दृढ़ता से लोक हित में बाँधने और उदात्त भाव भरने के लिए संतों की जरूरत है । संत ही त्याग की भावना को सामाजिक स्तर पर उतार सकते हैं और वे ही हिन्दू संस्कृति की छिपी हुई मानस निधि को जन-जन तक पहुँचा सकते हैं ।"[1]

हिन्दू जीवन-दर्शन से आज स्वयं हिन्दू अपरिचित हैं । उन्हें सामान्य ज्ञान कराने वाला पाठ्यक्रम होना चाहिए और विशेष ज्ञान कराने वाला भी । यह बहुत बड़ा काम है, जिसे प्राथमिकता दी जानी चाहिए । क्योंकि जनसंख्या की दृष्टि से आज हमारा देश विश्व में दूसरे स्थान पर है । संसार का प्रत्येक दूसरा व्यक्ति हिन्दू है । हिन्दू अर्थात्—सनातनी, आर्य समाजी, जैन, बौद्ध, सिक्ख तथा अन्य भारतीय सम्प्रदाय । सारे संसार में आधे से अधिक हिन्दू हैं । प्रताप नारायण मिश्र ने सभी हिन्दुओं को संबोधित कर लिखा है—

---

१. हिन्दू संस्कृति—डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल

जो चाहो भारत कल्याण, तो सब मिल भारत सन्तान ।
जपो निरन्तर एक जबान हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान ।।

हिन्दुओं की संख्या

भारतीय संविधान के अनुसार हिन्दुओं में वैदिक, जैन, बौद्ध सिक्खों की गणना होती है । उन पर समान कानून लागू होते हैं । लेकिन अन्य देशों की जनगणना में बौद्धों के लिए अलग स्थान है । यह अलगाव घटाना है । इस अलगाव के जनक अंग्रेज रहे, जो अबभी हिन्दू समाज की समग्रता को नहीं समझ पा रहे हैं । उनकी गणना के अनुसार "सन् १९९२ में हिन्दुओं की संख्या एशिया में ७१,४६,५२००० यूरोप में ७०३,००० लेटिन अमेरिका ८,६७,०००, उत्तरी अमेरिका में १२,६७०००, अफ्रीका में १४,३१,००० है । पूर्व सोवियत संघ में २००० तथा महासागरीय क्षेत्रों में भी ३,५५००० हिन्दू हैं ।"[1] जापान, बर्मा, श्री लंका, कम्बोडिया आदि देशों के बौद्ध शामिल कर लेने से यह संख्या लगभग दुगुनी हो जाती है । ८८ देशों में हिन्दू रह रहे हैं । राज्यस्तर पर शिक्षा-दीक्षा वे लेते हैं, किन्तु संस्कार-शिक्षा कहाँ ले पाते हैं ? 'एक्ट लोकली थिंक ग्लोबली' राष्ट्रीय-आचरण-वैश्विक-चिन्तन की भावना से इस शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था हिन्दुस्तान को करनी चाहिए ।

रूढ़ नहीं, रमणीय दर्शन

हिन्दू जीवन-दर्शन प्राचीन है, अर्वाचीन भी । यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, समाधि से यह व्यष्टि को विकसित करता है और नदी, पर्वत, धाम, तीर्थ व महापुरुषों की स्तुतियों के सहारे समष्टि की सम्पन्नता बढ़ाता है । यह काल, स्वभाव, नियति, कर्म, उद्योग सापेक्ष है ।[2] अपनी आवश्यकताएँ मर्यादित रखना तथा दूसरों की आवश्यकताओं का ध्यान रखना इसका व्यवहार है ।[3] इसके विकास का मापदण्ड भौतिक सुख-साधन की खपत बढ़ना नहीं, 'सादा जीवन उच्च विचार' है । खेती को उत्तम, व्यवसाय को मध्यम, नौकरी को अधम और भीख को अधमाधम[4] मानने वाली संस्कृति के लिए यह चिन्ता की बात है कि आज देश के नेता भीख का कटोरा लिए घूमते हैं, अपने को बुद्धिमान मानने वाले लोग नौकर हैं । व्यापारी शोषक हैं और कृषक-मजदूरों की हालत दयनीय है ।

'बीती ताहि बिसार के आगे की सुधि लेय' के अनुसार हिन्दुओं को अन्धकार से प्रकाश की ओर बढ़ना है । वे समयानुकूल नयी संहिता बना सकते हैं और अपना भाग्य स्वयं निर्माण कर सकते हैं । सच्चिदानन्द प्राप्ति तक उन्हें निरन्तर गति करनी है । उनकी आस्थाएँ रूढ़ नहीं, रमणीय हैं । 'पदे पदे यन्नपतामुपैति तदेवरूपं रमणीयतायाः' पग-पग पर पल-प्रतिपल अपने कर्तव्य एवं व्यक्तित्व को नित-नूतन व रमणीय बनाये रखने की छूट हिन्दू जीवन-दर्शन ने प्रदान की है । इसीलिए तो पिण्ड में ब्रह्माण्ड और आत्मा में परमात्मा का साक्षात्कार सम्भव हुआ है ।[5] दिल एवं दिमाग को व्यापक बनाये बिना सृष्टि और सृष्टा का विराट रूप

---

१. इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका ।
२. कालः स्वभावः नियति कर्मोद्योगे तत् सिद्धिः । जैन सिद्धान्त दीपिका ।
३. सांई इतना दीजिये जामे कुटुम्ब समाय । मैं भी भूखा न रहू, संत न भूखा जाय ।।
४. उत्तम खेती, मध्यम बान । अधम चाकरी, भीख निदान ।
५. ज्यों तिल मांहि तेल है, चकमक मांहि आगि । तेरा सांई तुज्झ में जाग सके तो जागि ।।

आत्मसात नहीं होता । विज्ञान एवं अध्यात्म के समन्वय से हमें वही करना है । हमारे पूर्वजों ने जितना दिया, वह हमारी निधि है । लेकिन जो करना रह गया, वह हमें करना है और पितृऋण चुकाना है । हम अतीत में नहीं रह सकते और न अनागत के ही ख्वाबों में जी सकते हैं । हमें वर्तमान को सजाना-संवारना और 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' बनाना है, तभी तो कहते हैं—

यूनान मिस्र रूमां सब मिट गये जहाँ से ।
लेकिन अभी है बाकी हिन्दोस्तां हमारा ।।

हिन्दुस्तान अरब-सागर, हिन्द महासागर और बंगाल के समुद्र से घिरा तथा हिमालय का मुकुट पहनने वाला ही नहीं है । हिन्दुस्तान का अर्थ है—सदियों से अहिंसा सिद्धान्त का उद्‌घोष और उपदेश करने वाला देश । अहिंसा की शिक्षा विश्व के प्रत्येक धर्म में वर्तमान है, किन्तु हिन्दुस्तान में उसके आचरण को एक वैज्ञानिक रूप दिया गया है । अब हिन्दुस्तान को पश्चिम को अहिंसा धर्म सिखाना है ।[१] अथर्ववेद कालीन ऋषि ने हमें पते की बात कही थी कि "मैं आप लोगों में सौजन्य, एकता तथा दृढ़ता की स्थापना करता हूँ । मैं आप सबको समान मन वाला बनाता हूँ । मैं आप सबको प्रेम सूत्र में साथ-साथ बांध कर एक ही मार्ग में प्रयुक्त करता हूँ । अमृत की रक्षा करने वाले देवताओं की भांति आप सब का मन प्रातः और सायं सुन्दर रहे।"[२] यदि यह सुन्दरता नहीं रही एवं न हम विश्व को अहिंसा धर्म सिखा सके तो अपनी जन्म-भूमि के रूप में हिन्दुस्तान का अभिमान किसे रहेगा ? इस प्रश्न का उत्तर दें और अहिंसक जीवन-व्यवहार से सिद्ध करें कि 'जागा-हिन्दू-हिन्दुस्तान' । ☐

यं शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो,
बौद्धा बुद्ध इति प्रमाण-पटवः कर्तेति नैयायिकाः ।
अर्हन्नित्यथ जैन-शासन-रताः कर्मेति मीमांसकाः
सोऽयं नो विदधातु वाञ्छित-फलं त्रैलोक्य-नाथो हरिः ।।
स्वस्ति प्रजाभ्यः परिपालयन्तां न्यायेन मार्गेण महीं महीशाः ।
गोब्राह्मणेभ्यः शुभमस्तु नित्यंलोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु ।।
काले वर्षतु पर्जन्यः पृथिवी शस्य-शालिनी ।
देशोऽयं क्षोभरहितो ब्राह्मणः सन्तु निर्भयाः ।।

स्वस्तयस्तु विश्वस्य खलः प्रसीदतां
ध्यायन्तु भूतानि शिवं मिथो धिया ।
मनश्च भद्रं भजतादधोक्षजे
आवेश्यतां नो मति-रप्यहैतुकी ।।

---

१. अहिंसा और सत्य ।- म० गांधी
२. अथर्ववेद ६-३०७ ।

राज विद्या की चाबी

श्री मानस महारथी त्यागी जी महाराज

किसान की एक लड़की थी । उसका हर काम सुंदर, कुशलतापूर्वक होता था । वह रसोई बनायेगी तो उत्तम । झाडू लगायेगी तो सुन्दर, स्वच्छ । बरतन मलेगी तो साफ, चमकीले । एक दिन उसकी सहेलियों ने उससे इसका राज पूछा । बहुत आग्रह के बाद शरमाते हुए उसने कहा—"हर काम करने से पहले मैं भगवान् का आशीर्वाद मांग लेती हूँ । रोटी बनाने बैठती हूँ, तब कहती हूँ कि हे भगवन् ! इस रोटी पर अनुग्रह कर, इसे अच्छी बना । झाडू लगाने के पहले कहती हूँ हे भगदन् ! इस पर अनुग्रह कर और कमरा सुन्दर साफ कर.......

हर रसोईघर में, हर घर में ऐसा भगवान् होता है । बचपन की याद आती है कि जब कभी कोने में रखे हुए झाडू को पैर लग जाता था तो हाथ पकड़ कर दादी कहती थी—पहले इसे प्रणाम कर । यह घर की लक्ष्मी है, उसे पैर नहीं लगाते । रसोई घर में जब कभी नया चूल्हा आता था, तब उसको कुमकुम लगा कर सम्मान दिया जाता था । चूल्हे पर के उबलते पानी में चावल डालने के पहले, चावल के चार दाने प्रथम चूल्हे में डाले जाते थे । रोटी सेंकने के पहले आटे का दाने भर हिस्सा प्रथम चूल्हे में डाला जाता था । जो अग्निदेवता हमारा अन्न पकाता है, उसको प्रथम भोग चढ़ायेंगे, तभी तो हम खाने के अधिकारी होंगे । और अग्नि देवता की पूजा करेंगे तभी तो वह अन्न पकायेगा । आटा पीसने की चक्की को गलती से भी पैर लगाने की इजाजत नहीं थी । शाम को घर में दिया जलता था, तब फौरन उसको प्रणाम करने की शिक्षा दी जाती थी । दादी के पूछने पर कि यह सारा उसको किसने सिखाया तो वह कहा करती थी उसकी दादी ने । और उसको, उसकी दादी ने । इस तरह पीढ़ी दर पीढ़ी यह शिक्षा चलती थी । इसका पालन होता था रिवाज के नाते, इसलिए इसे रूढ़ी कह कर छोड़ दिया गया, परन्तु इसके पीछे जो भावना थी, वह लुप्त हो गयी । यदि भावना की चेतना रहे तो गृहणियाँ आस-पास की सभी चीजों में भगवान का रूप पहचानने लगेंगी । झाडू, चूल्हा, चूल्हे में जलने वाली लकड़ी, आटा पीसने की चक्की, जलने वाला दिया..........सब पवित्र हैं और उनमें भगवान् मौजूद है ।

गीता का नौवां अध्याय, जिसमें 'गुह्यातिगुह्य' ज्ञान प्रकट किया है, यही शिक्षा देता है कि "भगवान् को खोजने के लिए कृत्रिम उपायों की जरूरत नहीं । उपाय सीधे, सरल हैं । तुम जो कुछ सेवा कार्य करते हो, उन सब का संबन्ध ईश्वर से जोड़ दो । हर कृति का संबंध भगवान् से जोड़ दो । वह कैसे ? तो कहा कर्म ऐसी खूबी से करो कि काम अच्छा बने, लेकिन उसके फल की वासना चित्त को न छुए । माँ लड़के के लिए रसोई बनाती है । उसकी पसंद की चीजें मेहनत पूर्वक बनाती है । उसमें उसकी अपनी पसंदगी नहीं होती,

खाने की वासना भी नहीं होती । न लड़के से प्रशंसा पाने की इच्छा होती है, न अपना यह कर्तव्य चार लोगों को मालूम हो, ऐसी आकांक्षा होती है । लड़के के संतोष में ही उसका संतोष समा जाता है" और फिर कहा कि यह सारा करते हुए भाव पूर्वक ईश्वर के साथ जुड़ जाओ ।

यह बात किसी एकाध विशिष्ट कृति के लिए ही लागू नहीं होती । हर कृति इस भाव से भावित हो, तभी यह बनेगा । माँ का बच्चे को खिलाना, गृहिणी का अतिथि को खिलाना, यहाँ तक कि किसान का बैल को खिलाना भी इसी भाव से भावित होना चाहिए । सिर्फ खिलाना ही नहीं, झाडू लगाना, बरतन साफ करना,यहाँ तक कि पाखाना सफाई करना भी । माता का रसोई बनाना, किसान का खेती करना, शिक्षक का सिखाना, लेखक का लिखना, मन्त्री का राज्य सम्भालना, सभी इस भाव से भावित हो, तभी ईश्वर के साथ जुड़ा जा सकता है । एक ओर से अपने कर्तव्य करते जायेंगे और दूसरी ओर से भक्तिभाव बढ़ाते जायेंगे, तो दोनों का मेल मिला कर जीवन सुंदर बनेगा ।

इतना बड़ा शास्त्र जिसको गीता ने गुह्य-विद्या कहा, सन्तों ने भक्ति कहा, ज्ञानियों ने ज्ञान कहा, बड़ी सहजता से उसका आचरण माता बहनें अपने गृहस्थ जीवन में करती चली आ रही हैं । लेकिन सहज व्यवहार को, रूढ़ी मान कर अवहेलना की जाती है । इस सहज कर्म के साथ ज्ञान तथा चेतना का जोड़ बिठा दिया जाय तो बच्चों को संभालना, रसोई बनाना, अतिथियों की सेवा करना, घर-सफाई करना, ये सारे काम आध्यात्मिक साधना के साधन बन सकते हैं । जिन्होंने इन कामों को हीन नहीं समझा, इन सब में भगवान् की साक्षात् मूर्ति को स्थापित करके हृदय की ऊँची भावनाओं को उनमें भर कर उनका दर्जा बढ़ाया उन्होंने राजविद्या की चाबी प्राप्त की है, सबमें भगवान् के दर्शन का लाभ लिया, ऐसा कहा जायेगा । ❒

मानव का दिव्य स्वरूप

अमृत के पुत्रो—कैसा मधुर और आशाजनक सम्बोधन है यह ! बन्धुओ, इसी मधुर नाम से मैं आप को सम्बोधित करूँ, इसकी अनुमति आप मुझे दें । निश्चय ही हिन्दू आपको पापी कहना स्वीकार नही करता । आप तो ईश्वर की सन्तान हैं, अमर आनन्द के भागी हैं, पवित्र और पूर्ण आत्मा हैं । आप इस मृत्युलोक के देवता हैं । आप भला पापी ? मनुष्य को पापी कहना ही पाप है, मानव-स्वरूप पर घोर लांछन है । आप उठिए, हे सिंहगण ! आइए और इस मिथ्या भ्रम को झटककर दूर फेंक दीजिए कि आप भेड़ हैं । आप हैं, अमर, मुक्त आनन्दमय और नित्य आत्मा ! आप जड़ नहीं हैं, शरीर नहीं हैं, जड़ तो आपका दास है, आप जड़ के दास नहीं ।

स्वामी विवेकानन्द

श्री ज्ञानवापी के नन्दी की करुण पुकार

श्री सन्त रामशरण दास जी महाराज

शिवपुराण के अनुसार काशी में श्री विश्वनाथ जी महाराज का मन्दिर सर्व प्रथम भगवान् विष्णु ने स्थापित किया। इसके बाद महर्षि कश्यप, शंकर भगवान् की आराधना करते रहे। इनकी तपस्या से प्रसन्न होकर शंकर भगवान् एकादश रुद्र के रूप में यहाँ प्रगट हुए।

सदियाँ गुजर जाने के बाद सम्राट विक्रमादित्य ने विश्वेश्वर (विश्वनाथ) मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया।[१]

सम्राट विक्रमादित्य के बाद भारत में बहुत विखराव आ गया। भारत सोने की चिड़िया है। वहाँ बहुत धन सम्पदा है, यह शोहरत सारी दुनियाँ में फैल गई थी। अतः छिट-पुट लुटेरे यहाँ आने लगे।

महमूद गज़नवी के भान्जे सालार मसूद एवं[२] नियाल तिगिन ने श्री काशी जी और श्री अयोध्या जी के मन्दिरों को एक साथ लूटने की योजना बनायी थी, परन्तु वे सफल न हो सके, काशी-नरेश गांगेयदेव ने उन्हें मार भगाया।[३]

सन् ११६४ ई० में महमूद गज़नवी ने काशी के श्री विश्वनाथ मन्दिर को लूटकर वहाँ एक मस्जिद बना दी। वह १५ दिन शहर में रहा। लूट का माल १४०० ऊँटों पर लाद कर ले गया।[४] गज़नवी ने भारत में जितने क्षेत्र पर विजय हासिल की थी उसका शासक कुतुबुद्दीन को बनाया तथा मुइजुद्दीन को वाराणसी का शासक नियुक्त किया। श्री विश्वनाथ मन्दिर के ध्वस्त होने एवं उस पर मस्जिद बनाने का समाचार सारे भारत में फैल गया। गज़नवी की सत्ता के खिलाफ़ जबरदस्त विद्रोह हुआ। कुतुबुद्दीन एवं मुइजुद्दीन भाग खड़े हुये तथा बाबा विश्वनाथ की नगरी स्वतन्त्र हो गयी। गज़नवी द्वारा बनी मस्जिद तोड़ दी गई तथा सन् १२६६ ई० में उसी स्थान पर भव्य मन्दिर पुनः निर्माण हो गया।

प्राचीन काल में श्री विश्वनाथ के मन्दिर के प्रांगण में एक सुन्दर सरोवर था जो गंगाजी के जल से भरा रहता था। यहाँ पर बड़े-बड़े सन्त-समागम होते थे। इसलिए ज्ञान चर्चा के इस स्थान को ज्ञानवापी नाम दिया गया था।

सन् १४३६ ई० से १४५८ तक जौनपुर का सुल्तान मोहम्मद शर्की बना, उसने बाबा श्री विश्वनाथ के मन्दिर को पुनः लूटा तथा उसको खण्डहर बना दिया। इस बार हिन्दुओं ने इस स्थान पर मस्जिद नहीं बनने दी तथा खण्डहर पर ही पूजा अर्चना करते रहे।[५]

---

१. काशी का इतिहास, डॉ० मोतीचन्द्र पृ० ५६।
२. दि हीरोइक रेजिंस्टेंस आफ मुस्लिम इन्वेडर्स।
३. काशी का इतिहास, डॉ० मोतीचन्द्र, पृ० १०८।
४. कामिल तवारीख, इब्न असीर।
५. त्रिस्थली केतु, ले० नारायण भट्ट, पृ० ३०८

मुगल बादशाह अकबर के जमाने तक बाबा विश्वनाथ की पूजा अर्चना खण्डहर पर ही होती रही ।

मुगल सम्राट अकबर के काल में पण्डित नारायण भट्ट ने राजा टोडरमल की सहायता से काशी जी में पुनः उसी खण्डहर पर बाबा श्री विश्वनाथ के विश्वेश्वर मन्दिर का भव्य निर्माण कराया । सन् १५५८ ई० को शिवरात्री के दिन यह मन्दिर हिन्दू जनता को समर्पित किया गया । इस समय पत्थरों से वापी (कूप) का निर्माण कराया गया तथा इसमें नीचे जाने के लिये सीढ़ियां बनाई गयीं ।[१]

मुग़ल बादशाह औरंगजेब के जमाने में बाबा श्री विश्वनाथ के मन्दिर पर पुनः आफत आई । औरंगजेब के हुकुम से बाबा श्री विश्वनाथ के मन्दिर को ध्वस्त करके उस पर मस्जिद बना दी गई । मन्दिर पर मस्जिद बनाते समय प्राचीन मन्दिर की पश्चिम की दीवार गिरा दी गई, दक्षिण द्वार बन्द कर दिये गये, मन्दिर के शिखर गिरा कर उनपर गुम्बद एवं मीनारें बना दी गयीं, गर्भ गृह को दालान के रूप में परिणत कर दिया गया । इसमें अभी भी प्राचीन मन्दिर के खम्भे लगे हैं ।

श्री नन्दी जी महाराज (भगवान् विश्वनाथ के वाहन) आज भी अपने स्वामी की प्रतीक्षा में बैठे हैं । पीछे का सम्पूर्ण भाग आज भी प्राचीन मन्दिर के अवशेषों के रूप में मौजूद है ।

सन् १७८५ ई० में महारानी अहिल्या बाई ने ज्ञानवापी के बगल में बाबा श्री विश्वनाथ जी महाराज का नया मन्दिर बनवाया । महाराजा रणजीत सिंह के द्वारा शिखर पर स्वर्ण कलश चढ़ाया गया तथा नन्दी भगवान् की स्थापना नैपाल नरेश ने कराई ।

सिंधिया जी महाराज ने ७ अगस्त १७९० को शाह अल्तमश से मथुरा व काशी के मन्दिरों पर बनी मस्जिदों को हिन्दुओं को देने के फरमान जारी करा दिये थे ।

नाना फड़नवीस ने अंग्रेजों के विरुद्ध टीपू सुल्तान को मदद करने में यह शर्त रखी थी कि युद्ध जीतने पर बाबा श्री विश्वनाथ का मन्दिर पुनः प्राचीन स्थान पर बनाया जायेगा । लेकिन यह सब अमल में न आ सका ।

बाबा श्री विश्वनाथ के मन्दिर को लेकर १८०६ में एक बार फिर तूफान उठा । गाय घाट पर जमकर हिन्दू मुस्लिम युद्ध हुआ, लेकिन मि० वर्ड ने दो कम्पनी सेना बुलाकर हिन्दुओं को दबा दिया ।

१८५२ तथा १८५७ में भी प्राचीन बाबा श्री विश्वनाथ के मन्दिर पर कब्जा करने का शिवभक्तों ने प्रयास किया लेकिन सफल नहीं हो सके ।

१५ अगस्त १९४७ को हिन्दुस्तान का बटवारा हुआ कट्टरवादी हिन्दू विरोधी मुसलमानों को पाकिस्तान मिल गया । उस समय यह आशा थी कि जो मुसलमान भारत में रह गये हैं वे आपस में मिलजुल कर रहेंगे । हिन्दुओं के मन्दिरों पर जोर जबरदस्ती से बनी मस्जिदें जो कि मुसलमानों के मजहबी इबादतखाने भी नहीं हो सकते, उन्हें सहृदयता पूर्वक हिन्दुओं को सौंप कर मन्दिर तोड़ने वाले जालिमों के कलंक को धोने का उत्तम कार्य करेंगे । यही व्यवहार हिन्दू मुस्लिम मिल्लत का स्मारक बनेगा ।

---

१. एंगेलिक कैटेलॉग आफ़ मैन्युस्कृप्टस परिशिष्ट, पृ० १५९१ ?

अभी समय है कि भारत के सज्जन धार्मिक मुसलमान मुस्लिम बादशाहों के कलंकों को धो दें, तथा इस्लाम के कानून के अनुसार मन्दिरों पर बनी मस्जिदों में नमाज अता करना बन्द करें। हिन्दू-मुस्लिम सौहार्द के लिए यह आवश्यक है कि काशी, मथुरा और श्री अयोध्या में बाबा विश्वनाथ, श्रीकृष्ण भगवान्, तथा भगवान् श्रीराम के प्राचीन मन्दिरों के पुनर्निमाण में भारत के धार्मिक मुसलमान पूरा सहयोग करें।

प्रभु सबको सद्‌बुद्धि दे ताकि भूले-भटके मुस्लिम भाईयों को सच्चाई की राह पर चलने की हिम्मत आवे।

काशी जी में ज्ञानवापी में बैठे नन्दी भगवान् का रौद्ररूप प्रगट होने के पहिले ही यदि उनकी करुण पुकार सुन ली गई तो सबका कल्याण होगा। ☐

(पत्रकार-सम्मेलनों और कार्यकर्ता-बैठकों में हुए प्रश्नोत्तर)

प्रश्न—आप 'हिन्दू' शब्द की परिभाषा क्या करते हैं ?

उत्तर—हिन्दू शब्द की अनेक परिभाषाएँ दी गयी हैं, पर लगता है कि उनमें से एक भी परिपूर्ण नहीं है। कारण यह है कि शब्द-चयन कितनी ही सावधानी से किया गया हो, प्रत्येक परिभाषा में 'अव्याप्ति' अथवा 'अतिव्याप्ति' दोष आ ही जाता है। मान लीजिए कि 'हिन्दू' शब्द की सम्यक् परिभाषा नहीं हो पा रही है तो, क्या हम 'हिन्दू समाज' के अस्तित्व को ही नकार सकते हैं ? यद्यपि इस शब्द की परिभाषा नहीं हो सकती, परन्तु हम सब भली भांति जानते हैं कि 'हिन्दू समाज' है और हम सब लोगों की एक निश्चित एवं सर्वमान्य कल्पना भी है कि इस हिन्दू समाज में कौन-कौन हैं ?

कुछ पूर्व, सरकार ने 'हिन्दू कोड' (हिन्दू विधि) बनाया था, जिसे संसद ने पारित किया। पं० नेहरू और डॉ० अम्बेडकर इस 'कोड' के प्रमुख निर्माता थे। यह किन लोगों पर लागू होता है, इसका निर्धारण करते समय उन्होंने घोषणा की थी कि मुसलमान, ईसाई, पारसी और यहूदी को छोड़कर यह भारत के सभी नागरिकों पर लागू होता है, जिनमें सनातनी, लिंगायत, आर्य समाजी, जैन, सिक्ख, बौद्ध और अन्य सभी आते हैं, जो पूर्वोक्त वर्गों में नही हैं। यह भी स्पष्ट किया गया था कि यह उससे बचने की इच्छा रखने वाले का हीं दायित्व होगा कि वह इस प्रकार की छूट दिये जाने का औचित्य सिद्ध करे। वे जिस समाज का विचार कर रहे थें, उसको व्यक्त करने वाला सर्वाधिक उपयुक्त शब्द 'हिन्दू' ही था।

श्री बालासाहब देवरस

कर्तव्य-बोध

श्री रामेश्वर दास 'श्री वैष्णव'

श्री स्वामी रामानन्द सगुण एवं निर्गुण दोनों के प्रेरणा स्रोत हैं । एक ओर कबीर ने निर्गुण भक्ति-धारा का निरूपण स्वामी रामानन्द जी से प्रभावित होकर किया तो दूसरी ओर सगुण के समर्थन में भक्त शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास जी के भी वे ही आदर्श हैं । यही कारण है कि कबीर निर्गुणियाँ होकर भी सगुण का गान करते हैं एवं गोस्वामी तुलसीदास जी सगुण होकर निर्गुण का ।

जिस काल में स्वामी रामानन्द का प्रार्दुभाव हुआ था, उसमें राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक क्षेत्र में भयंकर उथल-पुथल मची थी। इस्लाम धर्मियों के शासन में हिन्दू जनता अपने सामाजिक एवं धार्मिक व्यवहारों का स्वतन्त्र रूप से निर्वाह नहीं कर पाती थी । शैवों, शाक्तों और बौद्धों की साधना पद्धतियों में वाममार्गी विचार का प्रभुत्व हो जाने के कारण सामान्य लोकव्यवहार भी अछूता नहीं रहा । छुआछूत, बाह्याडम्बर, जाति-पांति, अमीर-गरीब, ऊँच-नीच आदि के भेद-प्रभेद विकृत बाह्याचारों के जनक बन गये ।

स्वामी रामानन्द ने सर्वप्रथम भक्ति का द्वार सबके लिए खोलकर 'जाति-पांति पूछे नहिं कोई, हरि को भजै सो हरि का होई' कहा । इस आदर्श की संपुष्टि के लिए उन्होंने अपने द्वादश शिष्यों में सभी वर्णों को प्रतिनिधित्व दिया । 'रहस्यत्रयी' के टीकाकार ने द्वादश शिष्यों की कड़ी में पद्मावती नामक शिष्या को भी जोड़ दिया है, और इसे सार्द्धद्वादश शिष्या कहा है—

राघवानन्द एतस्य रामानन्दस्ततोऽभवत् ।
सार्द्धद्वादश शिष्याः स्युः रामानन्दस्ति सद्‌गुरोः ।।

अनन्तानन्द, सुरसुरानन्द, नरहर्यानन्द, योगानन्द, सुखानन्द, भावानन्द गालवानन्द, कबीर, रैदास, सेन, पीपा, धना और पद्मावती के नाम का उल्लेख है ।

श्री स्वामी रामानन्द जी की उत्कृष्ट कृति के विषय में सेन ने कहा है—

रामाभक्ति रामानन्दु जानै । पूरन परमानन्द बखानै ।

कबीर दास जी ने अपने गुरु का स्मरण स्थान-स्थान पर किया है । भक्ति के सम्बन्ध में उनका कथन है—

रामानन्द - रामरस माते । कहहि कबीर हम कहि - कहि थाके ।।

किसी सन्त की पहचान उसकी जाति से नहीं, बल्कि उसके त्याग, परोपकार एवं ज्ञान से की जाती है । वस्तुतः मंत्र-दीक्षा के बाद पूर्व नाम एवं जाति ही समाप्त हो जाती है । सन्त कबीर कहते हैं:—

जाति न पूँछो साधु की पूँछ लीजिये ज्ञान ।
मोल करो तलवार का पड़ी रहन दो म्यान ।।

स्वामी श्री रामानन्द जी के समकालीन मुस्लिम फकीर मौलाना रसीदुद्दीन ने अपने 'तज़कीर-तुल-फुकरा' में मुसलमान फकीरों की गाथा अंकित की है और स्वामी रामानन्द जी के सम्बन्ध में भी बड़ा आदर भाव व्यक्त किया है ।

दिल्ली के बादशाह सिकन्दर लोदी ने शेख तकी के यह कहने पर कि कबीर मुसलमान होकर हिन्दू फकीर का शिष्य बना है तथा हिन्दुओं का पक्षपाती है । सिकन्दर लोदी ने कबीर को गंगा में डुबोया एवं हाथी के पांवों तले दबवाया, किन्तु कबीर की रक्षा स्वामी रामानन्द जी की कृपा से होती रही ।

बादशाह सिकन्दर लोदी ने अयोध्या के राजा गज सिंह सहित उनके अनेक अनुयायियों का जोर जबर्दस्ती से धर्म-परिवर्तन करा दिया था । मारे शर्म के राजा अयोध्या की गद्दी अपने भतीजे को सौंपकर कहीं निर्वासित जीवन व्यतीत करने चला गया । स्वामी रामानन्द जी के भक्त, उस राजा की ओर से निवेदन किये जाने पर काशी से अयोध्या पहुँचे और उन्होंने उन सभी लोगों को सरयू के किनारे बुलाकर परावर्तन संस्कार सम्पन्न कराया ।

सिकन्दर लोदी बर्बर शासक था । उसने अनावश्यक जजियाकर हिन्दू जनता पर कठमुल्लाओं के कहने पर लाद दिया था । सिकन्दर लोदी को स्वामी रामानन्द जी के पास अपने सिर की वेदना से छुटकारा पाने के लिए आना पड़ा । स्वामी जी ने बारह शर्तों पर बादशाह को राजी कराकर उसे चंगा किया । इन शर्तों में हिन्दुओं को जजियाकर से मुक्त करने की बात भी सम्मिलित थी ।

स्वामी रामानन्द जी के ही सत् प्रयास से चार वैष्णव सम्प्रदायों (मध्व, विष्णुस्वामी, निम्बार्क एवं श्री सम्प्रदाय) के सामंजस्य की नींव पड़ी, फिर आगे चलकर इस सम्प्रदाय के प्रसिद्ध संत श्री स्वामी बालानन्द जी ने चारों सम्प्रदायों का संगठन कर अनी अखाड़ों का निर्माण किया ।

श्री अयोध्या जी में रामानन्दी सम्प्रदाय के साधु श्री राम जन्मभूमि का पुनर्निर्माण करने के लिए सदियों से संघर्ष करते रहे हैं । वर्तमान काल में समस्त हिन्दू समाज तथा सभी सम्प्रदाय के सन्त महात्मा राम जन्मभूमि पुनर्निर्माण के लिए रामानन्दी सम्प्रदाय को पूरा सहयोग दे रहे हैं । कार्य अपनी गति से चल रहा है, जो पूरा होना ही है । इसी प्रकार श्री कृष्ण जन्मभूमि मथुरा और काशी विश्वनाथ, वाराणसी के मन्दिरों को मुक्त कराकर उनका पुनर्निर्माण करना है ।

स्वामी रामानन्द जी महाराज ने जिस धार्मिक सामाजिक क्रान्ति का सूत्रपात किया था, वह आज फलीभूत हो रही है । हम सब धर्म पुत्रों का कर्तव्य है कि हिन्दू समाज पर हुए अन्याय का निवारण करने के लिए स्वामी रामानन्द जी से प्रेरणा लें । अपने भूले-भटके हिन्दू भाइयों का, जो कभी परिस्थितिवश मुसलमान या ईसाई हो गये थे, परावर्तन संस्कार करें । वे हमारे हैं, हम उनका भी कल्याण चाहते हैं । □

वैकल्पिक व्यवस्था का स्वरूप
(सप्त क्रान्ति)

श्री स्वामी मुक्तानन्द सरस्वती जी महाराज

सत्ता के दमन और पूँजी के शोषण से छुटकारा पाने के लिए मानव समाज सदियों से संघर्षरत हैं । इस सतत संघर्ष के परिणाम स्वरूप संसार में दो व्यवस्थाएँ उभर कर सामने आयी हैं—

१. साम्यवादी व्यवस्था २. कल्याणकारी लोकतन्त्र ।

लोकतन्त्रवादियों का कहना है कि मनुष्य की मुख्य आकांक्षा स्वतन्त्रता की है । अधिक से अधिक स्वतन्त्रता जहाँ होगी, वहाँ मनुष्य का अधिक से अधिक विकास होगा । लोकतन्त्र में विचार स्वातन्त्रय तो होता है, लेकिन शोषण बढ़ता जाता है । देखना यह है कि प्रचलित लोकतन्त्र, यह स्वतन्त्रता कितनी दे पाता है ? क्योंकि कल्याणकारी लोकतन्त्र का संचालन संसदीय पद्धति से होता है और कार्यान्वयन नौकरशाही तन्त्र करता है । इन दोनों का ही अनुभव अच्छा नहीं आ रहा है । संसद के विषय में गाँधीजी को कहना पड़ा कि "यह वैश्या है और बांझ है ।" अर्थात् न तो यह किसी के लिए प्रतिबद्ध है और न ही इससे आज तक कोई बुनियादी परिवर्तन हुआ है । इस अनुभव से देखने में आया है कि कल्याणकारी लोकतन्त्र में शोषण को रोकने की ताकत तो है ही नहीं, क्योंकि आर्थिक असमानता इसमें रहेगी ही । केन्द्रीय संसदीय पद्धति के कारण विचार स्वातन्त्र्य का भी कोई मूल्य नहीं रहता ।

दूसरी तरफ साम्यवादी व्यवस्था है । इसका कहना है कि अगर मनुष्य भूखा है तो वह अपनी स्वतन्त्रता को भी खा जायेगा और देश को भी खा जायेगा । इसलिए स्वतन्त्रता के उपभोग के लिए यह आवश्यक है कि उसकी प्राथमिक आवश्यकताएँ पूरी होती रहें । इससे कुछ हद तक शोषण में तो कमी आती है, परन्तु विचार स्वातन्त्र्य का गला घुट जाता है । साम्यवाद का संचालन डिक्टेटरशिप से होता है । कार्यान्वयन इसका भी नौकरशाही ढांचे से ही होता है । अतः नौकरशाही के समस्त दुर्गुण इसमें भी होते हैं, साथ ही डिक्टेटरशिप के कारण व्यक्तिगंत स्वतंत्रता का हनन भी होता है ।

इससे सिद्ध होता है कि शासन के दमन और पूँजी के शोषण अर्थात् वैचारिक स्वतन्त्रता और आर्थिक समानता की माँग उपरोक्त दोनों अवस्थाओं से भी पूरी नहीं हो सकती । संसार के अनेक देशों में साम्यवादी, समाजवादी व्यवस्था असफल हो चुकी है । लोकतान्त्रिक व्यवस्था की दुर्दशा सब देख ही रहे हैं । इसके लिए तो पूरी व्यवस्था के आधार और स्वरूपों को ही बदलना होगा ।

व्यवस्था का वैकल्पिक स्वरूप

वैचारिक स्वतन्त्रता तथा आर्थिक समानता दोनों मांगों को एक साथ पूरी करने के लिए व्यवस्था का स्वयंशासी अर्थात् स्वायत्त होना बहुत जरूरी है । स्वायत्त-व्यवस्था में अभाव की पूर्ति

तथा नियंत्रण के लिए कोई अन्य बाहरी घटक जिम्मेदार नहीं होता । स्वायत्त-व्यवस्था खुद-मुखतारी अर्थात् स्वयं अपना शासन करने से आयेगी । भारतीय ऋषियों ने इसके लिए एक सूत्र प्रस्तुत किया है—"न राज्यं न च राजासीन्न दण्डो न च दण्डिकः । धर्मेणैव प्रजाः सर्वाः रक्षन्ति स्म परस्परम् ।" अर्थात् जहाँ न राज्य है और न उसके आश्रित लोग । दण्ड व्यवस्था से मुक्त सब धर्म भाव से परस्पर रक्षा करते हैं । यह व्यवस्था धर्मभाव से पैदा होगी, इसको हम पञ्चगणतंत्र भी कह सकते हैं ।

पञ्चगणतन्त्र की सारी व्यवस्था चार आधारों पर खड़ी होगी—स्वाभाविक सहजता (Spontanity), पारस्परिकता (Mutuality), स्वयंप्रेरणा (Voluantarity), साझेदारी Cooperation) । ये चारों आधार भारत की पुरानी पंचायती गणतन्त्र व्यवस्था में मौजूद रहे हैं । इन्हीं को नये सन्दर्भ में सामयिक आवश्यकता के अनुसार स्वशासन का आधार बनाना होगा । इस प्रकार नये युग में राज्य के दमन, पूँजी के शोषण तथा सम्प्रदायवादी संङ्कीर्ण रूढ़िवादिता से मुक्ति पाने के लिए धर्म-सापेक्ष पञ्चगणतन्त्र की स्थापना करनी होगी । इस व्यवस्था के अन्तर्गत छोटे-छोटे पंचगणों में जीवन की प्राथमिक जरूरतों को पूरी करने तथा प्राथमिक समस्याओं को हल करने की पूरी शक्ति और अधिकार निहित होंगे ।

अब एक सहज प्रश्न उठता है कि धर्म-सापेक्ष पंचगणतन्त्र की स्थापना की अगुआयी कौन करेगा ? इसका उत्तर भी सीधा ही है, इसकी अगुआयी करनी होगी जागरूक धर्माचार्यों को, सन्त महात्माओं को, जो निर्भय, निर्वैर और निष्पक्ष हों तथा जो सत्ता, सम्पत्ति व साम्प्रदायिक संकीर्णताओं के प्रभाव से मुक्त हों, जो सम्पत्ति के लालच से खरीदे न जा सकें, सत्ता के दमन से भयभीत न हों ।

नये सन्दर्भ में इन धर्माचार्यों, सन्त-महात्माओं को लोक-गंगा में विचरण करना होगा । धर्म-चेतना जगाने हेतु विचरण करने वाले सन्त-स्वरूप लोक-गंगा यात्रियों ने गाया था—"चरैवेति चरैवेति ।" तभी तो अनन्त काल से ऋषि, महर्षि, सन्त-महात्मा, फकीर, औलिया धर्म संस्थापनार्थाय चलते रहे ।

नैमित्तिक धर्म को समझकर विचरण करने वाले महापुरुषों में भगवान् राम सर्वोपरि रहे हैं । उन्होंने चौदह वर्षों तक लोक-गंगा में भ्रमण किया । रावण जैसे ज्ञानी, विद्वान्, सर्वशक्ति सम्पन्न परन्तु आततायी के सभी समर्थकों का नाश किया । फिर स्थापित किया "राम राज्य"

आद्य गुरु शंङ्कराचार्य, महावीर, महात्मा बुद्ध आदि ने भी सम्पूर्ण भारत की यात्रा करके लोक-गंगा में डुबकी लगायी । धर्म की ध्वजा को ऊँचा उठाकर चारों दिशाओं में फहराया ।

इसके बाद चैतन्य महाप्रभु, मीरा; दादू, कबीर, नानक, विवेकानन्द, ऋषि दयानन्द आदि अनेक सन्त धर्म के आधारों को मजबूत करते हुए भारत की लोक-गंगा में विचरण करते रहे, परन्तु भारत के लोक-जीवन पर इतने हमले हुए कि समाज में दूषण बढ़ता ही चला गया । भारत आजाद तो हुआ, लेकिन आजाद होने के बाद अपने ही कहे जाने वालों ने लोक-जीवन में टिमटिमाती धर्म की चिनगारी को अधर्म की राख से ढक दिया ।

इस अधर्म की राख को उड़ाने के लिए भारत के साधु, महात्मा, सन्यासियों तथा सन्तों को अगुआई करनी होगी । किसी जमाने में संसार का कष्ट, संकट दूर करने के लिए एक भागीरथ सामने आये थे । उनके तप से धरती पर गंगामैया का अवतरण हुआ था । अब लोकतन्त्र के जमाने में संतों को लोक-गंगा का आह्वान करना होगा । लोक-गंगा सोई पड़ी

है, उसे जगाना होगा, ताकि उसके शक्तिशाली प्रवाह में समाज की सारी अधर्म-व्यवस्था धुलकर साफ हो जाये, इसी से वास्तविक धर्म-भाव की स्थापना होगी । इसी में से केन्द्रीय संसदीय लोकतन्त्र के विकल्प के रूप में धर्म-सापेक्ष पञ्चगण-तन्त्र व्यवस्था का जन्म होगा ।

पंचगण-तन्त्र का स्वरूप (सप्त क्रान्ति)

पञ्चगण-तन्त्र की व्यवस्था ग्राम (गणपंच), गाय, गरीबी, गायत्री, गीता, गंगा और गुरुरूपी सात स्तम्भों पर खड़ी होगी । ये सातों, व्यक्ति व समाज के जीवन में सप्त क्रांतियों के प्रतीक होंगे । यही पंचगणतन्त्र के लिए दिशा निर्देशन का काम करेंगे ।

१. ग्राम (गणपंच)—राजनीतिक क्रान्ति का प्रतीक,

२. गाय—आर्थिक क्रान्ति का प्रतीक,

३. गरीबी (ऐच्छिक गरीबी) सामाजिक क्रान्ति का प्रतीक,

४. गायत्री—धार्मिक क्रान्ति का प्रतीक,

५. गीता—आध्यात्मिक क्रान्ति का प्रतीक,

६. गंगा—सांस्कृतिक क्रान्ति का प्रतीक,

७. गुरु—शैक्षिक क्रान्ति का प्रतीक ।

१. राजनीतिक क्रान्ति—ग्राम (गणपंच)

ग्राम की आमने-सामने की व्यवस्था राजनीतिक क्रान्ति का प्रतीक होगी । आज तो गाँवों की दशा बिगड़ती चली जा रही है, फिर भी आज के ग्रामीण जीवन की व्यवस्था में अन्तर प्रवाहिनी धारा के रूप में स्वाभाविक सहजता (Spontanity), पारस्परिकता (Mutuality), स्वयं प्रेरणा (Voluantarity), साझेदारी (Cooperation) के तत्त्व मौजूद हैं लेकिन यह व्यवस्था इन टिमटिमाते आधारों पर खड़ी लड़खड़ा रही है । वर्तमान राजनीति ने इन आधारों को योजनापूर्वक तोड़ने का षड्यन्त्र किया है । लेकिन ये चारों आधार आज भी ग्राम्य जीवन में देखने को मिलते हैं । विज्ञान और तकनिकी विकास के इस युग में भी ये चारों आधार प्रासंगिक बने हुए हैं । नई राजनीतिक व्यवस्था जो पंचगणतन्त्र के रूप में विकसित होगी, वह इन चारों आधारों पर खड़ी होगी । यह आवश्यक है कि इसका सामयिक संदर्भों में विकास किया जायेगा । यों भी भारतीय चिंतन में ग्राम का अर्थ कभी भी कूप-मंडूक जीवन नहीं रहा है । ऋग्वेद के ऋषि ने कहा था—

विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन् अनातुरम् ।

अर्थात्—हमारे गाँव में परिपुष्ट विश्व का दर्शन होना चाहिए ।

आगे ऋषि कहता है—

अनु जनान् यतते पंच धीराः

अर्थात्—बुद्धिमान्, ज्ञानीपुरुष पंचगणों के निर्णय का अनुसरण करते हैं । इन्हीं के आधारों पर राजनीतिक-क्रान्ति का सूत्रपात होगा तथा पंचगणतन्त्र कायम होगा । इस आधार पर आधुनिक भारत का राजनीतिक ढांचा नीचे लिखे अनुसार हो सकता है ।

प्रत्येक ग्राम या मुहल्ले के पाँच चरित्रवान व्यक्तियों का यथासम्भव सर्वसम्मति से चुनाव किया जाय और उनकी पंच-समिति की स्थापना की जाय । ऐसी दस स्थानीय गणपंच

समितियों को मिलाकर जनपद गण-परिषद का गठन किया जाय । बीस जनपद गणपंच परिषदों को मिलाकर एक क्षेत्रीय गणपंच परिषद बनेंगी । हरेक क्षेत्रीय गणपंच परिषद से एक-एक प्रतिनिधि लेकर जो गठन होगा, वह राष्ट्रीय गणपंच संघ कहलायेगा ।

आगे जाकर सभी राष्ट्रों के राष्ट्रीय गणपंच संघों से एक-एक प्रतिनिधि लेकर सहजता, पारस्परिकता, स्वयं प्रेरणा और साझेदारी के आधारों पर एक विश्व गणपंच महासंघ की स्थापना की जायेगी ।

प्राथमिक गणपंच समितियाँ अपने में पूर्ण स्वायत्त और स्वतन्त्र होंगी । कोई भी एक गणपंच समिति दूसरी के अधीन नहीं होगी और न कोई किसी से छोटी या बड़ी होगी । सभी गणपंच इकाइयाँ पारस्परिक और पूरक भाव से कार्य करेंगी ।

अन्त्योदय का पूरा दायित्व गणपंच समिति का ही होगा । प्रत्येक क्षेत्रवासी को रोजगार देना, उसके सत्व और अस्मिता की रक्षा का आश्वासन देना भी गणपंच समिति की जिम्मेदारी होगी । आस-पास की गणपंच समितियाँ मिलकर निर्माण और विकास की बड़ी-बड़ी योजनाएं भी चला सकेंगी । क्षेत्रीय प्राकृतिक सम्पदा, औद्योगीकरण तथा शहरों की बढ़ती आबादी का नियन्त्रण भी गणपंच समितियों के जिम्मे होगा । इस प्रकार प्रत्येक गणपंच समिति अपने में पूर्ण भी होगी और परस्पर पूरक भी होगी ।

इन आधारों पर बनी व्यवस्था संसदीय लोकतन्त्र की शासन-व्यवस्था के बजाय स्वशासन की स्वावलम्बी व्यवस्था होगी, जिसमें समानता और स्वतन्त्रता दोनों को प्राप्त किया जा सकेगा । भारतीय चिंतन में स्वशासित व्यवस्था को सफलता पूर्वक चलाने के बुनियादी आधार पहले से ही मौजूद हैं । इनको सामयिक संदर्भ में परिपुष्ट करके पंचगण-तंत्र का विकास किया जा सकता है ।

२. आर्थिक क्रान्ति—गाय (गौमाता)

कृषि प्रधान देश भारत में गाय आर्थिक जीवन की धुरी रही है । गाय से चालक शक्ति के रूप में बैल, गोबर के रूप में ऊर्जा तथा दूध से पोषण मिलता है । शक्ति, ऊर्जा और पोषण तीन चीजें एक साथ प्रदान करने वाली गाय को गोमाता कहकर परिवार के अंग के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है । गोमाता की प्रशंसा में ऋषि कहता है—

गावः प्रतिष्ठा भूतानां, गावः स्वस्त्ययनं महत् ।
गावो भूतश्च भव्यश्च, गावो विश्वस्य मातरः ।।

गोमाता से समस्त भूतों (प्राणियों) का मंगलमय अधिष्ठान होता है । गोमाता सृष्टि का आधार है, इसलिये गौ सबकी माता है ।

पंचगणतन्त्र की आर्थिक नीति में ऊर्जा, शक्ति और पोषण के स्रोतों पर एकाधिकार नहीं रहेगा । ये तीनों विकेन्द्रित व स्वावलम्बन के आधार पर हरेक को प्राप्त होंगे । गाय से ऊर्जा, शक्ति और पोषण विकेन्द्रित व स्वावलम्बन के आधार पर मिलते हैं । अतः विकेन्द्रित व स्वावलम्बी अर्थनीति की प्रतीक गाय है । विकेन्द्रित व स्वावलम्बी अर्थनीति में कमजोरों को आगे बढ़ने के पर्याप्त अवसर रहते हैं । अर्थनीति की मजबूती इसी में है कि वह कमजोरों

को पुष्ट करे । क्योंकि किसी भी जंजीर की ताकत उसकी कड़ियों की मजबूती पर निर्भर करती है । गाय कमजोरों को मजबूत बनाती है । ऋग्वेद का ऋषि कहता है—

यूयं गावोमेद यथाः कृशंचित् अश्रीरं, चित्त कृणुथा सुप्रतीकम् ।

हे गायो ! दुबले पतले कृश्काय व्यक्ति को तुम्हीं अपने मेद से पुष्ट बनाती हो और तुम्हीं लावण्यहीन को सुभग सुन्दर बनाती हो ।

पंचगणतन्त्र की अर्थनीति ऐसी हो जो कमजोरों को पुष्ट तथा प्रतिभा सम्पन्न बनाये । गाय इसका प्रतीक है । इसलिए आर्थिक क्रान्ति के प्रतीक के रूप में गोमाता की स्थापना की गयी है ।

३. सामाजिक क्रान्ति (गरीबी, ऐच्छिक गरीब का जीवन)

गरीबी और दरिद्रता में अन्तर है । दरिद्रता अभावों के जीवन को कहते हैं । दरिद्र वह है जो भोगों की प्राप्ति के लिए ही जीता है तथा भोगों के अभावों की पूर्ति में संलग्न रहता है । अब ऐसे व्यक्ति ने भले ही अतुल सम्पत्ति का संग्रह कर लिया हो, वह दरिद्र ही है । इसके विपरीत गरीबी सादगी के जीवन का प्रतीक है । इसे ऐच्छिक निर्धनता भी कह सकते हैं । ऐच्छिक निर्धनता अर्थात् विलासिता व भोग प्रधान जीवन से उपरामता । ऐसा होने पर समाज में कभी अभाव नहीं रहेगा । भोग सामग्री संग्रह की होड़ नहीं रहेगी, प्रतिस्पर्धा नहीं रहेगी तो समाज में हिंसा भी नहीं होगी ।

यही ऐच्छिक निर्धनता भारत की सामाजिक क्रान्ति का प्रतीक है । सादाजीवन, उच्च विचार—इसका आधार सूत्र है । सादाजीवन समानता और समता का प्रतीक है । धर्म सापेक्ष पंचगणतन्त्र व्यवस्था में ऊँच-नीच, छूत-अछूत, कमीन-कुलीन के भेद सामाजिक जीवन में कहीं देखने को नहीं मिलेंगे । ऐच्छिक निर्धनता (गरीबी) के जीवन की प्रतिष्ठा होगी । जीवन में श्रम-प्रतिष्ठा को प्रथम स्थान होगा । सादाजीवन, उच्च विचार सामाजिक क्रान्ति का मार्ग-दर्शक सूत्र होगा ।

४. धार्मिक क्रान्ति (गायत्री मन्त्र)

धर्म के नाम पर साम्प्रदायिक रूढ़िवाद के कारण ऊपरी कर्मकाण्ड तथा रहन-सहन और पूजा-पाठ के तरीकों को ही धर्म मान लिया जाता है । इसकी वजह से अलगाव बढ़ता है एवं छूआछूत ऊँच-नीच और कुलीन-कमीन के भेद पोषण पाते हैं । वैदिक ऋषि विश्वामित्र ने इसके खिलाफ विद्रोह किया । उन्होंने कहा—गायत्री-मन्त्र सबको धार्मिक रूप से एक धरातल पर लाकर समता और समानता का संदेश देता है । क्योंकि इस मन्त्र में हरेक की बुद्धि के विकास की आकांक्षा की गई है । गायत्री-मन्त्र में कहा गया है कि—हम समस्त भू-मण्डल पर रहने वाले बुद्धि पूर्वक, अलिप्त भाव से सूर्य नारायण जैसे तेजस्वी बनें । हममें हर प्रकार के दूषित अलगाव वादी विचारों को दहन करने की शक्ति आवे । इसलिए गायत्री मन्त्र धार्मिक-क्रान्ति का प्रतीक हो जाता है ।

ओं भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यं । भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ।।

५. आध्यात्मिक क्रान्ति (गीता)

गीता का सारा तत्त्वज्ञान अनीति व अन्याय के उन्मूलन के लिए धर्म-युद्ध की प्रेरणा देता है। सच्ची आध्यात्मिकता वही है, जो सम्पूर्ण समाज से अभाव, अज्ञान और असुरक्षा को नष्ट करने की शक्ति दे। समस्त सृष्टि के प्रति संवेदनशील होना ही सच्ची आध्यात्मिकता है। जब अर्जुन ने अपनों के मोहवश अनीति और अन्याय के खिलाफ धर्म-युद्ध करने से इन्कार कर दिया तो गीता का ब्रह्मविद्या का ज्ञान शुरू हुआ। श्रीकृष्ण भगवान कहते हैं—

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम् । अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ।।

हे अर्जुन तुमको, (अनीति और अन्याय के खिलाफ धर्म-युद्ध न करने का अज्ञान), इस विषम स्थल में यह अज्ञान किस हेतु प्राप्त हुआ ? क्योंकि ऐसा न तो श्रेष्ठ पुरुषों के द्वारा आचरण किया गया है और न स्वर्ग को देने वाला है, साथ ही कीर्ति को नष्ट करने वाला भी है।

इस प्रारम्भिक श्लोक के बाद श्रीकृष्ण-अर्जुन सम्वाद लम्बा चलता है। संवाद को ब्रह्म विद्या के नाम से विख्यात किया गया है। हर अध्याय के अन्त में कहा गया है।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन संवादे.........

अब इस ब्रह्मविद्या व योगशास्त्र के पूर्ण होने पर गीता के अन्त में भगवान् श्रीकृष्ण पूछते हैं—

कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा ।
कच्चिदज्ञानं संमोहः प्रनष्टस्ते धनंजय ।।

हे अर्जुन ! क्या तुमने मेरे वचन एकाग्र चित्त से सुने, क्या तेरा अज्ञान से उत्पन्न हुआ मोह नष्ट हुआ ?

इस प्रश्न का उत्तर देते हुए अर्जुन ने कहा—

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत ।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव ।।

हे प्रभो ! आपकी कृपा से मेरा मोह नष्ट हो गया है। मुझे स्मृति प्राप्त हुई है, इसलिए मैं संशय रहित हुआ हूँ, अब मैं आपकी आज्ञा का पालन करूँगा।

इस तरह गीता की आध्यात्मिकता केवल आन्तरिक साधना नहीं है। आज की विषम परिस्थिति में अपनों की अनीति और भ्रष्ट राजनीति के खिलाफ धर्म-युद्ध की प्रेरणा है। इसीलिये गीता आध्यात्मिक क्रांति का प्रतीक है। अपनों के प्रति हमारा भी मोह भंग हो तथा हम भी धर्म-युद्ध की तैयारी करें। धर्मयुद्ध का निर्देश करते हुए भगवान कहते हैं—'तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च ।' अर्थात् हे अर्जुन ! सदा मेरा स्मरण करते हुए युद्ध कर। इसलिए ब्रह्म विद्या का अध्ययन करने वालों को आज की परिस्थिति की अनदेखी नहीं करनी चाहिए। यह दूसरी बात है कि आज धर्म-युद्ध के हमारे आयुध क्या होंगे इस पर विचार करके धार्मिक-पुरुषों को आगे आना होगा तथा गीता माता के आधार पर आध्यात्मिक-क्रान्ति का सूत्रपात करना होगा।

६. सांस्कृतिक क्रान्ति (श्री गंगा माता)

भारतीय संस्कृति ने नित्य-नूतनता का वरण किया है। सनातन का अर्थ करते हुए कहा है—सनातनः नित्य नूतनः। नदी का प्रवाह नित्य-नूतनता की प्रेरणा देता है। भारत की

संस्कृति का विकास भी नदियों के किनारे हुआ है । इसीलिये वह नित्य नूतन ही रही है । गंगा नदियों का प्रतीक है । अतः उसे हम सांस्कृतिक जीवन का भी प्रतीक मानते हैं । ऋग्वेद का ऋषि कहता है—

अंवितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति ।
अप्रशस्ता इव स्मति प्रशस्तिमंब नस्कृधि ।।

अर्थात्—हे उत्तम माता, उत्तम नदी, उत्तम देवी हे सरस्वती ! हमारा जीवन कुण्ठाग्रस्त बना हुआ है, उसे तू प्रशस्त (प्रवाहित) कर । नितनवीन सतत प्रवाहित चिंतन धारा के कारण भारत में अनेक मत-मतांतरों को फूलने-फलने का अवसर मिला है । यहाँ समय-समय पर आचार-संहिताएँ बदलती रही हैं । कहा गया है—

नवनवो भवति जायमानः ।

ऋग्वेद का यह मन्त्र भी नित्य-नूतनता का सन्देश देता है । गंगा नित्य-नूतनता का सन्देश देती है, इसीलिए वह सांस्कृतिक क्रान्ति का प्रतीक है ।

७. शैक्षिक क्रान्ति (गुरु)

भारतीय जीवन-पद्धति में गुरु को विशेष स्थान प्राप्त है । गुरु वह व्यक्ति है, जो प्राचीनता को आधुनिक सन्दर्भों में आवश्यकतानुसार परिवर्तन करके सामयिक-प्रासंगिकता प्रदान करता है तथा नये क्षितिज की ओर, भविष्य की ओर बढ़ने की प्रेरणा देता है । इसीलिए कहा है—

गुरुर्ब्रह्मा, गुरुर्विष्णु, गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः ।।

गुरु ही ब्रह्मा हैं, गुरु ही विष्णु हैं, गुरु ही महादेव हैं । गुरु ही साक्षात् परब्रह्म हैं, ऐसे गुरु को मैं नमस्कार करता हूँ ।

गुरु के साथ-साथ शिक्षा का भी सम्बन्ध है, शिक्षा की परिभाषा करते हुए महर्षि अरविन्द ने कहा है—भगवान् ने मनुष्य को परिपूर्णता के साथ पैदा किया है । शिक्षा वह कला है, जिसके द्वारा मनुष्य अपने पूर्णत्व को प्रकट करता है । इस प्रकार गुरु का कार्य शिष्य को वह कला सिखाना हो जाता है, जिससे वह अपने परिपूर्ण व्यक्तित्व का प्रगटीकरण कर सके ।

परिपूर्ण व्यक्तित्व के प्रकटीकरण की कला सीखने के बाद कोई व्यक्ति बेरोजगार रह ही नहीं सकता । जीवन में आजीविका कैं धन्धों में समाधान (Job Satisfaction) की समस्याएँ भी पैदा नहीं होंगी । शैक्षिक क्रान्ति के प्रतीक गुरु के विषय में कहा गया है—

गुरु गोविन्द दोनों खड़े, किसके लागूँ पांय ।
बलिहारी गुरुदेव की, गोविन्द दियौ बताय ।।

उपरोक्त सात आधारों पर खड़ी धर्म-सापेक्ष पञ्चगण तन्त्र-व्यवस्था स्वशासित और स्वायत्तता की दिशा में सतत प्रगति करती हुई प्रवाहित होती रहेगी । धर्म-निरपेक्ष केन्द्रित संसदीय लोक-तन्त्र का विकल्प भी पञ्चगण-तन्त्र व्यवस्था हो सकती है । इस विचार को सामयिक संदर्भ में विकसित और परिपुष्ट करना होगा । ☐

आर्य भूमि की पावन दिव्य गरिमा के प्रवाह को अक्षुण्ण,
अखण्ड, अनन्त, सुप्रसिद्धि प्रदान करने में जिनका
समग्र जीवन अर्पित है, उन सभी सुधीजन,
आप्तकाम, महद्ब्रह्मनिष्ठ यतिवृन्दों के
श्री चरणों में सश्रद्धा
ॐ नमो नारायणाय

विनीत

अमृतानन्द ब्रह्मचारी

गुजराती आश्रम, विश्व-धाम
ऋषिकेश

अखिल भारतीय सन्त-समिति, जयपुर अधिवेशन

स्वामी वासुदेवाचार्य विद्याभास्करजी, परमहंस स्वामीवामदेवजी, स्वामी मुक्तानंदजी

शोभा यात्रा, जयपुर
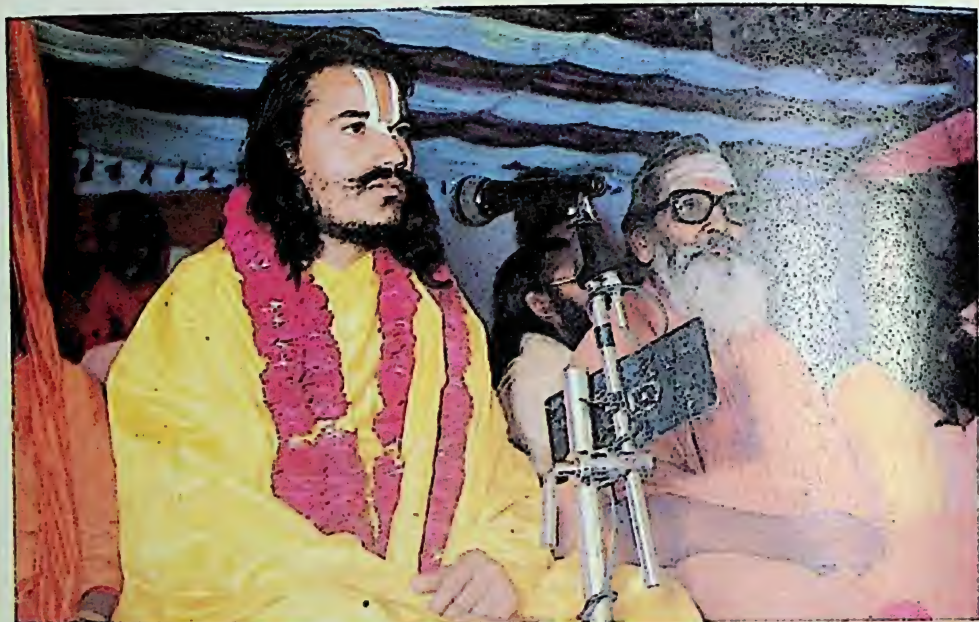
कासगंज सन्त सम्मेलन

श्री नैमिष परिक्रमा तथा सन्त सम्मेलन (मिश्रित)

अखिल भारतीय सन्त सम्मेलन, वृन्दावन

अखिल भारतीय सन्त सम्मेलन, वृन्दावन, अध्यक्षीय उद्बोधन
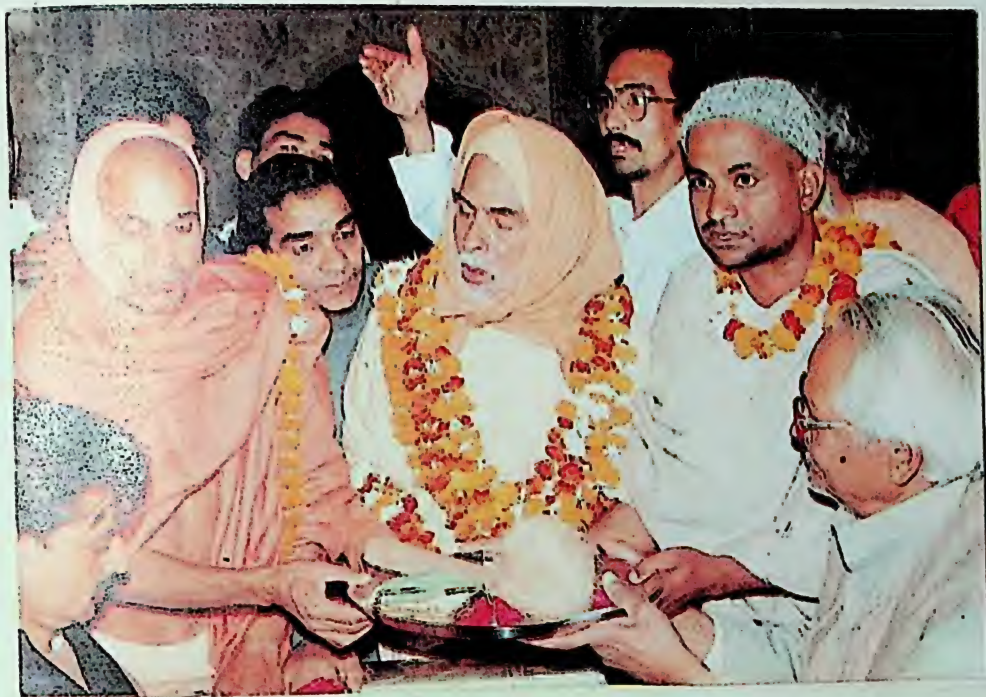
६ दिसम्बर १९९२ की घटना पर सरकारी अन्याय के विरुद्ध सन्तों द्वारा श्री बाँके बिहारी जी को ज्ञापन देते हुए परमहंस स्वामी वामदेवजी

श्री स्वामी नारायणानन्द, परमहंस स्वामी वामदेवजी श्री महन्त रामस्वरूपदासजी, श्री स्वामी हितदासजी

आचार्य अविचलदासजी

परमहंस स्वामी वामदेवजी

स्वामी वियोगानन्द सरस्वती

महन्त योगेश्वरानन्द गिरि

स्वामी मुक्तानन्द सरस्वती

स्वामी प्रज्ञानन्द तीर्थ

स्वामी परमानन्द सरस्वती
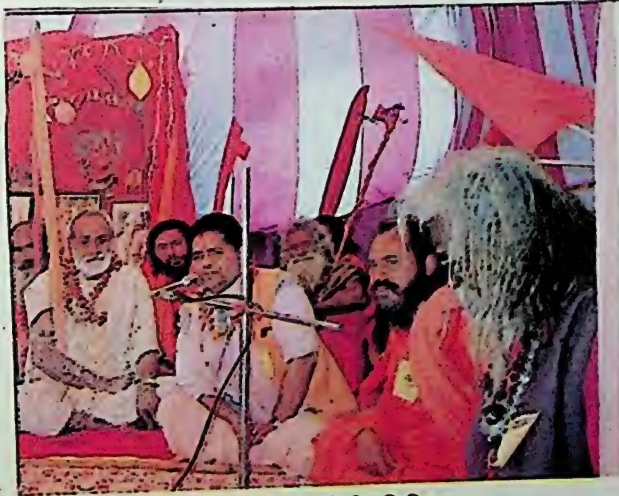
महन्त देवदत्त गिरि मिश्रित

स्वामी मर्मज्ञाचार्यजी महाराज

महन्त देवीदासजी महाराज मिश्रित

श्री विश्वनाथ मन्दिर, इटावा

श्री नैमिष (मिश्रित) परिक्रमा का दृश्य

फलाहारी रामायणजी

ब्रह्मर्षि महाराज

अखिल भारतीय सन्त-समिति

गन्तव्य :— न राज्यं न च राजासीन्न दण्डो न च दण्डिकः ।
धर्मेणैव प्रजाः सर्वा रक्षन्ति स्म परस्परम् ।।

उद्देश्य :—
- ★ धर्म आधारित आचार संहिता
- ★ अन्याय अनीति उन्मूलन
- ★ राष्ट्रीय समस्याओं पर उचित निर्देश
- ★ सादा-जीवन उच्च-विचार
- ★ धर्म-स्थानों की सुरक्षा व विकास
- ★ मानव का आध्यात्मिक विकास
- ★ राजनीति पर धर्म-नीति का अंकुश
- ★ सभी सम्प्रदाय के सन्तों का संगठन

नागरिकों को धर्म प्रेरणा-राजधर्म की स्थापना

कार्यान्वयन

धर्म-समाज एवं धर्म-रक्षक-दल के द्वारा

सदस्य एवं प्रक्रिया :—

१. धर्म-रक्षक-दल के सदस्यों का साधु-सन्यासी होना आवश्यक नहीं होगा ।

२. दल की सदस्यता ग्रहण करने के लिए समिति के उद्देश्यों एवं कार्य-प्रणाली के प्रति निष्ठावान् रहना, धार्मिक-चेतना से युक्त होना, निर्भीक एवं चरित्रवान् होना, समिति की अनुशासन-संहिता का पालन करना, इन आधारभूत पात्रताओं का होना आवश्यक होगा ।

३. दल का सदस्यता शुल्क पाँच रुपये है । सदस्यता के इच्छुक धर्म-निष्ठ महानुभाव शुल्क के साथ सदस्यता-आवेदन पत्र भरकर संयोजक को भेजें, तत्पश्चात् संयोजक द्वारा निर्धारित प्रशिक्षण शिविर में सम्मिलित होकर प्रशिक्षण प्राप्त करना अनिवार्य होगा, इसके उपरान्त ही उन्हें दल की संचालन समिति द्वारा सदस्यता का प्रमाण-पत्र प्राप्त हो सकेगा ।

४. धर्म-रक्षक-दल के दूसरे वर्ग के सदस्य 'धर्म-समाज' के होंगे । धर्म-चेतना से युक्त हिन्दू-संस्कृति में आस्था रखने वाले सभी सद्‌गृहस्थ धर्म-समाज के सदस्य हो सकेंगे ।

धर्म-समाज :— हिन्दू-जीवन-पद्धति में दीक्षित सभी सम्प्रदाय एवं गुरु-पथों के सद्‌गृहस्थों का संगठित समाज ।

धर्म-रक्षक-दल :— निष्ठावान, समर्पित, निर्भय, निर्वैर, निष्पक्ष, निरंजन भाव वाले वीर बहादुर धर्मनिष्ठ व्यक्तियों का प्रशिक्षित एवं संगठित समुदाय ।

केन्द्रीय कार्यालय :—अखिल भारतीय सन्त-समिति, सोऽहम् आश्रम, परिक्रमा मार्ग, वृन्दावन

सम्पर्क-कार्यालय :—

१. सर्वोदय सत्संग आश्रम, सप्त सरोवर मार्ग, हरिद्वार-२४६४१०

२. श्री केदारस्वामी, श्री आनन्दमयी मां आश्रम, १८ ए० बी० रोड, इन्दौर (म० प्र०)

३. अखिल भारतीय सन्त-समिति, ७/२६ रूप नगर, नई दिल्ली

अखिल भारतीय सन्त-समिति का स्वरूप

सभी धर्म-स्थानों पर अखिल भारतीय सन्त-समिति की क्षेत्रीय सन्त-समितियों का गठन किया जा सकेगा । स्थानीय स्तर पर जहाँ समिति के ग्यारह सदस्य हो जायेंगे, वहाँ स्थानीय सन्त-समिति का गठन किया जा सकेगा । समिति का गठन करने में अध्यक्ष, मन्त्री, कोषाध्यक्ष के अलावा स्थानीय आवश्यकता के अनुसार पदाधिकारी रखे जा सकते हैं । स्थानीय अथवा क्षेत्रीय-समिति का गठन करके उसकी सूचना तथा सदस्यता राशि की आधी रकम के साथ सदस्यों की सूची केन्द्रीय-कार्यालय को अवश्य भेजें । सदस्यता फार्म तथा रसीद बुक केन्द्रीय-कार्यालय से ही प्राप्त करनी होगी ।

स्थानीय अथवा क्षेत्रीय सन्त-समितियों को अपनी शक्ति और सम्पर्क के अनुसार नागरिक सदस्य बनाकर धर्म-समाजों का गठन करना चाहिए । जहाँ कहीं कम से कम पच्चीस धर्म-समाज के सदस्य हो जायेंगे, वहाँ स्थानीय सन्त-समिति के तत्त्वावधान में धर्म-समाज मण्डलों की स्थापना की जायेगी । स्थानीय सन्त-समिति के मार्गदर्शन में धर्म-समाज मण्डलों पर प्रतिमास सत्संग आदि का आयोजन होता रहना चाहिए । समय-समय पर वृहद् धर्म-सम्मेलन के आयोजनों में केन्द्रीय-समिति भी सहयोगी होगी ।

स्थानीय जिला या क्षेत्रीय सन्त-समिति को अपने क्षेत्र में स्थापित पूजा-स्थलों के विकास एवं उनकी समस्याओं के समाधान की जिम्मेदारी भी उठानी होगी । सभी सम्प्रदायों के पूजा- स्थलों से सक्रिय सम्पर्क रखने से ही यह सम्भव हो सकता है ।

स्थानीय जिला एवं क्षेत्रीय सन्त-समितियाँ तथा धर्म-समाज के संगठनों में से जो भी व्यक्ति धर्म-रक्षक-दल में प्रवेश पाना चाहें, उनके नाम केन्द्रीय सन्त-समिति के कार्यालय में भेजने चाहिए ।

चार वर्ष में एक बार अखिल भारतीय सन्त-समिति का बृहद सम्मेलन हुआ करेगा । इन सम्मेलनों में अखिल भारतीय सन्त-समिति के सदस्य नियमानुसार केन्द्रीय पदाधिकारियों का मनोनयन करेंगे । पदाधिकारियों का मनोयन करने में विरक्त-मण्डल की भूमिका प्रमुख होगी ।

सदस्यता-शुल्क

१. सन्त सदस्य (अभ्यागत-सन्त)—प्रतिवर्ष ग्यारह रुपया ।
२. संस्था सदस्य (आश्रमधारी-सन्त)—प्रतिवर्ष एक सौ एक रुपया ।
३. आजीवन सदस्य—एक बार ग्यारह सौ रुपया मात्र ।
४. समर्थक सदस्य—सामर्थ्यानुसार वार्षिक अनुदान ।
५. धर्म-समाज सदस्य—प्रतिवर्ष ग्यारह रुपया या अधिक ।
६. धर्म-रक्षक-दल—प्रवेश शुल्क रुपया पांच मात्र ।

विरक्त-मंडल

१. श्रीमज्जगद्गुरु शंकराचार्य भानपुरा पीठाधीश्वर स्वामी दिव्यानन्द तीर्थ, भानुपुरा, मन्दसौर
२. महन्त नृत्यगोपाल दास जी, श्री मणिराम छावनी, अयोध्या, जि० फैजाबाद
३. युगपुरुष स्वामी परमानन्द जी महाराज, अखंड परम धाम आश्रम, रानी गली, हरिद्वार
४. स्वामी विवेकानन्दजी महाराज, सोऽहम् आश्रम, परिक्रमा मार्ग, वृन्दावन, जनपद-मथुरा
५. महन्त स्वामी ब्रह्मऋषि जी महाराज, उदासीन बड़ी संगत, पूर्विया टोला, इटावा

सलाहकार-समिति

१. श्रीमज्जगद्‌गुरु शंकराचार्य ज्योतिष्पीठाधीश्वर, स्वामी वासुदेवानन्द सरस्वती जी महाराज, ब्रह्म निवास, अलोपी बाग, दारागंज, प्रयाग
२. आचार्य महामण्डलेश्वर स्वामी विद्यानन्द गिरिजी महाराज, कैलाश-धाम, ऋषिकेश
३. आचार्य महामण्डलेश्वर स्वामी ब्रह्मानन्दजी महाराज, संन्यास आश्रम, विलेपार्ले, मुम्बई
४. स्वामी रामानन्द सरस्वती जी महाराज, मार्कण्डेय सन्यास आश्रम, ओंकारेश्वर
५. जगदाचार्य स्वामी विवेकानन्द सरस्वती, अध्यात्म विद्यापीठ, नैमिषारण्य, जनपद-सीतापुर
६. स्वामी शान्तानन्द जी वेदपाठी, श्रोतमुनि आश्रम, वृन्दावन, जनपद-मथुरा, (उ०प्र०)
७. महन्त रामस्वरूप दासजी, हनुमान टेकरी रमणरेती, वृन्दावन, मथुरा, (उ०प्र०)
८. स्वामी विजयानन्दजी महाराज, भारत सेवाश्रम संघ, श्रीनिवासपुरी, नई दिल्ली-२

कार्यकारिणी-समिति

१. मुख्य संरक्षक—विरक्त शिरोमणि परमहंस स्वामी वामदेव जी महाराज, आनन्द कुटीर, मोतीझील, वृन्दावन, (उ० प्र०) ।
२. अध्यक्ष—श्रीमज्जगद्‌गुरु रामानुजाचार्य स्वामी वासुदेवाचार्य विद्याभास्कर जी महाराज, कौशलेश सदन, अयोध्या, जनपद-फैजाबाद, (उ० प्र०)
३. उपाध्यक्ष—आचार्य अविचलदास जी, कैवल्यपीठ, सारसापुरी, जि० खेड़ा, गुजरात
४. महामन्त्री—स्वामी मुक्तानन्द सरस्वती, सर्वोदय आश्रम, सप्त सरोवर मार्ग, हरिद्वार
५. कोषाध्यक्ष—स्वामी वियोगानन्द सरस्वती जी, विश्वधाम, मायाकुण्ड, ऋषिकेश
६. सहमन्त्री—महन्त राधामोहन दास जी, राधा सर्वेश्वरी कुञ्ज, रमण रेती, वृन्दावन
७. संगठन मन्त्री—डॉ० अयोध्यादास जी महाराज, बलराम कोट मठ, जगन्नाथपुरी, उड़ीसा
सहायक—डॉ० रामेश्वरदास जी, सन्त-सेवा-आश्रम, हरतीरथ विश्वेश्वरगंज वाराणसी
८. प्रचार मन्त्री—मानस महारथी त्यागी जी महाराज, दारागंज, प्रयाग, इलाहाबाद
९. क्षेत्रीय मन्त्री (उत्तरी)—स्वामी हंसदास जी, डेरा निराकारी ट्रस्ट-न्यूलाल बाग, पटियाला
१०. धर्म प्रचारक—स्वामी शुकवोधानन्दजी महाराज, प्रह्लाद निवास, पो० कन्नौद, जिला-देवास
११. सदस्य—श्रीमहन्त प्रकाशपुरी जी महाराज, सचिव-पंचायती अखाड़ा महानिर्वाणी, उज्जैन
१२. सदस्य—श्रीमहन्त स्वामी रामकृष्ण गिरि, सचिव-निरंजनी अखाड़ा, हरिद्वार, (उ० प्र०)
१३. ,, महन्त श्रीशिवानन्दजी महाराज, महामन्त्री-उदासीन अखाड़ा, द्वारा-दुलीचन्द कैमिस्ट, कालावाली मण्डी, जि० सिरसा (हरियाणा)
१४. ,, महन्त सोहन गिरि जी, पंचदसनाम जूना-अखाड़ा, बड़ा हनुमान घाट, वाराणसी
१५. ,, महन्त श्रीरामनारायणदास जी, तुलसीदास जी का बड़ा स्थान, दारागंज, प्रयाग
१६. ,, महामण्डलेश्वर स्वामी ओमप्रकाशजी शास्त्री, मठ नागाजी, भृगु आश्रम, बलिया
१७. ,, स्वामी रामदासजी (मुखियाजी), ब्रह्मनिवास, सप्त सरोवर मार्ग, हरिद्वार, (उ० प्र०)
१८. ,, स्वामी अशेषानन्दजी, मारकण्डेय संन्यास आश्रम, ओंकारेश्वर, जनपद-खंडवा
१९. ,, स्वामी विवेकानन्द जी महाराज, प्रभात आश्रम, ग्राम टीकरी भोलाझाल, मेरठ
२०. ,, महन्त महेश्वरानन्द जी महाराज, पंचायती अखाड़ा बड़ा उदासीन, कृष्ण नगर, प्रयाग
२१. ,, स्वामी विष्णुदेवानन्द जी त्यागी, सोऽहम् आश्रम, परिक्रमा मार्ग, वृन्दावन
२२. ,, ब्रह्मचारी ओम चैतन्यजी, आनन्द कुटीर, मोतीझील, वृन्दावन
२३. हरियाणा—स्वामी ज्ञानानन्द, सनातन-धर्म मन्दिर, कुंजपुरा रोड, करनाल
२४. दिल्ली—स्वामी रामानन्द जी रमते योगी, हनुमान मन्दिर गोरख पार्क, शाहदरा, दिल्ली
२५. उत्तर-प्रदेश (उत्तराखंड)—आचार्य स्वामी परेशयतिजी, राम नगर, जनपद-नैनीताल

२६. „ (पश्चिमोत्तर)—महन्त योगेश्वरानन्द गिरि विश्वनाथ मन्दिर, ग्वालियर रोड, इटावा

२७. „ (मध्य दक्षिणी)—स्वामी सर्वेश्वर प्रपन्नाचार्य ब्रह्मचारी, अध्यक्ष—देवरहा बाबा सेवाश्रम, त्रिवेणी संगम बाँध, प्रयाग, (उ० प्र०) पिन-२०० ११६

२८. „ (पूर्वी-क्षेत्र)—महामण्लेश्वर श्री यमुनादास जी (सतुआ बाबा), सी० के० १०/४८, मणिकर्णिका घाट, वाराणसी, (उ० प्र०)

२६. मध्यप्रदेश—डॉ० श्यामदास जी, गीताधाम, ग्वारीघाट, जबलपुर, (म० प्र०)

३०. राजस्थान—स्वामी रामायणीजी फलाहारी, श्रीवैकुण्ठ धाम् मन्दिर, स्कीम नं० २, अलवर

३१. गुजरात—श्रीरामदासजी महाराज, स्थान-करमसद, जि०-खेड़ा, गुजरात

३२. महाराष्ट्र—महामण्डलेश्वर स्वामी भागवतानन्द सरस्वती जी, ज्ञानेश्वर मठ, लक्ष्मी नारायण लेन, सी० आर० माटुंगा, मुम्बई-४०००१६ (महाराष्ट्र)

३३. बंगाल—महामण्डलेश्वर स्वामी विष्णुपुरी जी, परमार्थ साधक संघ पी० ११३, न्यू रायपुर रोड, कलकत्ता-४८

३४. आसाम—स्वामी वाणगोविन्द परमपंथी, विराज आश्रम, डिब्रूगढ़, पिन-७८६००१, आसाम

गोवंश-अभयारण्य

कत्ल के लिए जाने वाले हजारों गाय, बैल, बछड़ों को
कसाइयों से छुड़ाकर
सेवा करने वाली
श्री काशी जीव-दया विस्तारिणी गोशाला एवं पशुशाला
रामेश्वर-वाराणसी
अनुपयोगी गोवंश को उपयोगी तथा उपयोगी को उन्नत बनाने
तथा समग्र विकास में संलग्न
सुरभि शोध संस्थान,
बी० -२७/७५ डी०,
रवीन्द्रपुरी-वाराणसी - २२१००५
के सेवक-संचालकों को
अखिल भारतीय सन्त-समिति की ओर से शुभाशीष

राजधर्म का आध्यात्मिक संविधान
एवं
आत्म साक्षात्कार के व्यावहारिक स्वरूप के व्याख्याता
स्वामी मुक्तानन्द सरस्वती की मौलिक रचना

ईशावास्योपनिषद्
का
वैज्ञानिक सामयिक विवेचन

मूल्य : पाँच रुपया

श्रम-साधना ट्रस्ट
पो० बा० ५२, महमूरगंज
वाराणसी - २२१०१०

छोटी मोटी बातें

जगदीश अरोड़ा

- पत्रकारिता मेरा धर्म है, ईमान है, साधन है । जनता जनार्दन आराध्य है, साध्य है ।
- पत्रकार जब तक ईमानदार नहीं होगा, देश का कल्याण नहीं हो सकता ।
- वही वस्तु व विचार 'खुला' रह सकता है, जिसमें गंदगी और कुरूपता को आत्मसात करने की शक्ति हो ।
- तरक्की के नाम पर हमने भीख माँगने की कला के सिवा आज़ादी के अनेक सालों में कुछ नहीं सीखा ।
- अगर बुढ़ापा अपनी जिम्मेदारी और जवानी की उमंग को समझ ले तो हालत अभी भी सुधारी जा सकती है ।
- आलोचना का लक्ष्य वही आदमी हो सकता है, जो जन सेवा करने की क्षमता रखते हुए भी नहीं करता ।
- प्रजा द्वारा शासकों का विरोध करने के लिए सबसे पहले उनसे अपना नैतिक, मानसिक, आत्मिक नाता तोड़ लेना चाहिए ।

प्रसिद्ध पत्रकार मुनीर नियाजी के शब्दों में ......

आज की पत्रकारिता ही कल के इतिहास का आधार होती है । अगर इस कसौटी को हम सामने रख लें तो कहा जा सकता है कि जगदीश अरोड़ा की **'छोटी-मोटी बातें'** ऐतिहासिक दस्तावेज का महत्त्व रखती है ।

मुझे यह कहने में कोई झिझक नहीं है कि इन्होंने जिस ईमानदारी और बेबाकी से कलम चलाई, उसकी मिसालें कम ही मिलती है । आपकी कलम की तेज नोक से न सरकार बच सकी, न बड़े अधिकारी, न धर्म के ठेकेदार को इन्होंने माफ किया और न जनता को गुमराह करने वाले नेताओं को ही बख्शा । अपनी इस बेबाकी के अपराध में अरोड़ा को कभी गालियाँ मिलीं, तो कभी कतल की धमकियाँ । यही इनकी सफलता का प्रमाण है ।

धर्म, कर्म, मोक्ष आदि खंडों में विभाजित २४ रचनाएँ, २२४ पृष्ठ, आकर्षक गेटअप, सुन्दर छपाई, मूल्य : ६५ रु० मात्र ।

संपादक : शरदकुमार साधक
प्रकाशक : बाबू जंगमोहन दास साह चैरिटेबुल ट्रस्ट, सिगरा, वाराणसी
पुस्तक प्राप्ति स्थान : विश्वविद्यालय प्रकाशन, विशालाक्षी भवन, चौक, वाराणसी
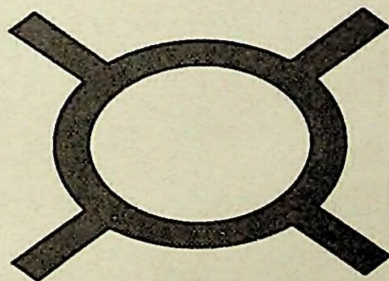
पटेल शारदाबेन इन्दुभाई इप्कोवाला चेरिटेबल ट्रस्ट

'परिश्रम'
हिमांसु जंगलानी बाजुमां
पेटलाद रोड,
नडीआद - 389 001
फोन : 25894, 24524